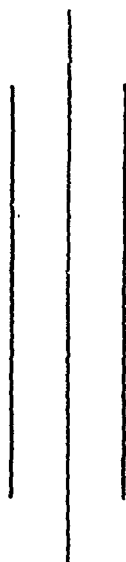


श्री सन्मति महिला मण्डल
श्री दिगम्बर जैन मन्दिर
सेठी कालोनी, जयपुर — 302 004



सादर भेंट :

दशलक्षण व्रत के उपलक्ष में
श्रीमती कमलादेवी बडजात्या
शान्तिकुमार महेन्द्रकुमार बडजात्या
सी–18, सेठी कालोनी, जयपुर

राम कहानी

(आचार्य रविषेण के पद्मपुराण पर आधारित रामकथा)

लेखिका

डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया

B.A. Hons., M.A., Ph. D.

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२०१५

प्रथमावृत्ति :

१५ अगस्त, १९९२ ई.	१० हजार
द्वितीयावृत्ति :	
२ अगस्त, १९९३ ई. (रक्षा बन्धन)	१० हजार
जैनपथ प्रदर्शक में धारावाहिक रूप से प्रकाशित	3 हजार
कुल :	23 हजार

मूल्य : नौ रुपये मात्र

टाइप सेटिंग :
भव्य प्रिंट एन ग्राफ, जयपुर फोन : ३७०३६३,३६६९५५

साज-सज्जा :
कॉम्प्रिन्ट, जयपुर

मुद्रक :
जयपुर प्रिंटर्स प्रा. लि., एम. आई. रोड, जयपुर

प्रकाशकीय

(द्वितीय संस्करण)

भारतीय जन मानस के रोम-रोम में बसे हुये भगवान राम के जीवन चरित्र को सरलतम एवं रोचक शैली से प्रस्तुत करने वाली कृति "राम कहानी" का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करते हुए हम अत्यन्त गौरव और प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

कथा साहित्य में लोक को आकर्षित करने की अद्भुत क्षमता होती है, यदि वह कथा लोकप्रिय महापुरुषों की हो तो फिर उसका कहना ही क्या है? डॉ. शुद्धात्मप्रभा ने साहित्य की इस रोचक विधा को उपयोग भगवान राम का चरित्र लिखने में किया, एतदर्थ वे हार्दिक बधाई की पात्र हैं। कथा साहित्य के अनुरूप ही इस कथानक की भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। यही कारण है कि यह कृति पाठक वर्ग को विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है। इससे पूर्व हम उनकी लोकप्रिय कृति "आचार्य अमृतचन्द्र और उनका पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय" एवं "आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार" भी प्रकाशित कर चुके हैं।

हमें भी कल्पना नहीं थी कि मात्र 10 माह की अल्पावधि में ही इस कृति की 10 हजार प्रतियाँ समाज में पहुँच जावेंगी और इसके बावजूद भी इसकी प्रबल माँग के कारण हमें तत्काल दूसरा संस्करण भी छपाना पड़ेगा। इतनी अल्पावधि में 10 हजार प्रतियाँ बिक जाना इस पुस्तक की भाषा, शैली आदि की लोकप्रियता का प्रबलतम प्रमाण

तो है ही; समाज में भगवान राम के प्रति व्याप्त अगाध श्रद्धा तथा जैन कथानक के आधार पर उनके वास्तविक चरित्र को वास्तविक रूप में जानने की प्रबल जिज्ञासा का भी प्रतीक है ।

भगवान राम के चरित्र से न केवल सम्पूर्ण भारतीय समाज अपितु विश्व का प्रायः प्रत्येक मानव परिचित ही है। जैन समाज के स्तर पर तो पद्मपुराण की प्रतियाँ भारत के प्रायः प्रत्येक जैन-मन्दिर में उपलब्ध हैं तथा उनका अध्ययन भी किया जाता है। फिर भी आधुनिक शैली में रामकथा के मार्मिक पहलुओं को स्पष्ट करने का यह प्रयोग इस कृति की लोकप्रियता ने सफल सिद्ध कर दिया है।

प्रस्तुत प्रकाशन की कीमत कम करने में हमें जिन महानुभावों का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके हम हृदय से आभारी हैं। सभी दातारों की सूची आगे प्रकाशित की गई है।

जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि., जयपुर ने इसका शीघ्र मुद्रण करके इस कृति को समाज में पुनः उपलब्ध कराने में उल्लेखनीय सहयोग दिया है अतः हम उनके विशेष आभारी हैं। सदा की भाँति प्रकाशन व्यवस्था का दायित्व हमारे प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल ने बखूबी निभाया है अतः वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है जैन पुराण-रत्नाकर में छिपे हुए अन्य चरित्र-रत्नों को भी इसी प्रकार आधुनिक शैली में निरन्तर निखार कर समाज के सामने प्रस्तुत करने में हमें और अधिक सफलता प्राप्त होगी।

प्रस्तुत कृति के माध्यम से मानव मात्र अपना कल्याण करने की प्रेरणा लें - यही मंगलकामना करते हुए भगवान राम के श्री चरणों में विनम्र भक्ति-सुमन समर्पित करता हूँ।

नेमीचन्द पाटनी

महामन्त्री

अपनी बात

रामकथा भारत की मिट्टी की गंध में समाहित है, प्रत्येक भारतीय के रोम-रोम में बसी हुई है । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की यह पंक्तियाँ रामकथा की महानता बताने के लिए पर्याप्त हैं :—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।
चाहे जो बन जाये कवि संभाव्य है ॥

राम कहानी ने बचपन से ही मेरे हृदय को आंदोलित कर रखा था, पर जब टी. वी. पर रामायण दिखाई जाने लगी तो मेरे हृदय मे जैन रामकथा को जन-जन तक पहुँचाने की भावना प्रबल हो उठी ।

मेरे पिताश्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल समय-समय पर अपने प्रवचनों में राम को जिस मार्मिकरूप में प्रस्तुत करते रहे हैं, उसमें ऐसे अनेक बिन्दु प्रस्फुटित होते रहे, जो गंभीरता से विचारने योग्य हैं । अतः मैं उनसे सदा से ही रामकथा को सरलरूप में प्रस्तुत करने के लिए आग्रह करती रही हूँ; पर उनका मन होने पर भी वे समय न निकाल सके । इस अवसर पर मैने उनसे अति-आग्रह किया तो उन्होंने मुझे ही लिखने के लिए जोर देकर कहा ।

उनकी प्रेरणा को आदेश मानकर मेरे से जो कुछ बन सका, वह आपके समक्ष प्रस्तुत है; पर इसमें ऐसा कुछ भी नहीं है कि जो रामकथा डॉ. भारिल्ल के द्वारा लिखे जाने की आवश्यकता की पूर्ति कर सकती हो । यदि उनके द्वारा रामकथा लिखी जा सकेगी तो वह अपने आप में एक मौलिक कार्य होगा। मैने तो आचार्य रविषेण के द्वारा पद्मपुराण में प्रस्तुत रामकथा के वर्तमान भव की कथा को सीधी-सरल भाषा में सपाटरूप में प्रस्तुत कर दिया है । भले ही आपको यह कृति साहित्यिक आनन्द न दे सके, पर यह जैन रामकथा से तो आपको परिचित करायेगी ही ।

लोकप्रचलित रामकथा से बहुत कुछ साम्य होने पर भी जैन रामकथा की कुछ अपनी विशेषतायें हैं; जो उपयोगी तो हैं ही, लोकमानस को छू लेनेवाली भी हैं। जैन रामकथा का रावण राक्षस नहीं, राक्षसवंशी सर्वांग सुन्दर विद्याधर है । इसीप्रकार जैन रामकथा के हनुमान बानर नहीं, वानरवंशी सर्वांग सुन्दर राजा हैं, कामदेव हैं, तद्भव मोक्षगामी महापुरुष हैं । हनुमान के समान ही सुग्रीवादि भी बन्दर नहीं, विद्याधर राजा हैं ।

इसप्रकार जैन रामकथा अतिमानवीय होने पर भी बहुत कुछ मानवीय धरातल को स्पर्श करती हैं ।

जैनागम चार भागों में विभक्त है – प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग । प्रथमानुयोग में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों के जीवन-चरित्रों का वर्णन होता है । २४ तीर्थंकर १२ चक्रवर्ती ९ बलभद्र ९ नारायण एवं ९ प्रतिनारायण – ये सब मिलाकर ६३ महापुरुष त्रेसठ शलाका के महापुरुष कहे जाते हैं । इनमें राम आठवें बलभद्र, लक्ष्मण आठवें नारायण एवं रावण आठवें प्रतिनारायण थे ।

जैनमान्यतानुसार प्रतिनारायण अत्यन्त बलिष्ठ विवेकी सम्राट होता है, वह अपने बल से तीन पृथ्वी को जीतकर अर्द्धचक्रवर्ती सम्राट बनता है और बहुत लम्बे काल तक सुखोपभोग करता हुआ निष्कंटक राज्य करता है । उसके १८ हजार रानियाँ होती हैं और १६ हजार मुकुटबद्ध राजा उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं।

ऐसे प्रतिनारायण को अपने बड़े भाई बलभद्र के सहयोग से जीतकर नारायण अर्द्धचक्रवर्ती सम्राट बनता है । नारायण के १६ हजार रानियाँ होती हैं और उसकी सेवा में भी १६ हजार मुकुटबद्ध राजा हाजिर रहते हैं । बलभद्र के आठ हजार रानियाँ होती हैं ।

बलभद्र और नारायण में अद्भुत अद्वितीय अटूट स्नेह होता है और वे दोनों मिलकर लम्बे काल तक राज्यसुख का उपभोग करते हैं ।

यह एक खाका है, जो बलभद्र और नारायण के जीवन चरित्र की रूपरेखा को रेखांकित करता है । राम कहानी भी इसी रूपरेखा के आधार पर विकसित होती है ।

यद्यपि जैनदर्शन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति तीर्थंकर होते हैं; तथापि रामचरित्र में ऐसी कुछ विशेषताएं हैं , जो लोकमानस को अधिक आकर्षित करती हैं, अधिक प्रभावित करती हैं । लोक में रामचरित्र अधिक प्रसिद्ध होने से जैनियों में भी यह सहज जिज्ञासा जागृत होती है कि जैनपुराणों के अनुसार रामचरित्र का क्या स्वरूप है ? जैनियों में राम कहानी अधिक प्रचलित होने का एक कारण यह भी है ।

जो भी हो, यह राम कहानी लिखने में मुझे स्वयं बहुत लाभ मिला है। एक तो पद्मपुराण का गहराई से अध्ययन करने का अवसर मिला और दूसरे इसके लिखते समय परिणाम सहज ही निर्मल बने रहे हैं । मूलतः स्वान्तः सुखाय और गौणरूप से लोकहित के लिए लिखी गई इस राम कहानी से यदि आपको भी कुछ लाभ मिले तो मुझे प्रसन्नता होगी ।

अक्षयतृतीया, ५ मई, १९९२ ई. (डॉ. शुद्धात्मप्रभा)

प्रस्तुत कृति का विक्रय मूल्य कम करने हेतु सहयोग देने वाले महानुभावों की सूची

	नाम	राशि
१.	श्री कान्तिभाई आर. मोटानी, बम्बई	५०००.००
२.	श्री भभूतमल चम्पालाल भंडारी, बैंगलोर	१०००.००
३.	श्रीमती मनोहरबाई, ध. प. अर्जुनलालजी चौधरी, भीलवाड़ा	५०२.००
४.	श्री बनारसीदास पाटनी पूना स्व. माताजी के जन्मशताब्दी के उपलक्ष में	५०१.००
५.	गुप्तदान, हस्ते श्री सुन्दरदेवी कटारिया, केकड़ी	५०१.००
६.	सुश्री ज्योति सौगानी, पुत्री श्री विजयकुमारजी सौगानी, जयपुर	५००.००
७.	श्रीमान नरेन्द्र जैन, बांसवाड़ा	२५०.००
८.	श्रीमती नलिनी बेन प्रफुल्लभाई दोशी, बम्बई	२०१.००
९.	श्रीमती सुशीलाबाई ध.प. जवाहरलालजी बड़कुल, विदिशा	२०१.००
१०.	स्व. श्री नाथूलालजी सोनी एवं स्व. सुन्दरबाई सोनी, इन्दौर	२००.००
११.	श्री जयन्तीभाई धनजीभाई दोशी, बम्बई	१११.००
१२.	श्रीमती आरती अतुलजैन, बम्बई	१११.००
१३.	श्री शामजी भाणजी शाह, बम्बई	१११.००
१४.	श्रीमती अमृताबेन प्रेमजीभाई, बम्बई	१११.००
१५.	विनयदक्ष चैरिटेबिल ट्रस्ट, बम्बई	१११.००
१६.	चौधरी फूलचन्दजी जैन द्वारा मनोज एण्ड कं. बम्बई	१०१.००
१७.	श्री सुरेशचन्द सुनीलकुमारजी जैन, अशोक बैगल्स, बैंगलोर	१०१.००
१८.	श्रीमती राजकुमारजी गोधा ध. प. श्री कोमलचन्दजी गोधा, जयपुर	१०१.००
१९.	श्रीमती प्रेमचन्दजी बड़जात्या द्वारा श्री रोशनलाल हरकचन्दजी, दिल्ली	१०१.००
२०.	श्रीमती बाई चौधरी, अशोकनगर	१०१.००
२१.	श्रीमती अशमारानीजी, जयपुर	१०१.००
२२.	श्रीमती विजया देवेन्द्रप्पा, दावणगेरे	१०१.००
२३.	छगनराज एण्ड संस, मद्रास	१०१.००
२४.	श्रीमती कुसुमलता बंसल एवं सुनन्द बंसल स्मृति निधि द्वारा डॉ. राजेन्द्र बंसल, अमलाई	५१.००
	कुल योग :–	१०,२६९.००

हमारे यहाँ प्राप्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका (जीवकाण्ड)	४०.००
वृहज्जिनवाणी संग्रह	२५.००
समयसार	२२.००
मोक्षशास्त्र	२८.००
प्रवचनसार	२०.००
अष्टपाहुड़	प्रेस में
नियमसार/समयसार नाटक	१५.००
सिद्धचक्र विधान	१३.००
प्रवचनरत्नाकर भाग-१ एवं ६/संस्कार	१२.००
प्रवचनरत्नाकर भाग २, ३, ४, ५, एवं ७	१०.००
मोक्षमार्गप्रकाशक	१५.००
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	१२.००
पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	११.००
परमभाव प्रकाशक नयचक्र	११.००
पंचास्तिकाय संग्रह	१५.००
जिनेन्द्र अर्चना (पूजन संग्रह)/रामकहानी	१०.००
आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार	१०.००
ज्ञानगोष्ठी	७.००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ (हि. गु. म. क. अं.)	७.००
सत्य की खोज (कथानक) (हि. गु., म., क., त.)	७.००
बारह भावना : एक अनुशीलन/पुरुषार्थसिद्धयुपाय	६.००
जिनवरस्य नयचक्रम्/धर्म के दशलक्षण (हि. गु., म., अं.)	६.००
क्रमबद्धपर्याय (हि. गु., म., त., अं.), अध्यात्मरत्नत्रय	५.००
बनारसी विलास/अर्द्ध कथानक/अध्यात्म संदेश/छहढाला	५.००
आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम	५.००
पं. बनारसीदास विशेषांक/वीतराग विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	५.००
श्रावकधर्मप्रकाश/भक्तामर प्रवचन/बनारसीदास (कॉमिक्स)	६.००
गागर में सागर/चौबीस तीर्थंकर पूजन/आप कुछ भी कहो	५.००
बालबोध पाठमाला भाग-१, २, ३ का सैट	५.५०
वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३ का सैट	६.००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१, २ का सैट	४.००
बनारसीदास : व्यक्तित्व व कर्तृत्व/चौसठ ऋद्धि विधान	३.००
चिद्विलास/परमार्थ वचनिका	२.५०
णमोकार महामंत्र/विदेशों में जैनधर्म : उभरते पदचिन्ह	२.००
जिनपूजन रहस्य	२.००
मैं कौन हूँ	१.५०
अहिंसा महावीर की दृष्टि में/भरत बाहुबली नाटक	२.००

आचार्य रविषेण के पद्मपुराण पर आधारित

राम कहानी

"धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण ।
धर्म पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान ॥

संसार सुखों को प्राप्त करानेवाला भी धर्म ही है और धर्म से ही मुक्ति की प्राप्ति भी होती है; अतः प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि वह अपना जीवन धर्ममय बनाए ।

जो व्यक्ति धर्म के रास्ते पर नहीं चलता है, वह मनुष्य होकर भी पशु के समान ही है । मनुष्य और पशुओं के जीवन में एकमात्र धर्म का ही तो अन्तर है । खान-पान और विषय-वासनाएँ तो मनुष्य और पशुओं में समानरूप से ही पाई जाती हैं, एक धर्माचरण ही ऐसा है, जो पशुओं के जीवन में देखने में नहीं आता ।"

—गुरुजी धाराप्रवाह बोले जा रहे थे कि बीच में ही टोकते हुए सविनय विनय बोला — "गुरुजी ! यह कैसे हो सकता है कि जो धर्म निर्वाण की प्राप्ति का कारण है, वही धर्म सांसारिक सुखों की प्राप्ति भी कराए; क्योंकि संसार और मोक्ष तो परस्पर विरुद्ध हैं न ?"

अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा गया विनय का प्रश्न सुनकर प्रवचनकार गुरुजी बोले —

"तुम ठीक कहते हो कि संसार और मोक्ष परस्पर विरुद्ध हैं; अतः उनके कारण भी अलग-अलग होने चाहिए । दोनों के कारण अलग-अलग हैं भी; संसार सुखों का कारण

शुभभावरूप पुण्य है और मुक्ति का कारण वीतराग भावरूप—शुद्धभावरूप धर्म है । शुद्धभावरूप वीतरागभाव तो धर्म है ही, पर शुभभावरूप पुण्यभाव को भी व्यवहार से धर्म कह दिया जाता है । अतः जहाँ धर्म का फल सांसारिक सुखों को बताया जाय, वहाँ धर्म का अर्थ पुण्यभावरूप शुभभाव जानना चाहिए और जहाँ धर्म को मुक्ति का कारण बताया जाए, वहाँ धर्म शब्द का अर्थ शुद्धभावरूप वीतरागभाव जानना चाहिए । ज्ञानी धर्मात्माओं के जीवन में यथायोग्य दोनों ही धर्मभाव पाये जाते हैं और पाये जाने चाहिए ।

यद्यपि यह संसार तो दुःखमय ही है, इसमें रहनेवाले अधिकांश प्राणी भी दुःखी ही हैं; तथापि आत्मानुभवी ज्ञानीजन इसमें रहते हुए भी उसमें रचते-पचते नहीं हैं, सदा विरक्त ही रहते हैं । यह संसार रचने-पचने योग्य है भी नहीं ।

अनुकूलताएँ व प्रतिकूलताएँ तो सभी के जीवन में आती हैं । ज्ञानी धर्मात्माओं के जीवन में भी अनुकूलताओं के समान प्रतिकूलताएँ भी आती ही हैं; पर वे किसी भी स्थिति में अपना संतुलन नहीं खोते । यही तो ज्ञानी और अज्ञानी के जीवन में महान अन्तर है ।

सुख-दुख अर जीवन-मरण, हर काऊ के होय ।
ज्ञानी भोगे ज्ञान से, मूरख भोगे रोय ॥

सुख-दुःख किसके जीवन में नहीं होते ? चोट तो किसी को भी लग सकती है, घाव तो किसी को भी हो सकता है, दुर्दिन भी किसी को भी देखने पड़ सकते हैं; पर अज्ञानीजन जिन विषम परिस्थितियों में घबड़ाकर अपना संतुलन खो देते हैं, ज्ञानीजन उन्हीं स्थितियों से प्रेरणा प्राप्त करते हैं तथा धर्म के पथ पर और भी दृढ़ता से चलने का संकल्प करते

हैं एवं दूसरों को भी यही प्रेरणा देते हैं । यहाँ तक कि उनके प्रति भी सद्भाव रखते हैं, जिन्होंने उन्हें इन विषम स्थितियों में डाला होता है, उनका भी भला चाहते हैं, उन्हें भी धर्मपथ पर स्थिर रहने की प्रेरणा देते हैं ।

जब गर्भवती सीता को सेनापति कृतान्तबक्र श्रीराम के आदेश से वियाबान जंगल में अकेली छोड़ता है और पूछता है कि हे माता ! क्या श्रीराम को कोई सन्देश देना है ? तब ज्ञानी धर्मात्मा सीता एक ही बात कहती है कि हे सेनापति! तुम महाराज श्रीराम से मात्र इतना ही कहना कि जिसप्रकार लोकापवाद के भय से मुझे त्याग दिया, उसीप्रकार लोकापवाद के भय से धर्म को मत छोड़ देना; क्योंकि मुझे छोड़ने से तो कोई बड़ी हानि होनेवाली नहीं है, पर यदि धर्म को छोड़ दिया तो भव-भव में अनन्त दुःख उठाने पड़ेंगे ।

लोक में सच्चे धर्म की निन्दा करनेवाले भी कम नहीं हैं । लोकापवाद से डरना तो अच्छा है, पर इतना नहीं कि न्याय-अन्याय का भी ध्यान न रहे ।

देखो, धर्मात्मा सीता ने इतने बड़े संकट के सन्मुख होने पर भी धैर्य नहीं छोड़ा, अपना संतुलन कायम रखा; तभी वे इतने बड़े संकट को झेल सकीं । सर्वत्र ही सन्तुलन श्रेष्ठ है, आवश्यक है ।

गुरुजी बोले जा रहे थे कि विनयावनत विनय बोला – "ये सीतादेवी कौन थीं ? श्रीराम कौन थे ? उन्होंने सीतादेवी को क्यों छोड़ा था ?"

"अरे, तुम राम कहानी भी नहीं जानते । राम कहानी जानने के लिए आचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण पढ़ना चाहिए। पद्मपुराण मूलतः तो संस्कृत भाषा में है, जिसे शायद तुम

न पढ़ सको, पर पण्डित दौलतरामजी कासलीवाल ने उसका हिन्दी अनुवाद किया है, उसे पढ़कर तुम अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकते हो ।"



गुरुजी की बात सुनकर सभी श्रोता एकसाथ बोले —

"गुरुजी आप ही हमें राम कहानी सुनाइए न !"

गुरुजी समझाते हुए कहने लगे कि "राम कहानी इतनी छोटी थोड़े ही है कि एक दिन में सुना दी जावे, उसमें तो अनेक दिन लगेंगे । यदि आप सब रोजाना आने को तैयार हों तो ---------- ।"

सभी एक साथ बोले — "हम प्रतिदिन आयेंगे, आप सुनाइए तो सही ।"

"अवश्य सुनायेंगे, पर कल से । कल से सभी लोग समय पर आना; क्योंकि मैं एक ही बात को बार-बार नहीं सुनाऊँगा ।"

—यह कहते हुए गुरुजी चल दिये तो श्रोता भी राम कहानी सुनने की भावना संजोये अपने-अपने घर चल गये। ०

पहला दिन

प्रातःकाल जब गुरुजी पधारे तो उन्होंने आते ही कहा कि ध्यान से सुनो, अब हम रामकथा आरम्भ करते हैं। यह तो तुम जानते ही होंगे कि त्रेशठशलाका के महापुरुषों में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण होते हैं।

बलभद्र और नारायण भाई-भाई ही होते हैं और प्रतिनारायण तीन खण्ड का मालिक अर्द्धचक्री सम्राट होता है। अर्द्धचक्री सम्राट प्रतिनारायण को युद्ध में पराजित कर नारायण अर्द्धचक्रवर्ती सम्राट बनते हैं। यह प्रकृतिजन्य शाश्वत नियम है। राम, लक्ष्मण और रावण भरतक्षेत्र के इस अवसर्पिणी काल के आठवें बलभद्र, आठवें नारायण और आठवें प्रतिनारायण थे।

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुब्रतनाथ के काल में उत्पन्न राम और लक्ष्मण अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी[१] अर्थात् सूर्यवंशी[२] राजा दशरथ के पुत्र थे। इस वंश का नाम रघुवंश, राजा दशरथ के दादा अतिशय पराक्रमी राजा रघु के नाम पर चल पड़ा था। राजा रघु के पुत्र का नाम अनरण्य पड़ा, क्योंकि उनने लोगों को बसाकर देश को अनरण्य (वनों से रहित) कर दिया था। राजा अनरण्य के दो पुत्र थे– 'अनन्तरथ और दशरथ।

---

१. पद्मपुराण : द्वाविंशति पर्व १५९

२. पद्मपुराण : पंचम पर्व, श्लोक ४

एक दिन राजा अनरण्य महल में बैठे थे। तब दूत ने आकर सूचना दी कि आपके मित्र राजा सहस्ररश्मि रावण से पराजित होकर प्रतिबोध को प्राप्त हुए और अब दीक्षा धारण कर रहे हैं तथा आपको दिये वचन के अनुसार दीक्षा लेने से पहले उन्होंने आपके पास यह सूचना भिजवाई है।

मित्र के वैराग्य के समाचार सुनकर राजा अनरण्य भी दीक्षा लेने को उद्यत हुए और अपने बड़े पुत्र अनन्तरथ को बुलाकर बोले कि मैं इस दुःखमय संसार से पार होने के लिए मुनिव्रत लेना चाहता हूँ। अतः अब यह राज्य तुम सम्हालो। इसके अलावा भी अगर तुम्हारी कुछ और इच्छा हो तो कहो।

यह सुनकर वैराग्यचित्त अनन्तरथ बोले – क्या कहा आपने, और कोई इच्छा? इच्छाओं का क्या कहना! तीव्रगामी विमान भी कहीं न कहीं विश्राम लेते ही हैं, कल्पनाओं की भी सीमा होती ही है, स्वप्न भी जागृत अवस्था में अपनी गति बंद कर देते हैं; विचार श्रृंखलाएँ किसी एक केन्द्रबिन्दु को पाकर थम जाती हैं; पर इच्छाओं का कोई अन्त नहीं। इच्छा न थमती है, न विश्राम करती है, न ही अपनी गति बन्द करती है, न ही तृप्त होती है; अपितु हरपल, हरक्षण बढ़ती ही रहती है। एक इच्छा पूरी हुई कि दूसरी उत्पन्न हो जाती है तथा कभी-कभी तो एक इच्छा पूरी भी नहीं हो पाती और अनेक इच्छाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अतः अब मैं भी आपके साथ उस पथ पर बढ़ना चाहता हूँ, जहाँ इच्छाएँ उत्पन्न ही न हों।

राजा अनरण्य के बहुत समझाने पर भी जब युवराज अनन्तरथ अपने निश्चय पर अटल रहे, तब राज्यलक्ष्मी से अत्यन्त निस्पृह राजा अनरण्य ने अपने एक माह के पुत्र

दशरथ[1] को राजलक्ष्मी सौंप कर बड़े पुत्र अनन्तरथ के साथ अभयसेन मुनि के पास जाकर दिगम्बरी दीक्षा ली। सो उचित ही है; क्योंकि संसार से उदास, वैराग्य-प्रवृत्ति वाले निर्मोही व्यक्तियों की वृत्ति ऐसी अद्‌भुत ही होती है।

राजा अनरण्य ने मुनि बनकर घोर तपस्या की, जिससे उन्होंने कर्मों का नाश कर मुक्तिरमा का वरण किया तथा उनके बड़े पुत्र मुनि बनकर पृथ्वी पर बिहार करने लगे। क्लेशरहित बाईस परीषह का पालन करने से वे 'अनन्तवीर्य' नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ काल पश्चात् इन्होंने भी मुक्ति प्राप्त की और उनके छोटे भाई राजा दशरथ माँ की देख-रेख में बड़े होकर सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

राजा दशरथ की चार शादियाँ हुई थीं। उनकी पत्नियों के नाम थे – अपराजिता (कौशल्या), सुमित्रा, कैकेई और सुप्रभा; जिनसे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार पुत्रों की उत्पत्ति हुई।

सम्यग्दृष्टि परम वैभवशाली राजा दशरथ अपने राज्य को तृण समान मानते थे। धार्मिक प्रवृत्तिवाले राजा दशरथ ने अनेकों नये मन्दिर बनवाये, पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया।

एकबार जब राजा दशरथ राजसभा में तत्त्वचर्चा कर रहे थे कि तभी नारदजी आये और एकान्त होने पर उन्होंने बताया कि तीन खण्ड के सम्राट अर्द्धचक्री दशानन को सागरबुद्धि नामक निमित्तज्ञानी ने बताया है कि उनकी मृत्यु दशरथ के पुत्र व जनक की पुत्री के निमित्त से होगी, जिसे सुनकर दशानन चिन्तित हुआ। अर्द्धचक्री दशानन को चिन्तित देखकर उनके

१. पद्मपुराण : पर्व १२, श्लोक १६६

छोटे भाई विभीषण ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि आप चिन्तित न हों। उन दोनों के पुत्र-पुत्री होने से पहले ही मैं उन्हें यमलोक पहुँचा दूंगा, फिर न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

तुम दोनों के कुल-रूपादि लक्षणों से अपरिचित विभीषण बहुत समय से सभी राज्यों में घूम रहा है और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले कुशल गुप्तचरों को भी तुम दोनों को ढूँढ़ने के लिए छोड़ा हुआ है, पर अभीतक तुम दोनों का उन्हें पता नहीं चल सका है। अतः मुझे भ्रमणशील जानकर उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या तुम इस पृथ्वी पर दशरथ व जनक नामक किन्हीं दो व्यक्तियों को जानते हो? उनके खोटे अभिप्राय को समझकर मैंने उनसे कहा कि मैं ढूढ़कर बताऊँगा। यह विभीषण जबतक तुम्हारे विषय में कुछ कर नहीं लेता, तबतक तुम अपने आपको छिपाकर कहीं गुप्तरूप से रहने लगो।

इसप्रकार राजा दशरथ को सतर्क करने के पश्चात् नारद राजा जनक के पास चले गए और उन्हें भी इसीप्रकार के समाचार देकर सतर्क किया।

राजा दशरथ ने अपने विश्वस्त स्वामीभक्त समुद्रहृदय नामक मंत्री को बुलाया और पूरी घटनी सुनाई।

गंभीर समुद्रहृदय कुछ विचारकर बोले कि आप किसी की पहिचान में न आ सको– इसप्रकार वेष बदलकर पृथ्वी पर घूमों, शेष व्यवस्था मैं कर लूँगा।

राज्यभार विश्वस्त मंत्री को सौंपकर राजा तो नगर से बाहर चले गये और मंत्री ने राजा के ही रूप – आकार का एक सजीव-सा पुतला बनवाया। उसके अन्दर लाख आदि

का रस भरवाकर खून की रचना की और उस पुतले को राजा के समान ही सिंहासन पर बैठा दिया। दूर से देखने पर वह पुतला दशरथ-सा ही लगता था। अतः किसी को रंचमात्र भी शंका नहीं हुई।



राजा जनक के मंत्री ने भी इसीप्रकार किया। संसार की स्थिति के ज्ञाता दोनों राजा पृथ्वी पर छिपे-छिपे सामान्यजन की तरह पैदल भटकते फिरते रहे।

यह सुनकर तार्किकप्रकृतिवाला अनुराग बोला – गुरुजी, राजा दशरथ व जनक को छिपने की जरूरत क्यों पड़ी? वे भी राजा थे, शत्रुओं की सेना का सामना कर सकते थे, फिर यहाँ तो शत्रु की सेना थी ही नहीं, मात्र गुप्तचर थे जो कि यह भी नहीं जानते थे कि जिन्हें मारने का कार्य उन्हें सौंपा गया है, वे राजा हैं या सामान्य प्रजा में से दो व्यक्ति। तो फिर राजा दशरथ व जनक ने अपनी सुरक्षा की व्यवस्था कड़ी करने की अपेक्षा वेष बदल कर नगर से बाहर रहना उचित क्यों समझा?

गुरुजी बोले – तुम्हारी शंका उचित ही है, क्योंकि वीरों का धर्म युद्धभूमि में डटकर मुकाबला करना है, डरकर छिपना

नहीं। पर राजा दशरथ व जनक अपनी व दशानन की शक्ति के अन्तर को अच्छी तरह जानते थे। वे जानते थे कि दशानन अर्द्धचक्री सम्राट है। तीन खण्ड के बड़े-बड़े शक्तिशाली भूमिगोचरी और विद्याधर राजा उनके आधीन हैं। उनके पिता अनरण्य के परममित्र बलशाली सहस्ररश्मि को उसने युद्ध में हराकर अपने आधीन किया है। अतः उन्होंने यही उचित समझा; क्योंकि अपने से कई गुने अधिक शक्तिशाली से बिना सोचे-बिचारे भिड़ जाना भी तो समझदारी का काम नहीं है।

शत्रु के समान अपनी शक्ति न हो तो युक्ति से प्राणों की रक्षा करना बुद्धिमानी ही है। इस समय सामना करने से न केवल उनकी जान को खतरा था, अपितु व्यर्थ में दोनों ओर की सेनाओं का संहार भी होता। धर्मात्मा दशरथ और जनक को जनसंहार उचित प्रतीत नहीं हुआ और उन्होंने अपने बुद्धिमान मंत्रियों की सलाह मानकर जो कुछ किया, उचित ही किया।

विपत्ति किस पर नहीं आती है। बड़े-बड़े सम्राटों को भी छिपकर जीवनरक्षा करनी पड़ती है। धिक्कार है इस जीवन को — कहते-कहते गुरुजी एकदम गम्भीर हो गए।

गुरुजी को मौन देख कर एक श्रोता बोला — उसके बाद क्या हुआ गुरुजी?

गम्भीर गुरुजी ने धीरे से कहा — अब कल। इसप्रकार प्रथम दिन की सभा समाप्त हो गई और सब अपने-अपने घर चल दिये ।

दूसरा दिन

दूसरे दिन कथा को आगे बढ़ाते हुए गुरुजी ने कहा कि जब विद्युतविलसित नामक विद्याधर के माध्यम से लंकाधिपति दशानन के भाई विभीषण को यह पता चला कि उनके आदेशानुसार दशरथ व जनक की हत्या कर दी गई है, तो वह भाई के स्नेहवश किये गये इस दुष्कृत्य पर भी अपने-आपको कृतकृत्य मानता हुआ लंका वापिस लौट गया।

कुछ दिन पश्चात् विवेक जाग्रत होने पर क्रोध में कराये गये नरहत्या के उस जघन्य कृत्य पर विभीषण को पश्चाताप होने लगा। सो ठीक ही है, क्योंकि बिना विचारे काम करनेवालों को अन्त में पश्चाताप होता ही है। कहा भी है कि क्रोध में व्यक्ति अंधा हो जाता है। इस अवस्था में प्रायः वह ऐसी गल्तियाँ कर बैठता है, जिनका प्रायश्चित अनिवार्य हो जाता है।

विभीषण मन में विचार करता है कि भाई के स्नेहवश मैंने उन दोनों को व्यर्थ ही मरवाया। क्या कभी सिंह को भी गाय से खतरा हो सकता है? क्या चींटी भी हाथी का मुकाबला कर सकती है? नहीं, तो फिर यह सब क्यों? कहाँ बिचारे वे अल्पशक्ति के धारक भूमिगोचरी और कहाँ पाताल में स्थित, चारों ओर से सुरक्षित अलंकारोदय में बसे अनेक विद्याओं से युक्त विद्याधर! कहाँ हमारा भाई अर्द्धचक्री राजा दशानन व कहाँ उनके ही राज्य के अन्तर्गत आनेवाले, उनकी कृपा पर जीनेवाले वे छोटे-छोटे दोनों राजा, कोई तुलना ही नहीं है दोनों में। पर अब मैं कर ही क्य

हूँ; क्योंकि हाथ से निकला तीर, मुँह से निकली वाणी और बीता हुआ समय कभी वापिस नहीं आता। भूतकाल लौटाया नहीं जा सकता, पर उससे कुछ सीखा तो जा सकता है।

अतः अब मैं संकल्प करता हूँ कि भविष्य में कभी निर्दोष प्राणियों की हत्या नहीं करूँगा, किसी पर अन्याय नहीं करूँगा और न ही किसी के ऐसे कार्य का अनुमोदन करूँगा, जो कि नीतिसम्मत न हो।

नीति व न्यायमार्ग पर चलनेवाला शत्रु भी मेरे लिए भाई समान ही होगा और अनीति-अन्यायमार्गी यदि कदाचित् भाई भी हुआ तो वह मेरे लिए शत्रु समान ही होगा।

इसप्रकार मन में दृढ़ निश्चय कर अपने उद्विग्न मन को शांत करने के लिए विभीषण जिनमंदिर जाकर स्वाध्याय करने लगा।

यह सुनकर कुछ सोचते हुए अनुराग बोला – "गुरुजी तो क्या राजा दशरथ व जनक के मंत्रियों की योजना सफल नहीं हुई थी? क्या वे पहिचान लिए गये और विभीषण के गुप्तचरों के हाथों मारे गये?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है" – गुरुजी बोले। "राजा दशरथ व जनक तो सकुशल रहे, उनके मंत्रियों की युक्ति शत-प्रतिशत सफल रही। विभीषण के गुप्तचरों ने राजा दशरथ व जनक के पुतलों को मारकर राजा दशरथ व जनक को ही मरा समझा व इसकी सूचना विभीषण को दे दी।

राजा दशरथ व जनक के महल से उठने वाले क्रन्दन को सुनकर विभीषण व गुप्तचरों को अपने कार्य की सफलता का विश्वास हुआ और वे शीघ्र ही लंका लौट गए। महल में जब मंत्री के द्वारा रानियों को पता चला कि राजा दशरथ

व जनक तो सकुशल हैं, यह मरणावस्था को प्राप्त उनका हमशक्ल पुतला था तो वे भी शान्त हो गईं।"

रावण की कहानी विस्तार से जानने के इच्छुक विनय ने पूछा – गुरुजी! अर्द्धचक्री दशानन किस वंश के थे? उन्होंने तीन खण्ड को किसप्रकार जीता? वे रावण क्यों कहलाने लगे? कृपया, उनका परिचय विस्तार से दीजिए न।

गुरुजी कहने लगे – दशानन के वंशजों के पास लंका और अलंकारोदय (पाताल लंका) द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ के समय से चली आ रही थी।

एक समय की बात है पूर्वजों से चले आ रहे वैर के कारण राजा सहस्रनयन व राजा पूर्णमेघ में घमासान युद्ध हुआ। राजा सहस्रनयन ने द्वितीय चक्रवर्ती सम्राट सगर की सहायता से राजा पूर्णमेघ को युद्ध में मारकर उसके राज्य को जीत लिया और उसके बेटे मेघवाहन को मारने के लिए पीछा किया। अपने प्राणों की रक्षा के लिए मेघवाहन द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ के समवशरण में चला गया। पीछा करते हुए सहस्रनयन भी वहाँ पहुँचा, पर तीर्थंकर भगवान के प्रभाव से उनका वैरभाव दूर हो गया और उन्होंने शांतिपूर्वक धर्मश्रवण किया।

शत्रु से भयभीत विद्याधर मेघवाहन को देखकर वहाँ उपस्थित राक्षसों के इन्द्र भीम को जातिस्मरण हुआ कि यह मेघवाहन पूर्वभव में मेरा पुत्र था, अभी शत्रु से हीनशक्ति होने के कारण अपनी राज्यसंपदा से वंचित हुआ अत्यन्त दुःखी है; अतः पूर्वजन्म के पुत्र के स्नेहवश उनके दुःख को दूर करने के लिए भीम ने मेघवाहन को राक्षसद्वीप व रत्नमयी हार देकर कहा कि तुम लंका को अपनी राजधानी बनाना

और शत्रु का भय होने पर अलंकारोदय (पाताल लंका) में जाकर रहना; क्योंकि वहाँ शत्रु का प्रवेश दुर्लभ है। साथ ही साथ भीम ने उन्हें अनेक राक्षसविद्याएँ भी दीं। जिन्हें लेकर मेघवाहन इच्छानुसार चलनेवाले कामग नामक विमान में चढ़कर आकाशमार्ग से लंका गया।

त्रिकुटाचल पर्वत के नीचे बसी दक्षिण दिशा की आभूषणस्वरूप लंकानगरी में मेघवाहन ने अपनी रक्षा में समर्थ राक्षसों के इन्द्र भीम द्वारा प्रदत्त विद्याओं के बल से बहुत समय तक सुखपूर्वक राज्य करने के पश्चात् अपने पुत्र महारक्ष को राज्य देकर दीक्षा ले ली।

इसी वंश में बहुत काल बाद राक्षस नाम के प्रभावशाली राजा हुए, जिनके नाम के कारण ही यह राक्षस वंश कहलाया।

राक्षसवंशी सभी विद्याधर हम-तुम जैसे मनुष्य हैं., राक्षस नहीं। राक्षसद्वीप के रक्षक होने से वहाँ रहनेवाले सभी विद्याधर राक्षस कहलाने लगे। ये सभी विद्याधर माया व पराक्रम से युक्त थे तथा विद्या, बल और महाकांति के धारक थे।

राक्षसवंश में राजा राक्षस के बाद अनेकों राजा हुए, जो अपने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा धारण करते रहे। उनमें से कुछ तो अपने उग्र तप द्वारा मोक्ष गए एवं कुछ सर्वार्थसिद्धि व स्वर्गादि गए।

कालान्तर में पाताल लंका में सुकेश नामक राजा हुए, जिनकी इन्द्राणी नामक पत्नी से तीन पुत्र हुए — माली, सुमाली और माल्यवान।

तीनों के युवा होने पर उनके पिता ने कहा कि तुम लोग क्रीड़ा करने किष्किधापुर की तरफ जाओ तो दक्षिण के समुद्र की ओर मत जाना। न जाने के कारण पूछने पर राजा

सुकेश बोले कि लंकापुरी दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ के समय से अपने वंश में चली आ रही थी, पर बाद में अशनिवेग और अपना युद्ध हुआ और उसने लंका जीत ली। इस समय निर्घात नामक अत्यन्त क्रूर और बलवान विद्याधर उसकी रखवाली करता है। यह सुनकर माली ने क्रोधित होकर निर्घात पर आक्रमण किया और निर्घात को जीतकर अपने समस्त परिवार को लंका में बुलाया। इसके पश्चात् तीनों भाइयों ने विजयार्द्ध पर्वत की दोनों श्रेणियों को अपने पराक्रम से जीता।

राजा सुकेश ने कुछ दिन सुखपूर्वक राज्य किया, फिर बड़े पुत्र माली को राज्य देकर मुनिदीक्षा ले ली। उनके साथ उनके परममित्र किष्किंधापुर के राजा किष्किंध ने भी अपने पुत्र सूर्यरज को राज्य देकर दीक्षा ले ली।

राजा माली ने कुछ कालपर्यन्त सुखपूर्वक राज्य किया। पर कुछ दिनों बाद राजा इन्द्र का बल पाकर कुछ विद्याधर राजा माली की आज्ञा भंग करने लगे।

इन्द्र विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में स्थित रथुनूपुर के राजा सहस्रार का बेटा था। उसने स्वर्ग के देवों के समान ही सारी रचना की थी। अपनी पत्नी का नाम शची रखा था, हाथी का नाम ऐरावत रखा। उर्वशी, मेनका, रम्भा आदि नर्तकियों के नाम दिये – इसीप्रकार मंत्री, सेनापति, लोकपाल, सभी की व्यवस्था व नाम स्वर्ग के इन्द्र के समान की। अनेकों विद्याधर राजा इन्द्र की सेवा में लग गए और राजा इन्द्र के बल से माली की अवहेलना करने लगे, जिससे क्रोधित होकर महाबलवान राजा माली ने किष्किंधापुर के वानरवंशियों को साथ लेकर राजा इन्द्र पर आक्रमण करने की तैयारी की। राजा माली ने अपने आधीन समस्त विद्याधरों को युद्ध के लिए चलने को आज्ञा-पत्र भेजे। उनमें से कुछ विद्याधर तो

राजा माली के साथ रहे और कुछ ने राजा इन्द्र की शरण ली।

इसके पश्चात् देवों और राक्षसों में घमासान युद्ध हुआ।

राजा इन्द्र की सेना के विद्याधर देव कहलाते थे और राजा माली की सेना के विद्याधर राक्षस। वस्तुतः ये देव और राक्षस नहीं, अपितु सभी विद्याधर हम-तुम जैसे मनुष्य गति के ही जीव थे।

युद्ध में राजा इन्द्र ने राजा माली को मार दिया। शक्तिशाली राजा इन्द्र द्वारा अपने भाई राजा माली को मरा देखकर और परिस्थिति की प्रतिकूलता का अनुभव कर नीतिकुशल सुमाली समय की नजाकत देखकर परिवार सहित पाताल लंका में चला गया। उनके छोटे भाई माल्यवान ने राजा इन्द्र की सेना को तबतक रोके रखा, जबतक राक्षसवंशी व वानरवंशी सेना सुरक्षित पाताललंका में नहीं पहुँच गई। राजा इन्द्र शत्रु को जीतकर गर्वपूर्वक पिता के पास गया तथा लंका का राज्य विश्रवस नामक राजा को दिया। उधर पाताल लंका में राजा सुमाली के रत्नश्रवा नामक पुत्र हुआ। युवा होने पर वह विद्या साधने के लिए पुष्पक नामक वन में गया।

कुछ दिनों पश्चात् रत्नश्रवा का नियम समाप्त हुआ। उसे मानस्तभिनी विद्या सिद्ध हुई। सिद्धों को नमस्कार कर उसने अपना ध्यान भंग किया तो सामने एक दिव्य सुन्दरी को अकेले वैठे देखा तो राजा ने पूछा कि तुम कौन हो? तुम्हारा क्या नाम हैं, यहाँ क्या कर रही हो? वह बोली — मैं राजा व्योमविन्दु की छोटी पुत्री हूँ, मेरा नाम केकसी है। मुझे पिता ने आपकी सेवा के लिए भेजा है। अतः आप मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें। यह सुनकर रत्न श्रवा ने अपनी मानस्तम्भिनी विद्या के बल से उसी वन में

पुष्पांतक नामक नगर बसाया और केकसी से विधिपूर्वक विवाह कर उसी नगर में सुखपूर्वक रहने लगा।

एक दिन केकसी ने रात्रि के चतुर्थ प्रहर में तीन स्वप्न देखे—

(१) गर्जता हुआ एक परम तेजस्वी महाबली शेर हाथियों के कुम्भस्थल को विदारता हुआ आकाश से पृथ्वी पर आकर मुँह में से होकर गोद में समा गया।

(२) अपनी किरणों से अंधकार को दूर करता हुआ सूर्य गोद में आकर बैठ गया।

(३) कुमुदिनी को खिलाता हुआ और अंधकार को दूर करता हुआ पूर्णमासी का अखण्ड चन्द्रमा।



उक्त स्वप्नों का फल जब रानी ने राजा से पूछा, तब अष्टांग निमित्त के जाननेवाले राजा ने इनका फल बताते हुए कहा कि हे प्रिये ! तेरे तीन पुत्र होंगे। जिनकी कीर्ति जगत में फैलेगी। वे बड़े पराक्रमी, कुल की वृद्धि करनेवाले, महासम्पदा के भोगनेवाले, अपनी दीप्ति से सूर्य को जीतनेवाले, कांति से

चन्द्रमा को जीतनेवाले, गंभीरता से समुद्र को जीतनेवाले और स्थिरता में पर्वत को जीतनेवाले होंगे। जिनके नाम सुनने मात्र से शत्रु काँपेंगे। इनमें प्रथम पुत्र आठवाँ प्रतिनारायण होगा। यह जिस चीज की हठ पकड़ेगा, उसे नहीं छोड़ेगा। और तीनों ही पुत्र युद्ध के नाम सुनकर प्रसन्न होवेंगे।

यह सुनकर रानी बोली कि हे नाथ ! हम दोनों ही कोमलचित्त, जिनमार्गी हैं; फिर हमारे पुत्र क्रूरमार्गी कैसे होंगे ?

राजा बोले—यह जीव अपने पुण्य-पाप के अनुसार शरीर धारण करता है। हम तो निमित्तमात्र हैं। बड़ा पुत्र जिनमार्गी तो होगा, पर किंचित् क्रूरपरिणामी होगा और दोनों छोटे पुत्र वीर, महाधीर, जिनमार्ग में प्रवीण होंगे।

कुछ दिन पश्चात् दशानन गर्भ में आए, तब माता की क्रूर इच्छाएँ होने लगीं। वह इन्द्र के ऊपर आज्ञा चलाना चाहती, वैरियों के सिर पर पैर रखना चाहती, खड्ग में मुंह देखती।

इसप्रकार उद्यत चेष्टाओं की इच्छुक माँ के यथासमय एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। उसके जन्म होने पर मित्रों के यहाँ शुभ-शकुन हुए और शत्रुओं के यहाँ अनकों उत्पात हुए।

पिता रत्नश्रवा ने उस बालक का जन्मोत्सव बहुत उत्साह से मनाया।

कुछ देर पश्चात् ही माता-पिता आश्चर्यचकित हो उस बालक को देखते ही रह गए, क्योंकि वह बालक राक्षसों के इन्द्र भीम के द्वारा दिए हुए उस हार से खेल रहा था, जिसकी हजारों नागकुमार देव रक्षा करते हैं।



बच्चे को सकुशल देखकर माँ ने उसे सीने से लगाकर प्यार किया और पिता मन में सोचते हैं कि हजारों नागकुमार देव जिसकी रक्षा करते हैं, ऐसे हार सो जो बालक प्रथम दिन ही खेलता हो, वह सामान्य पुरुष नहीं, अवश्य ही महाशक्ति का धारक होगा। कहा भी है कि पूत के लक्षण पालने में नजर आने लगते हैं।

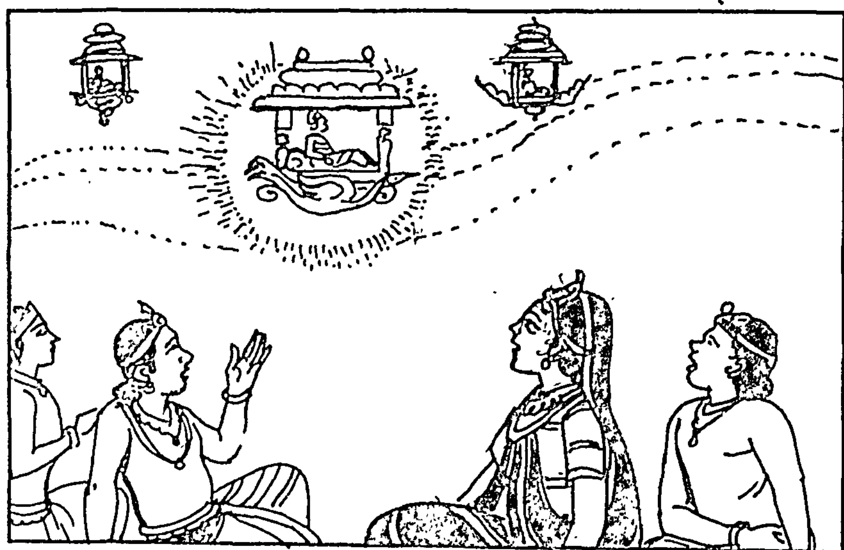
हार की मणियों में बालक के दशमुख देखकर पिता रत्नश्रवा ने उसका नाम दशानन (दशमुख) रखा।

कुछ समय पश्चात् रत्नश्रवा व केकसी के क्रमशः सूर्य के समान तेजस्वी भानुकर्ण (कुम्भकर्ण), चन्द्रमा के समान मुखवाली चन्द्रनखा और सौम्य सूरतवाले विभीषण उत्पन्न हुए।

•

तीसरा दिन

कुमार अवस्था प्राप्त होने पर एक दिन दशानन अपने भाई भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) और विभीषण के साथ अपनी माँ केकसी के पास बैठे हुए अपने पूर्वजों की चर्चा कर रहे थे कि उसी समय अपनी कांति से दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए कोई विद्याधर अपनी समस्त विभूति के साथ आकाशमार्ग से निकला। उस समस्त विभूति को देखकर सहजोत्पन्न जिज्ञासावश दशानन ने माँ से पूछा—



"माताजी यह कौन है? क्या कोई देव है?"

यह सुनकर माँ बोली— "नहीं बेटा, यह कोई देव नहीं। यह तो मेरी बड़ी बहिन कौशिकी का बेटा वैश्रवण है, यह तेरा मौसेरा भाई ही है। इसे अनेकों विद्याएं सिद्ध हैं। यह

राजा इन्द्र का लोकपाल है। राजा इन्द्र ने तुम्हारे दादा सुमाली के बड़े भाई राजा माली को युद्ध में मारकर व सुमाली को लंका से निकालकर, हमारे कुल में चली आई लंका का इसे लोकपाल बनाया है।"

इतना कहकर माँ ने लम्बी आह ली और फिर बोली– "बेटा! तुम्हारे दादाजी को तो लंका की ही चाह है। उन्हें दिन-रात चैन नहीं है, वे हमेशा लंका प्राप्ति के ही स्वप्न देखा करते हैं। मैं भी इसी चिन्ता में सूख गई हूँ; क्योंकि स्थानभ्रष्ट से तो मरण अच्छा। पता नहीं वह दिन कब आएगा, जब हम तेरे सहयोग से अपने कुल की भूमि लंका में पुनः प्रवेश करेंगे।"

यद्यपि वैश्रवण केकसी की बड़ी बहिन का ही बेटा था, तथापि वह अपने पुत्रों को उसके विरुद्ध ही भड़का रही थी; क्योंकि अपने पूर्वजों का अपमान किसी को भी बर्दाश्त नहीं होता और अपने पूर्वजों द्वारा खोई हुई सम्पदा को भी प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है।

यह सुनकर भानुकर्ण ने कहा– "माँ! मुझे तो दादाजी हमेशा प्रसन्न ही नजर आए। उन्हें कोई दुःख हो यह तो हमें कभी महसूस ही नहीं हुआ।"

माँ ने कहा– "बेटा! अभी तुम सभी छोटे हो, उनका दुःख दूर करने में समर्थ नहीं हो। अतः इस समय उन्होंने अपने दुःख को तुम्हारे सामने प्रगट करना उचित नहीं समझा। दूसरी बात यह भी है कि इस मानव जगत में कुछ मानव ऐसे भी होते हैं, जो पेड़-पौधों की तरह सबकुछ सह जाते हैं, पर उनके चेहरे पर दर्द झांकता नहीं है, पीड़ा की तस्वीर उनकी आँखों में नजर नहीं आती है और न ही दुःख की

वेदना उनके शब्दों में स्फुटित होती है। बस, वे तो फूलों की तरह मुस्कराहट ही बिखेरते रहते हैं। तुम्हारे दादाजी भी इसी तरह के गम्भीर व्यक्ति हैं। अतः उनकी अन्दर की पीड़ा उनके चेहरे पर नजर नहीं आती।"

यह सब सुनकर और माँ को दुःखी देखकर तीनों भाइयों ने माँ को सान्त्वना दी। सो उचित ही है; क्योंकि समर्थ व्यक्ति अपने पूर्वजों के दुःखों को सहन नहीं कर सकते हैं और वे अपने वचनों से उन्हें आश्वस्त कर देना चाहते हैं कि वे उनके दुःखों को दूर कर उनकी कामना की पूर्ति करने का पूरा-पूरा प्रयास करेंगे।

इसके पश्चात् वे तीनों भाई माँ की आज्ञा लेकर विद्याएं साधने के लिए जंगल में चले गए और वहाँ जाकर विद्या प्राप्ति के लिए उन्होंने तप करना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उन्हें सर्वकामप्रदा विद्या सिद्ध हुई, जिससे उन्हें भूख नहीं लगती थी। उसके पश्चात् अन्य विद्याओं को साधने के लिए उन्होंने पुनः तप प्रारम्भ किया।

जब दशानन, भानुकर्ण और विभीषण तप कर रहे थे, तभी जम्बूद्वीप का अधिपति अनावृत नामक यक्ष पत्नियों सहित वहाँ आया और उसने तीनों भाइयों को तप से डिगाने के लिए अनेक प्रयास किए। जैसे— विद्याबल से उनके माता-पिता को रोते-कलपते दिखाया, भाइयों को मरा दिखाया; पर दृढ़श्रद्धानी दशानन बिल्कुल भी विचलित नहीं हुए। अतः उन्हें तत्क्षण अनेकों विद्याएँ सिद्ध हुईं; तथा भानुकर्ण व विभीषण दोनों भाई किंचित् विचलित हो गए, अतः उन्हें क्रमशः पाँच व चार विद्याएँ ही सिद्ध हुईं।

अडिग तपस्या के बल से दशानन को अनेक विद्याओं से संयुक्त देखकर अनावृत यक्ष उनसे प्रसन्न होकर बोला कि

तुम समस्त शत्रुओं को जीतोगे और तुम जब भी मुझे स्मरण करोगे तब मैं तुम्हारे पास आऊँगा, तब तुम्हें कोई नहीं जीत सकेगा। यह कहकर अनावृत यक्ष तो चला गया और दशानन ने वहीं पर विद्या के प्रभाव से स्वयंप्रभ नामक नगर बसाया।

दशानन को अनेक विद्याएँ सिद्ध हुई है—यह सुनकर उनके दादा सुमाली और माल्यवान तथा पिता रत्नश्रवा बहुत प्रसन्न हुए, सो उचित ही है; क्योंकि अपनी सन्तान की सफलता देखकर उनके पूर्वज (वुजुर्ग) और इष्टमित्र प्रसन्न होते ही हैं।

प्रसन्नचित दशानन के पिताजी व दादाजी प्रमुख राक्षसवंसी व वानरवंसी राजाओं के साथ दशानन से मिलने गये।

इष्टमित्रों सहित दादाजी व पिताजी को आया देखकर दशानन ने सबका यथोचित सम्मान किया, भोजनादि कराया और वस्त्रादि भी दिए। सो उचित ही है; क्योंकि सुयोग्य संतान अपने पूर्वजों और इष्टमित्रों का उचित आदर-सम्मान करती ही है।

भोजनादि के उपरांत सभी एक-दूसरे से बातें करने लगे। वार्तालाप के बीच बड़े भाई माली की चर्चा आने पर उनके छोटे भाई सुमाली बेहोश हो गए। होश में आने पर दशानन के आग्रहपूर्वक पूछे जाने पर वे बोले कि हमें अवधिज्ञानी मुनि ने बताया था कि राजा इन्द्र के द्वारा राजा माली के दिवंगत् होने पर जो लंका तुम्हारे हाथ से निकल गई है, उसमें तुम्हारा पुनः प्रवेश तुम्हारे पौत्र (पुत्र के पुत्र) के प्रभाव से होगा। वह शत्रुओं से अपने पूर्वजों की भूमि छुड़ाकर उन्हें अपना दास बनाएगा। बस, तभी से हम तुम्हारे बड़े होने का इंतजार कर रहे हैं, ताकि अपनी शक्ति से तुम हमें हमारे

पूर्वजों की भूमि में पुनः प्रवेश दिलाओ। तुम तो प्रतिनारायण हो, हमारे कुल के दीपक हो।

यह सुनकर दशानन गंभीर हो गए और लंका को शीघ्र जीतने के इच्छुक वे कुछ दिन पश्चात् ही चन्द्रह्रास खड्ग की प्राप्ति हेतु भीम नामक वन में तप करने चले गए।

दशानन को थोड़े ही दिनों में सर्व विद्याएँ सिद्ध हुई हैं, यह सुनकर विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में स्थित असुरसंगीत नामक नगर के प्रवल योद्धा व दैत्यों के अधिपति विद्याधर राजा मय ने विचार किया कि दशानन अवश्य ही कोई महापुरुष होगा; अतः मुझे अपनी सर्वगुणसम्पन्न रूपवती पुत्री मंदोदरी का विवाह उससे करना चाहिए। सो उचित ही है; क्योंकि सभी माता-पिता अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर की तलाश में निरन्तर रहते ही हैं।

मंत्रियों से विचार-विमर्श कर वे अपनी पुत्री को लेकर दशानन के राज्य में गए। वहाँ उन्हें पता चला कि दशानन तो भीम नामक वन में खड्ग साधने गए हैं। यह जानकर राजा मय भी भीम वन की ओर रवाना हो गए।

जब राजा मय दशानन को खोजते हुए वन में पहुँचे तो उन्होंने वहाँ एक सुन्दर स्त्री को बैठे पाया। राजा मय ने उससे पूछा कि हे पुत्री! तू कौन है? किस कारण वन में अकेली रहती है?

यह सुनकर वह सुन्दरी विनयपूर्वक बोली कि मैं दशानन की बहिन चन्द्रनखा हूँ। मेरे भाई ने चन्द्रहास खड्ग की प्राप्ति की है और अब वे उसकी रक्षा का भार मुझे सौंपकर स्वयं सुमेरुपर्वत के चैत्यालयों की वंदना करने गए हैं।

वे इसप्रकार बातें कर ही रहे थे कि दशानन आकाशमार्ग से लौट आए। उन्होंने राजा मय का बहुत सम्मान किया

और उनके अनुरोध पर अपूर्व सुन्दरी उनकी पुत्री मंदोदरी से विधिपूर्वक विवाह कर स्वयंप्रभ नामक अपने नगर में चले गए।

कालान्तर में दशानन के पटरानी मंदोदरी से इन्द्रजीत और मेघनाद नामक महाप्रतापी दो पुत्र हुए।

एक दिन दशानन मेघवर पर्वत पर घूमने गए। वहाँ छह हजार कन्याएँ जलक्रीड़ा करती थीं। वे दशानन को देखकर उन पर मोहित हो गईं और उन्होंने विवाह की याचना की। जिसे स्वीकार कर दशानन ने उनसे गंधर्व विवाह किया।

दशानन के साथ पुत्रियों का विवाह सुनकर उनके पिताओं ने क्रोधित होकर दशानन पर आक्रमण किया, पर शक्तिशाली दशानन के सामने वे टिक न सके; अतः वे अपने से सशक्त व बलवान दशानन की प्रशंसा करने लगे और अपनी कन्याओं का उनसे विधिवत् विवाह कर प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर चले गए। दशानन के भाई भानुकर्ण का विवाह कुम्भपुर नगर के राजा महोदर की तडिन्माला नामक पुत्री से और विभीषण का विवाह ज्योतिप्रभ नगर के राजा विशुद्धकमल की राजीवसरली नामक पुत्री से हुआ।

एकबार कुम्भपुर नगर पर किसी प्रबल शत्रु ने आक्रमण कर शोर मचाया, तब श्वसुर के स्नेहवश भानुकर्ण के कान कुम्भपुर नगर पर पड़े अर्थात् वहाँ के दुःख भरे शब्द भानुकर्ण ने सुने, तभी से वे संसार में कुम्भकर्ण नाम से प्रसिद्ध हो गए। शोर सुनकर महायोद्धा भानुकर्ण सहायतार्थ वहाँ गए और उन्होंने नगरवासियों का दुःख दूर किया।

भानुकर्ण धर्मबुद्धिवाले, अनेक कलाओं में प्रवीण सर्वगुणसम्पन्न महायोद्धा थे। वे प्रातःकाल जल्दी उठकर देवदर्शनादि धार्मिक कार्यों में अपना समय व्यतीत करते थे।

उनका आहार बहुत पवित्र था। वे मुनियों को आहार देने के पश्चात् ही भोजन करते थे और उनका चित्त सदा धर्म में ही लगा रहता था।

अपने माता-पिता को सुखी देखने के इच्छुक भानुकर्ण ने पूर्वजों की इच्छापूर्ति के लिए पूर्वजों के उन सभी राज्यों पर आक्रमण किया, जिन पर अभी वैश्रवण का राज्य था और उन्हें जीतकर भाई दशानन के राज्य में मिलाया।

यह सब सुनकर वैश्रवण बहुत क्रोधित हुआ, पर इसे बाल-चेष्टा समझकर उसने भानुकर्ण को माफ कर दिया तथा उनके दादा राजा सुमाली के पास दूत से संदेश भेजा कि क्या आप अपने भाई माली की मृत्यु को भूल गए हैं अथवा राजा इन्द्र के दिए गए घाव भर गए हैं।

इतना सुनते ही दशानन फुफकार उठे और दूत को बीच में ही रोककर अपने पूर्वजों के प्रति अपशब्द कहनेवाले की जिह्वा काटने को उद्यत हुए; पर विभीषण ने उन्हें समझाया कि इसमें इस बिचारे दूत का क्या कसूर है? यह तो विचारा दास है, मालिक के कहे शब्दों को दुहरा रहा है।

इसप्रकार के अनेक वचनों द्वारा विभीषण ने दूत को मारने को उद्यत बड़े भाई दशानन को शांत किया। तब उपस्थित अन्य सभाजनों ने दूत को अपमानित कर सभा भवन से निकाल दिया।

दूत ने वैश्रवण के पास जाकर अपनी दुर्दशा का चित्रण किया। दशानन के द्वारा कहे गए अपशब्दों को सुनकर दशानन के मौसेरे भाई वेश्रवण की क्रोधाग्नि भड़क उठी और वे सेना लेकर युद्ध के लिए निकल पड़े।

महावली दशानन भाइयों सहित इस स्थिति से निपटने के लिए पहले से ही तैयार थे। दोनों सेनाओं में घमासान



युद्ध हुआ। कुछ देर पश्चात जब वैश्रवण का रथ रावण के रथ के सामने आया तो वैश्रवण का भाई प्रेम उमड़ पड़ा। वह विचारता है कि इस नश्वर धनसंपत्ति व राज्य के लिए आज भाई भाई को मारने के लिए तैयार हो गया। धिक्कार है ऐसी राज्यलक्ष्मी को। सो वैश्रवण की यह वैराग्यमय मनःस्थिति उचित ही है; क्योंकि संसारी जीवों की मानसिक दशा व कषाय का ऐसा ही क्षणभंगुर स्वरूप है।

इसप्रकार विचार कर वैश्रवण ने दशानन से कहा कि मैं तेरा मौसेरा भाई हूँ; अतः भाईयों में यह युद्ध कैसा? इस क्षणिक राज्यलक्ष्मी के लिए हिंसा का ताण्डवनृत्य व भाइयों से अयोग्य व्यवहार उचित नहीं। अतः द्वेषभाव छोड़कर आओ, हम प्रेम से गले मिले। यह सुनकर दशानन बोले कि यह धर्मोपदेश का स्थान नहीं है और न ही धर्मोपदेश के लिए उचित समय ही है। मदोन्मत्त हाथियों पर चढ़े तथा तलवार को हाथ में धारण करनेवाले मनुष्य तो शत्रुओं का संहार करते हैं, धर्म का उपदेश नहीं देते। अतः या तो मेरी आधीनता स्वीकार करो अथवा मेरी तलवार का वार सहो।

वैराग्यचित्त वैश्रवण यह सुनकर पुनः क्रोध की आग में जलने लगे और बोले कि तेरी आयु अल्प है, इसीलिए ऐसे वचन बोलता है। ठीक है अब तू अपनी शक्ति अनुसार शस्त्र का प्रहार कर।

इस पर दशानन बोले— आप बड़े हो, पहले आप ही वार करो।

इसके पश्चात् दोनों में घमासान युद्ध हुआ। वैश्रवण ने शत्रु की शक्ति को बराबर आंका नहीं था; अतः उनके शस्त्रों के प्रहारों से बेहोश हो गए, जिन्हें सैनिक उठाकर यक्षपुर ले गए।

दशानन ने शत्रुपक्ष के धन-धान्यादि किसी भी वस्तु को हाथ नहीं लगाया, सो उचित ही है; क्योंकि वीरों का प्रयोजन शत्रु को जीतना ही होता है, धनादिक लूटना नहीं।

इसके पश्चात् दशानन ने शत्रु को जीतने की निशानी के रूप मे पुष्पक विमान अपने कब्जे में लिया और उसमें बैठकर अपने परिकर सहित लंका की ओर प्रस्थान किया।

उधर जब वैश्रवण को होश आया तो संसार की असारता को देखकर उन्हें वैराग्य हो गया और उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा धारण करली तथा गहन तपस्या करते हुए उन्हें कुछ दिन पश्चात् केवलज्ञान हो गया। •

चौथा दिन

मौसम सुहाना था। शीतल मंद पवन चल रही थी। इस मौसम का आनन्द लेने दशानन अपने दादा सुमाली के साथ विमान से आसमान में सैर कर रहे थे कि तभी उनको (दशानन को) सामने पर्वत पर कमल दिखाई दिए। उन्होंने दादाजी से पूछा कि दादाजी! यहाँ पर्वत पर कोई सरोवर तो है नहीं, इधर ये कमल कैसे खिल रहे हैं?

सुमाली बोले— बेटा ! यह कमलों का वन नहीं है, अपितु इस पर्वत के शिखर पर हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा बनवाए गये पद्मरागमणिमय चैत्यालय (जिनमन्दिर) हैं।

इतना सुनते ही राजा दशानन दादाजी के साथ उन चैत्यालयों के दर्शन करने गए। भक्तिभाव से उन अपूर्व चैत्यालयों के दर्शन कर जब वे लंका लौटे तो उन्होंने सम्पूर्ण सेना को भयभीत देखा। कारण जानने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि एक मदोन्मत्त जंगली हाथी किसी के वश में नहीं आ रहा है और शहर में ऊधम मचा रहा है। यह सुनकर दशानन धीर-गंभीर चाल से हाथी के पास गए और अपनी कुशलता से उस मदमस्त हाथी को क्षणमात्र में अपने वश में कर लिया तथा उसका त्रैलोक्यमंडन नामकरण कर उसे अपनी गजशाला में रख लिया।

इसी समय दीन-हीन दशा में एक विद्याधर राजा दशानन के पास आकर बोला कि वानरवंशी राजा सूर्यरज व अक्षरज को राजा इन्द्र के यम नामक लोकपाल ने बन्दी बना लिया

है और उन्हें नरक नामक बन्दीगृह में डाल दिया है; जहाँ उन्हें नरक समान ही कष्ट दिए जा रहे हैं।

यह सुनकर राजा दशानन ने यम पर चढ़ाई की और उसे जीत लिया। यम परास्त होकर राजा इन्द्र के पास जाकर छिप गया।

दशानन ने जीते हुए राज्यों में से किष्किंधपुर सूर्यरज को किष्कुपुर अक्षरज को दिया। जहाँ वे सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

कालान्तर में सूर्यरज के बालि व सुग्रीव नामक दो पुत्र और श्रीप्रभा नामक एक पुत्री हुई।

राजा अक्षरज के नल व नील नामक दो पुत्र हुए। सूर्यरज का युवावस्था को प्राप्त पुत्र बालि अपने शक्तिमद में चूर दशानन की आज्ञा भंग करने लगा। अतः दशानन ने बालि के पास दूत भेजकर कहलवाया कि तुम सदा से हमारे मित्र रहे हो। हमने तुम्हारे पिता के शत्रु यम को हराकर उन्हें किष्कंधपुर का राज्य दिया, जहाँ अभी तुम सुख से राज्य कर रहे हो। तुम्हारे और हमारे वंशज बहुत समय से एक-दूसरे के मित्र रहे हैं, पर अब तुम उपकार भूलकर हमसे पराङ्मुख हो गए हो। यह कार्य सज्जनोचित नहीं है। मैं तुम्हारे पिता से अधिक तुमसे स्नेह करूँगा। अतः शीघ्र आकर मुझे प्रणाम करो और अपनी बहिन का विवाह हमसे करो। इससे तुम्हें सभी प्रकार की सुख-सुविधा मिलेगी।

पराक्रम के मद में चूर बालि अपने सामने किसी को कुछ न गिनता हुआ लंकाधिपति दशानन से युद्ध के लिए तैयार होने लगा, पर विवेकशील मंत्रियों के समझाने पर युद्ध से विरत हो उसने सोचा कि मैंने प्रतिज्ञा ली हुई है कि मैं जिनदेव, गुरु और शास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रणाम नहीं करूँगा;

अतः मैं दशानन को प्रणाम करनेवाली बात को स्वीकार नहीं कर सकता। और प्रणाम न करने पर वे आक्रमण करेंगे। अब मैं युद्ध भी नहीं चाहता, क्योंकि मेरे मान के कारण व्यर्थ ही हजारों जीवों की मृत्यु होगी।

बहुत सोच-विचार के पश्चात् बालि ने अपना राज्य अपने छोटे भाई सुग्रीव को देकर जिनदीक्षा ले ली। कठिन तपस्या में रत मुनि बालि को अनेकों ऋद्धियों की प्राप्ति हुई। बालि के छोटे भाई सुग्रीव अपनी बहिन दशानन को देकर उनकी अनुमति से वंश परम्परागत राज्य का सुखपूर्वक पालन करने लगे।

सुग्रीव सुतारा नामक राजकुमारी के रूप पर मुग्ध थे व उससे विवाह करना चाहते थे; अतः उन्होंने सुतारा के पिता के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। उसी समय राजा चक्रांक के पुत्र साहसगति नामक विद्याधर का प्रस्ताव भी उनके पास आया। अतः वे दुविधा में पड़ गए; क्योंकि रूप, गुण, और कुल में दोनों ही समान थे। अतः वह निमित्तज्ञानी के पास गए। निमित्तज्ञानी से साहसगति को अल्पायु जानकर उन्होंने सुतारा का विवाह सुग्रीव से कर दिया। सो उचित ही है; क्योंकि अल्पायु पुरुष को कौन माता-पिता अपनी कन्या देना चाहेंगे।

सुतारा का विवाह सुग्रीव से होने पर कामांध साहसगति सुतारा को पाने की चाहत में अंधा हुआ सुग्रीव का रूप धारण करने के लिए रूपपरिवर्तनी विद्या साधने को उद्यत हुआ, क्योंकि कामांध व्यक्ति क्या नहीं करता?

कालांतर में सुग्रीव के सुतारा रानी से अंग व अंगद दो पुत्र हुए। जिनकी वाल-लीलाओं में सुग्रीव प्रसन्नतापूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

सुग्रीव की बहिन से विवाह कर राजा दशानन भी निष्कंटक होकर सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

कालान्तर में जब एक दिन दशानन लंका से बाहर गए हुए थे, तब मेघप्रभ विद्याधर का विद्या व माया में प्रवीण पुत्र खरदूषण दशानन की बहिन चन्द्रनखा को हरकर पाताल लंका में जाकर छिप गया।

तभी विवेक ने पूछा – गुरुजी पाताललंका तो दशानन के पास ही थी, तो फिर–

गुरुजी बोले – बस, बस! मैं समझ गया। देखो भाई! जबसे दशानन ने वैश्रवण को हराकर लंका को जीता, तब से ही वे तो पातालंका में चन्द्रोदर विद्याधर को छोड़कर स्वयं परिवार सहित लंका में रहने लगे थे। कुछ समय पश्चात् खरदूषण ने चन्द्रोदर को हराकर पातालंका पर कब्जा कर लिया था। चन्द्रोदर के उस समय कोई सन्तान नहीं थी, जिसकी सहायता से वह पुनः पातालंका पर राज्य करता । अतः वह जंगलों में घूमने लगा और कुछ समय पश्चात् वह मर गया। उसकी पत्नी ने जंगल में ही एक बच्चे को जन्म दिया। इस पुत्र के गर्भ में आते ही माता-पिता की शत्रुओं से विराधना हुई थी; अतः माँ ने उसका नाम विराधित रखा। यह बालक बड़ा होने पर जहाँ कहीं भी जाता, वहाँ ही अपमानित होता। सो उचित ही है; क्योंकि पुण्यहीनों का सर्वत्र अपमान ही होता है।

विराधित खरदूषण को मारकर पिता के अपमान का बदला लेना चाहता था, पर अभी शक्तिहीन होने से खरदूषण को जीतने में असमर्थ वह किसी वीर सहायक की खोज में पृथ्वी पर घूमने लगा।

खरदूषण भी पाताललंका में सुरक्षित होकर राज्य करने लगा; क्योंकि वह चन्द्रनखा को लेकर पाताललंका में सुरक्षित था, वह जानता था कि इसमें दशानन का प्रवेश भी सम्भव नहीं है।

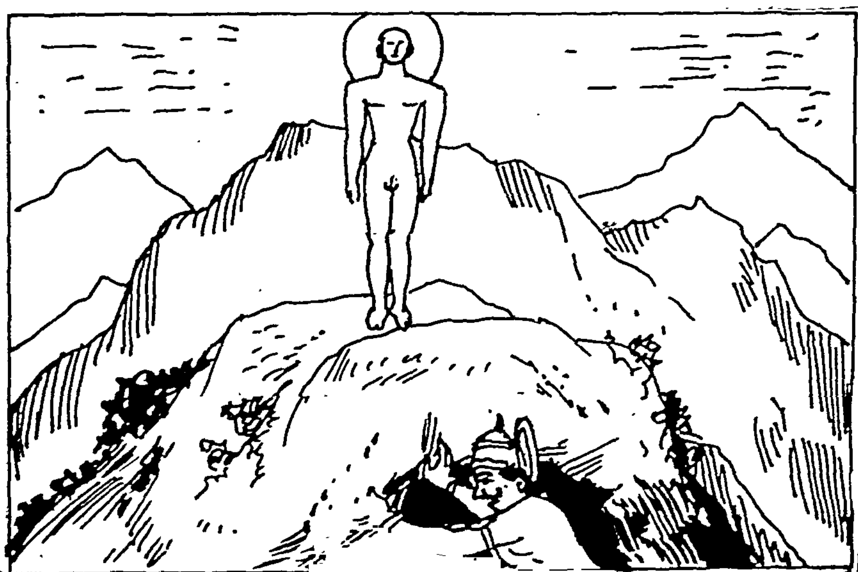
उधर दशानन को जब बहिन के अपहरण की सूचना मिली तो वे आग-बबूला होकर खरदूषण को मारने के लिए जाने लगे तो मंदोदरी ने समझाया कि कन्या का हरण होने से वह दूषित हो गई है; अतः अव उसका किसी और से विवाह कर नहीं सकते और खरदूषण को मारने से वह विधवा हो जायेगी। अतः संबंधी होने से उस पर क्रोध करना उचित नहीं है। तथा खरदूषण में कुछ दोष भी नहीं है। वह चौदह हजार विद्याधरों का अधिपति है, अत्यन्त शक्तिशाली भी है, उसे कई हजार विद्याएँ सिद्ध हैं और वह आपके समान ही शक्ति का धारी है। अतः चन्द्रनखा के योग्य वर है।

यह सब सुनकर दशानन शांत हो गए और उन्होंने खरदूषण के साथ चन्द्रनखा का विधिवत् विवाह कर दिया।

चन्द्रनखा के विवाह के पश्चात् निश्चिंत होकर दशानन ने अपने पराक्रम से पृथ्वी पर जिन-जिन विद्याधरों की कन्यायें रूपवती थीं, उनके साथ विवाह किया।

इसीप्रकार एकबार जब वे नित्यालोकनगर के राजा की बेटी रत्नावली से विवाह कर लौट रहे थे कि कैलाशपर्वत पर उनका विमान रुक गया। कारण जानने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि इस पर्वत पर कोई मुनि तपस्या कर रहे हैं। अतः मुनि के दर्शन करने के लिए जब वे नीचे उतरे तो देखकर वे गुस्से से लाल-पीले हो गए और विवेकरहित होकर मुनि से कहने लगे कि राज्य अवस्था में तो तुम्हें मान था ही, पर निर्ग्रन्थ वेश धारण करने पर भी तुम्हारा मान नहीं गया

जो मेरे जाते हुए विमान को रोक लिया। अब मैं तेरा यह मान चूर-चूर करके रहूँगा—इतना कहकर शक्ति के गर्व में चूर दशानन ने मुनि को कष्ट देने के लिए कैलाशपर्वत को ही उठाकर फैंकने का उपक्रम किया। जिससे पर्वत हिलने लगा, पशु-पक्षी डरकर भयानक शब्द करने लगे। इन आवाजों से मुनिराज बालि का ध्यान भंग हुआ, तब पर्वत पर विद्यमान मन्दिरों व प्राणियों की रक्षा के लिए बालि मुनि ने अपने पैर का अंगूठा धीरे से दबाया। उस दबाव से दशानन पृथ्वी में धसने लगे, उनके हाथ-पैरों में चोटें आ गईं और जब उनसे दर्द सहन नहीं हुआ तो वे रोने लगे, तभी से सभी दशानन को "रावण" कहने लगे।



पति की दयनीय अवस्था देखकर नववधू रत्नावलि ने मुनिराज से विनयपूर्वक माफी मांगी, तब मुनिराज बालि ने दयालु होकर अंगूठा ढीला छोड़ दिया।

दशानन पर्वत के नीचे से निकलकर मुनिराज के पास आए और उन्हें नमस्कार कर क्षमा मांगी तथा मन्दिर में जाकर

मुनिराज के अपमान के प्रायश्चित के लिए भगवान की पूजा-स्तुति करने लगे।

मुनिराज वालि ने भी गुरु के निकट जाकर प्रायश्चित किया, फिर ध्यान में ऐसे लीन हुये कि अन्तर्मुहूर्त में चारों घातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान की प्राप्ति करली।

दशानन द्वारा जिनेन्द्रदेव की महास्तुति से धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान होने लगा। तब अवधिज्ञान से सारा वृत्तांत जानकर नागों के राजा धरणेन्द्र कैलाशपर्वत पर आये और दशानन से बोले कि तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न होकर ही मैं यहाँ आया हूँ। मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ, अतः तुम मुझसे जो भी वस्तु मांगोगे, मैं वो ही वस्तु तुम्हें दूंगा।

तब दशानन बोले कि मैं जिनवंदना के अतिरिक्त आपसे और क्या मांगूँ?

तब स्नेहवश धरणेन्द्र ने स्वयं ही उन्हें "अमोघविजय" नामक शक्ति दी और कहा कि हे दशानन! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम इसे ग्रहण करने से इन्कार नहीं करोगे। देखो! सभी की दशा कभी एक-सी नहीं रहती। जब कभी तुम पर विपत्ति आए तो यह शक्ति तुम्हारे शत्रु का नाश करनेवाली और तुम्हारी रक्षा करनेवाली होगी। इससे मनचाहे रूप बनाये जा सकते हैं। अग्नि की ज्वाला से व्याप्त इस शक्ति से मनुष्य की तो बात ही छोड़ो, विपुलशक्ति के धारक देव भी भयभीत रहते हैं।

नागराज के स्नेह को भंग करने में असमर्थ दशानन ने विनयपूर्वक उस शक्ति को ग्रहण किया।

कहा भी है — पुण्य का उदय हो तो अनायास ही अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। •

पांचवाँ दिन

कथा को आगे वढ़ाते हुए गुरुजी ने कहा— अनेक विद्याओं व शक्तियों से सम्पन्न राजा दशानन ने दिग्विजय करने का निश्चय किया। जव वे दिग्विजय करने के लिए चले तो सहज ही अनेक राजा अपनी-अपनी सेना सहित उनके साथ हो गए। इस जगत में शक्तिशाली का साथ कौन नहीं चाहता? शक्तिशाली का साथ चाहने के लिए पहले उसका साथ देना आवश्यक होता है।

इसप्रकार उन राजाओं के सहयोग से दशानन ने राक्षसवंशी और वानरवंशी अनेक वड़े-वड़े राजाओं को अपने वश में करने के उपरान्त शक्तिशाली सम्राट इन्द्र पर आक्रमण करने के उद्देश्य से आगे को प्रस्थान किया और पाताललंका के पास डेरा डाला।

दशानन के वहनोई खरदूषण उस समय पाताललंका के राजा थे। उन्होंने दशानन का जोरदार स्वागत किया और सफलता की कामना करते हुए दिग्विजय के सहयोग के लिए अपनी इच्छानुसार रूप वदलने की शक्ति रखनेवाले चौदह हजार विद्याधर योद्धा उन्हें समर्पित किए और स्वयं भी उनके साथ हो लिए। दशानन ने उन्हें प्रमुख सेनापति के पद पर नियुक्त किया।

इसप्रकार दशानन के साथ एक हजार अक्षौहिणी विद्याधर सेना थी।

अपनी सम्पूर्ण सेना सहित आगे वढ़ते हुए एक दिन जव दशानन नर्मदा किनारे पहुँचकर प्रतिदिन की दिनचर्या के अनुसार

जिनपूजा कर रहे थे, तब अचानक नर्मदा में गंदा पानी आने से उनकी पूजा में विघ्न हुआ। कारण जानने पर ज्ञात हुआ कि महिष्मती नगर का राजा सहस्ररश्मि अपनी पत्नियों सहित वहाँ पर जलक्रीड़ा कर रहा है, जिससे जल गंदा होकर आ रहा है। यह जानकर दशानन ने अपने अनुचरों को भेजकर कहलवाया कि मैं यहाँ जिनपूजन कर रहा हूँ, उनकी जलक्रीड़ा से उसमें विघ्न होता है; अतः वे यहाँ जलक्रीड़ा न करें। पर शक्ति के गर्व में चूर सहस्ररश्मि ने अज्ञान में किए गए अपने कार्य के लिए खेद व्यक्त करने के स्थान पर रणभेरी बजा दी, तब दोनों में घमासान युद्ध हुआ। युद्ध में दशानन की विजय हुई। उन्होंने सहस्ररश्मि को जीवित ही पकड़ लिया। यह सुनकर सहस्ररश्मि के पिताश्री आये और उन्होंने दशानन से सहस्ररश्मि को छोड़ने की प्रार्थना की।

दशानन ने सम्मानपूर्वक उन्हें यथोचित स्थान प्रदान किया और कहा कि मैं बिना प्रयोजन किसी से द्वेष नहीं करता। मैं अभी अपने पूर्वजों का अपराध करनेवाले विद्याधराधिपति राजा इन्द्र को वश में करने के लिए निकला हूँ। यदि मैं उद्दंड भूमिगोचरियों को जीतने में समर्थ नहीं हुआ तो अत्यधिक शक्तिशाली अनेक विद्याओं के धारी विद्याधरों को कैसे जीतूंगा? यही सोचकर मैं पहले अहंकारी भूमिगोचरियों को वश में कर रहा हूँ, इसके बाद विद्याधराधिपति इन्द्र को वश में करूँगा। मैंने आपके बेटे सहस्ररश्मि को वश में कर लिया है; अतः अब इसे छोड़ना न्यायोचित है।

यह कहकर दशानन ने सहस्ररश्मि को बंधनमु[illegible] हुए कहा कि आज से तुम मेरे चौथे भाई हो। तुम [illegible] हो; अतः अब मैं तुम्हारी सहायता से स्वर्ग के इन्द्र [illegible] अपने आपको इन्द्र समझने वाले राजा इन्द्र

और मेरी पटरानी मन्दोदरी की छोटी बहिन स्वयंप्रभा का विवाह भी तुमसे कराऊँगा, जिसके साथ तुम सुखपूर्वक राज्य करना।

यह सुनकर सहस्ररश्मि ने कहा कि आपने मुझे जो सम्मान प्रदान किया, वह आप जैसे वीर, उदार सम्राट के योग्य ही है; किन्तु मैं तो अब अविनाशी पद पाना चाहता हूँ । अतः मुझे इस क्षणिक पद की आवश्यकता नहीं है। इतना कहकर वे अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर नग्न दिगम्बर साधु होने के लिए वन में आये तथा अपने परममित्र अयोध्या के राजा अनरण्य (दशरथ के पिता) को भी सूचना भिजवाई; क्योंकि उन दोनों ने एक-दूसरे को वचन दिया हुआ था कि जो पहले मुनि होगा, वह मुनि होने से पहले दूसरे मित्र को सूचना देगा।

जब यह सूचना अनरण्य को मिली तो उन्होंने भी अपने एक माह के पुत्र दशरथ को राज्यतिलक कर बड़े पुत्र अनन्तरथ के साथ दीक्षा ले ली।

इसके पश्चात् दशानन ने उत्तर दिशा के सभी मानी राजाओं को अपने वश में किया और फिर अत्यधिक सम्मान के साथ उनका राज्य उन्हीं को सौंपकर, राजपुर के अति अभिमानी राजा मरुत् के पास अपनी आधीनता स्वीकार करने हेतु दूत भेजा; क्योंकि शक्ति के मद में चूर वह अपने सामने किसी को कुछ गिनता नहीं था और निर्भय होकर पशुहिंसा रूप जघन्य कार्य करता था।

जब दशानन का दूत वहाँ पहुँचा तो उसने नारद को बेहोश पड़े देखा। कारण जानने पर उसे ज्ञात हुआ कि राजा मरुत् यज्ञ में पशुओं का होम कर रहे थे, जिसे देखकर नारद ने उन्हें समझाया और ऐसे हिंसक कार्य करने से रोका; पर

नारद की बात सुनते ही राजा मरुत् क्रोधित हो उठे और उन्होंने नारद की यह दशा कर दी है।

यह सुनकर दूत तुरन्त लौट गया और दशानन के पास जाकर राजा मरुत् के यज्ञ का सकल वृतांत कहा। जिसे सुनकर दशानन ने राजा मरुत् पर तुरन्त आक्रमण करके उसे बन्दी बना लिया और नारद को छुड़ाया।

नारद को छुडाने के पश्चात् दशानन मरुत् की ओर उन्मुख होकर बोले – तुम मेरे राज्य में इसप्रकार हिंसक कार्य कैसे कर रहे हो? पशुवध करते हुए तुम्हें जरा भी दया नहीं आई। वे निरीह पशु अपनी पीड़ा व्यक्त करने में असमर्थ हैं, तो क्या उन्हें कष्ट नहीं होता? क्या वे भी मरणान्तक पीड़ा का अनुभव नहीं करते होंगे? उन्हें भी कष्ट होता है, पीड़ा का अनुभव वे भी करते हैं।



दर्द सभी को होता है, पर कोई उस पीडा को व्यक्त कर देता है और कोई उसे व्यक्त करने में असमर्थ है। तुम बातों से समझनेवाले नहीं हो; अतः जैसा व्यवहार तुम उन बेजुबान पशुओं के साथ कर रहे थे, वैसा ही मैं तुम्हारे साथ

करता हूँ, तभी तुम्हें उनके दुःखों का अनुभव होगा।—इतना कहकर दशानन मरुत् को वैसे ही मारने लगे जैसे कि वे पशुओं को मार रहे थे। यह सब देखकर नारद ने दयावान होकर दशानन को उस हिंसक कृत्य से रोका और समझाया कि तुम भी सजा के रूप में ही सही, पर ऐसा निन्दनीय कार्य क्यों करते हो, बड़ों को तो क्षमा ही शोभा देती है।

दशानन ने नारद के कहे अनुसार उसे क्षमा कर दिया। राजा मरुत् ने अपनी कनकप्रभा नामक पुत्री का दशानन के साथ विवाह किया, जिससे दशानन के कृतचित्रा नामक पुत्री हुई।

दशानन के सभी उत्तम कार्यों की सभी नगरवासी प्रशंसा करने लगे। उनको एक नजर देखने से अपने को धन्य मानने लगे। सभी आपस में चर्चा करते कि ये दशानन बहुत दयालु हैं। जो भी उनके पास जाता है, उनकी सभी इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है। मनुष्यों की तो बात ही क्या, पशुओं का दुःख भी उन्हें सहन नहीं; इसीलिए तो पशुयज्ञ करनेवाले मरुत् को उन्होंने सजा दी। उन्होंने छोटी उम्र में ही अनेक विद्याएं प्राप्त करली हैं। वे अत्यन्त शक्तिशाली हैं, पर घमंड उन्हें छू तक नहीं गया है। यही कारण है कि बड़े-बड़े राजा भी उनकी सेवा में स्वयं ही आ गये हैं। अनेक राजाओं की सुन्दर कन्याओं ने उन्हें स्वयं ही वर लिया है। वे जिस-जिस नगरी से जाते हैं, उस-उस नगरी को धन-धान्य से पूर्ण कर देते हैं। उस नगरी में किसी को कुछ तकलीफ नहीं रहती। अतः वे जिस नगरी से निकल जाते हैं, वहाँ के निवासी अपने को धन्य समझने लगते हैं।

इसप्रकार सर्वत्र सुख-शांति बिखेरते हुए सर्व साधन सम्पन्न दशानन को यद्यपि कहीं कोई कमी नहीं थी, फिर भी अपने

दादा माली की मौत का हेतु राजा इन्द्र के जीवित रहते उन्हें शांति भी नहीं थी। अतः वे निरन्तर स्थल-स्थल पर विश्राम करते हुए रथुनूपुर की ओर बढ़ते रहे। इसप्रकार वर्षों व्यतीत हो गये। बढ़ते-बढ़ते जब वे गंगा किनारे पहुँचे, तो वर्षा ऋतु प्रारंभ हो गई थी। अतः चार माह वहीं विश्राम करने का विचार बनाया।

शत्रु को समान शक्तिवाला मानते हुए दशानन अपने मंत्रियों से कहते हैं कि संग्राम में राजा इन्द्र से जीतने का पक्का भरोसा नहीं है। विजय मेरी अथवा इन्द्र की भी हो सकती है; अतः पहले बेटी का विवाह कर निश्चिन्त हो जाऊँ; क्योंकि मैं शत्रु पर निश्चिन्त होकर आक्रमण करना चाहता हूँ। पुत्री कृतचित्रा की शल्य मुझे कमजोर बनायेगी, मेरे बढ़ते कदमों की बेड़ियाँ बनेगी।

यह सुनकर प्रधानमंत्री ने विनयपूर्वक कहा कि आपका सोचना उचित ही है; क्योंकि अपने उद्देश्य की सफलता के लिए आवश्यक है कि उद्देश्य प्राप्ति की ओर बढ़ते समय हम इतने मजबूत हों कि बीच में आईं बाधायें हमें पथभ्रष्ट न कर सकें, चिन्तायें विचलित न कर सकें।

राजकुमारी कृतचित्रा के विवाह की चर्चा सुनने पर वहाँ उपस्थित मथुरा नरेश हरिवाहन ने अपने पुत्र का प्रस्ताव सम्राट दशानन के सामने रखा, जिसे सुनकर दशानन ने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया और मंत्रियों से एकान्त में सलाह की। सभी मंत्रियों ने एकमत होकर कहा कि राजकुमार मधु आपकी पुत्री के लिए श्रेष्ठ वर हैं। वे विनय सम्पन्न और पराक्रमी हैं। पूर्वभव की मित्रता के कारण असुरेन्द्र द्वारा दिये गये महागुणशाली शूलरत्न के वे स्वामी हैं। यह शूलरत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता। यह यदि शत्रु सेना की ओर फैंका जाये

तो हजारों शत्रुओं को नष्ट कर स्वामी के हाथ में वापस आ जाता है। अतः इस शूलरत्न को पाकर राजकुमार मधु अजेय हो गये हैं।

इसप्रकार मंत्रियों की सम्मतिसूचक सलाह पाकर व राजकुमार मधु को योग्य जानकर दशानन ने गंगा किनारे ही उनका विधिवत् विवाह सम्पन्न किया और बेटी की तरफ से निश्चिन्त होकर उन्होंने इन्द्र से युद्ध के लिए कूच किया।

इसप्रकार धीरे-धीरे रथुनूपुर की ओर बढ़ते हुए वे १८ वर्ष में कैलाशपर्वत पर पहुँचे। जहाँ पर दशानन ने बालि मुनि का स्मरण किया व जिनमन्दिरों की वन्दना की।

राजा इन्द्र को जीतने की इच्छावाले दशानन को पास में आया जानकर दुर्लंघ्यपुर के लोकपाल नलकुंवर ने राजा इन्द्र के पास सूचना भेजी। उस समय इन्द्र पाण्डुकवन की वंदना को जा रहे थे। अतः भक्ति में लवलीन चित्त इन्द्र ने शत्रु की ओर ध्यान दिए बिना लोकपाल नलकुंवर को ही नगर की रक्षा का भार सौंप दिया और स्वयं भगवान के दर्शन करने चले गए।

नलकुंवर ने अपने राजा की आज्ञानुसार विद्यामयी वज्रशाल नामक कोट बनाया। जिसकी चारों दिशाओं में भयंकर सांप लिपटे हुए थे। शत्रु का प्रवेश उसमें दुर्लभ था।

दशानन के गुप्तचरों ने जब इस मायामई कोट की सूचना दी तो वे उसे तोड़ने के उपाय पर विचार कर ही रहे थे कि नलकुंवर की पत्नी उपारंभा की दासी दशानन के पास स्वामिनी का संदेश लेकर आई। उसने दशानन से कहा कि मेरी स्वामिनी बालपने से ही आपमें अनुरागी हैं, पर अन्तराय कर्म के उदय से उन्हें अबतक आपका साथ प्राप्त नहीं हो सका, अब पुण्योदय से आप समीप आ गए हैं, इसलिए............।

दशानन ने बात पूरी सुने बिना ही कान पर हाथ रख लिए और वे बोले—यह तुम कैसी बातें कर रही हो? यह काम पापमय है। यदि राजा ही ऐसा कार्य करे, तो फिर प्रजा को दंडित कैसे करेगा ? मैं परनारी को प्रेमदान देने में असमर्थ हूँ, जिनशासन की आज्ञा है कि परस्त्री विधवा हो या सधवा हो या वेश्या हो सर्व ही परनारी सर्वकाल सर्वथा त्यागने योग्य है।

तभी विभीषण बीच में ही बात काटते हुए बोले— भईया! इधर एक मिनट मेरी बात सुनो। और उन्होंने कान में फुस-फुसाकर कहा कि राजाओं को साम, दाम, दण्ड, भेद नीति से व्यवहार करना चाहिए। अतः इस समय नलकुंवर की पत्नी का प्रस्ताव मत ठुकराइए; क्योंकि यदि नलकुंवर की पत्नी आपके वश में हो गई तो वह हमें कोट को भेदने का उपाय अवश्य बतायेगी, जिससे हमारी विजय का मार्ग प्रशस्त होगा।

"समझदार को इशारा ही काफी होता है"— इस सूक्ति के अनुसार राजविद्या में निपुण दशानन ने तुरन्त ही पैतरा बदला और दूती विचित्रमाला से कहा कि यद्यपि परस्त्री की कामना अनुचित है, तथापि दुखियों के दुखों को दूर करना राजा का परमकर्त्तव्य है; अतः हम तुम्हारी स्वामिनी का प्रस्ताव स्वीकार करते हैं। अब तुम जाओ और उन्हें शीघ्र यहाँ ले आओ।

रानी को तो इसका इन्तजार था ही। वाञ्छित सूचना मिलने पर वह पलक झपकते ही दशानन के समीप पहुँच गई और दशानन से अपनी विवाह की अभिलाषा प्रकट की तो दशानन ने कहा कि मेरी इच्छा तो तुम्हारे साथ सुखपूर्वक रहने की है, यहाँ इस जंगल में क्या आनन्द आयेगा; अतः यदि मेरा नगर प्रवेश संभव हो तो बताओ।

दशानन से साथ रहने की कल्पना में डूबी रानी ने प्रसन्न होकर तुरन्त ही आशालिका नामक विद्या दशानन को प्रदान की एवं अनेक दिव्य-अस्त्र भी दिए।

आशालिका विद्या से तुरन्त ही मायामई कोट को तोड़कर दशानन ने नगर में प्रवेश किया और विभीषण ने नलकुंवर को जीवित पकड़ लिया।

दशानन ने जैसे ही दुर्लंघ्यपुर को जीता, वैसे ही उनकी आयुधशाला में सुदर्शन चक्र प्रगट हो गया।

जीत के पश्चात् नलकुंवर की पत्नी ने दशानन से पुनः विवाह का अनुरोध किया तो दशानन ने समझाते हुए कहा कि तुमने मुझे विद्या दी है, अतः तुम मेरी गुरु हुई। दूसरे अपने पति के रहते मुझसे विवाह करने से तुम्हारे उत्तम कुल की बदनामी होगी। अतः तुम मेरे साथ विवाह का विचार छोड़कर अपने पति के साथ ही सुखपूर्वक रहो।

उपारंभा यह सब सुनकर प्रबोध को प्राप्त हुई और अपनी गलती पर लज्जित हो, वह पति के पास गई।

नलकुंवर को मुक्तकर दशानन ने उसका राज्य उसे ही दे दिया। पत्नी की कुटिलता से अनभिज्ञ नलकुंवर उसके साथ सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा।

इसके पश्चात् धीरे-धीरे सेना सहित आगे बढ़ते हुए दशानन विजयार्द्ध पर्वत के पास पहुँचे। तब दशानन को निकट आया जानकर राजा इन्द्र ने अपने पिताजी से सलाह मांगी।

समय की नजाकत व शत्रु की शक्ति को आंकते हुए अनुभवी पिता ने सलाह दी कि तू राक्षसों के स्वामी दशानन से दोस्ती करले और अपनी पुत्री उसे देकर निष्कन्टक राज्य कर।

यह सुनते ही इन्द्र क्रोधित होकर बोला – 'पिताजी! आप ये क्या कह रहे हैं? मारने योग्य शत्रु को आप कन्या देना चाहते हैं। यह कार्य तो कायरों को शोभा देता है, वीरों को नहीं। फिर पिताजी आप तो जानते ही हैं कि जिस समय कोई व्यक्ति किसी की दासता स्वीकार करता है तो उसकी आधी योग्यता उसी समय नष्ट हो जाती है। अतः मैं दासता स्वीकार नहीं कर सकता, मैं तो युद्ध ही करूँगा, चाहे पराजय ही क्यों न हो।

मैं उस दशमुख वाले से किसी भी बात में कम नहीं हूँ। मैंने इसके दादा माली को युद्ध में मारा। जब यह छोटा था, तभी मैं इसे भी नष्ट करना चाहता था; क्योंकि जब रोग उत्पन्न हो, तभी उसे आसानी से नष्ट किया जा सकता है; पर जब रोग जड़ पकड़ लेता है तो उसे आसानी से समाप्त नहीं किया जा सकता। उस समय आपके कहने से ही मैंने उसे छोड दिया था। पर अभी शत्रु शक्ति संगठित करके आया है, फिर भी मैं उसे मारने में असमर्थ नहीं हूँ। हाँ, उस पर काबू पाने में समय व शक्ति अवश्य अधिक लगेगी। बड़ों से पूछकर ही कार्य करना चाहिये, कुल की इस मर्यादा के अनुसार मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। पर आप मुझे युद्ध से ही रोक रहे हैं, उसे कन्या देने की कह रहे हैं क्या यह कार्य हमारे कुल पर कलंक लगानेवाला न होगा?"–इतना कहकर इन्द्र दशानन से युद्ध के लिए निकल पड़ा।

इसके पश्चात् दशानन व इन्द्र दोनों की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर के अनेकों योद्धा मारे गए, पर अन्त में विजय दशानन की ही हुई। उन्होंने इन्द्र को जीवित ही पकड़ लिया तथा उसे लेकर आकाशमार्ग से लंका चले गए।

लंकावासियों ने इन्द्रविजयी दशानन का बहुत सम्मान किया। दशानन भी वृद्ध व पूज्यजनों से यथोचित सम्मान के साथ मिले।

इन्द्र के पिता सहस्रार इन्द्र को छुडाने के लिए लंका आए और दशानन से कहा कि हे इन्द्रजयी दशानन! तुम्हारा पराक्रम सबने देख लिया है, हम सब उससे अभिभूत हैं; अब तुम उसे छोड़ दो।

यह सुनकर दशानन ने मजाक करते हुए कहा कि "यदि इन्द्र पृथ्वी को जल से सुगंधित करे और उसके चारों लोकपाल पृथ्वी की झाडू करें तो मैं उन्हें माफ करूँ।" यह सुनकर इन्द्र व लोकपाल तो लज्जित होकर नीचा मुख किए रहे, पर सहस्रार ने कहा– "आप तो इन्द्र के लिए पूज्य हैं। आप जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही होगा।"

तब दशानन प्रसन्न होकर बोले– "मैं तो मजाक कर रहा था, इन्द्र तो मेरा चौथा भाई है। वह जिसप्रकार पहले राज्य करता था, सो अब करे।"

यह सुनकर सहस्रार गद्-गद् होकर दशानन से कहने लगे कि धन्य हैं तुम्हारे माता-पिता! धन्य है तुम्हारा कुल!! तुम्हारी उज्ज्वल कीर्ति हमेशा बनी रहे।

इसके पश्चात् सहस्रार अपने बेटे इन्द्र सहित विजयार्द्ध पर्वत के पास बसे रथुनूपुर लौट आए।

रथुनूपुर लौटने के पश्चात् भी इन्द्र के कानों में दशानन के हास्यास्पद शब्द गूंज रहे थे। वह मन में सोचता है कि मैं अभी तक शत्रु के सिर पर चरण रखता रहा हूँ, उन्हें झुकाता रहा हूँ; पर अब उन्हीं राजाओं के साथ दशानन का अनुचर होकर कैसे रहूँ? जो राजा, विद्याधर अभी तक मेरे

आज्ञाकारी थे, आज मैं उन्हीं के समान हाथ जोड़कर दशानन की आज्ञा स्वीकारूँ?

नहीं, यह कदापि संभव नहीं हैं। मैं तो अब ऐसे पद की प्राप्ति करूँगा, ज़हाँ हारने का प्रश्न ही नहीं उठता, जहाँ कोई दास अनुचर नहीं होता। दशानन मेरा शत्रु नहीं, अपितु महामित्र बनकर आया। उसने मेरा उपहास नहीं किया, अपितु उसने मुझे सही राह दिखा दी, मुक्तिपथ पर बढ़ने की मेरी इच्छा को जगा दिया, अब मैं इस राज्य को स्वीकार नहीं करूँगा– इसप्रकार सोच-विचार के पश्चात् राजा इन्द्र ने दिगम्बरी दीक्षा ले ली।

कहा भी है कि मानव जीवन को बनाने-बिगाडने में हास-उपहास, व्यंग्य, सहानुभूति, प्रेरणा आदि का बहुत बड़ा हाथ रहता है। उपहास द्वारा मानव कभी देवता बन जाता है तो कभी दानव। उपहास से जब कभी मानव-मन चोट खा जाता है तब वह दो तरह के निर्णय कर सकता है एक तो उपहास करनेवालों को मुहतोड़ जवाब देने में तत्पर हो जाए, दूसरे इसतरह के कार्यों की ओर प्रवृत्त हो जाए कि लोग उस पर फिर कभी हँस न सकें, उपहास न कर सकें।

इन्द्र भी ऐसे ही पथ पर बढ़ गए थे, जहाँ हास-उपहास का कोई असर नहीं होता। उन्होंने शत्रु-मित्र में समान भाव धारण करनेवाले निर्ग्रन्थ साधु होकर उग्र तप करना प्रारंभ किया व कुछ काल पशचात् अपने लक्ष्य परमपद को प्राप्त कर लिया।

छठवाँ दिन

समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओं को वश में करने के पश्चात् दशानन अपना समय शांतिपूर्वक धर्मध्यान आदि में व्यतीत करने लगे।

एक दिन उन्होंने सुमेरुपर्वत पर स्थित अकृत्रिम जिन-चैत्यालयों के दर्शन कर लौटते समय रास्ते में बहुत तेज आवाजें सुनीं। कारण जानने पर ज्ञात हुआ कि वहाँ अनन्तवीर्य मुनि (राजा दशरथ के बड़े भाई) को केवलज्ञान हुआ है और वहाँ उनकी गन्धकुटी है।

यह जानकर दशानन पृथ्वी पर उतरे और उन्होंने केवली की वन्दना-स्तुति की। उसके पश्चात् अपने योग्य स्थान पर बैठकर धर्मश्रवण किया।

धर्मोपदेश के पश्चात् वहाँ उपस्थित धर्मरथ मुनिराज ने दशानन से कहा कि तुम अपनी शक्ति-अनुसार कुछ नियम ले लो।

यह सुनकर दशानन मन में सोचने लगे कि खान-पान तो मेरा वैसे ही पवित्र है। मैं रात्रिभोजन भी नहीं करता हूँ, न ही जमीकन्द का ही सेवन करता हूँ, अभक्ष्य का मैंने त्याग पहले से ही कर दिया है और अणुव्रत लेने में मैं समर्थ नहीं हूँ, तो फिर मैं क्या प्रतिज्ञा लूं? फिर वे कुछ सोचकर मुनिराज से कहते हैं कि "कोई परनारी अत्यन्त रूपवती भी क्यों न हो, पर यदि वह मुझे नहीं चाहेगी तो मैं उसका

वलात् सेवन नहीं करूँगा, उसके साथ जबरदस्ती नहीं करूँगा।"

इसीप्रकार भानुकर्ण और विभीषण आदि ने भी अपनी-अपनी शक्ति-अनुसार प्रतिज्ञाएँ लीं और फिर सभी लंका लौट आये।

कुछ दिनों पश्चात् राजा वरुण दशानन की आज्ञा का उल्लंघन करने लगे, तब दशानन ने वरुण के पास दूत भेजा।

दूत ने जाकर वरुण से कहा कि तुम विधाधरों के अधिपति सम्राट दशानन को प्रणाम करो या फिर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

यह सुनकर वरुण उपहास करते हुए बोला कि दशानन कौन है? क्या काम करता है? मैं न तो वैश्रवण हूँ और न ही सहस्ररश्मि, न ही मैं मरुत् अथवा यम हूँ और न ही इन्द्र हूँ, जो मुझे वह आसानी से बांध लेगा। देवाधिष्ठित शस्त्रों का उसे गर्व है तो रहे। मैं उसे उन शस्त्रों के साथ ही यमलोक पहुँचा दूँगा—यह सुनकर दूत लंका लौट आया और दशानन को विस्तार से समस्त समाचार सुनाए।

वरुण की गर्वोक्ति सुनकर क्रोधावेश में दशानन ने प्रतिज्ञा की कि वरुण को देवाधिष्ठित शस्त्रों के बिना ही मा[illegible]गा अथवा बाँधूंगा।

इसके पश्चात् दोनों में घमासान युद्ध प्रारंभ हो गया। युद्ध के बीच में एक दिन वरुण के पुत्रों ने दशानन के बहनोई खरदूषण को बांध लिया । देवाधिष्ठित अस्त्रों के बिना युद्ध करने को प्रतिज्ञाबद्ध दशानन को कहीं बहनोई का अनिष्ट न हो जाए—यह विचारकर विवश हो युद्ध [illegible] पड़ा।

खरदूषण को छुड़ाने का अन्य कोई उपाय न होने से दशानन ने अपने मित्र राजाओं के पास सहायता के लिए दूत भेजा। एक दूत राजा प्रह्लाद के पास भी गया। दूत ने वहाँ जाकर युद्धभूमि के समस्त समाचार सुनाए व दशानन का पत्र भी दिया। राजा प्रह्लाद ने पत्र तुरन्त मस्तक से लगाया और उसे पढ़वाया। पत्र इसप्रकार था—

"राक्षसवंशरूपी आकाश के चन्द्रमा, विद्याधर राजाओं के स्वामी, राजा सुमाली के पौत्र, अलंकारपुर (पाताल लंका) के पास ठहरी है सेना जिसकी—ऐसे अर्द्धचक्री सम्राट दशानन, आदित्यनगर में रहनेवाले न्याय-नीतिज्ञ, देश-काल की विधि के ज्ञाता एवं हमारे साथ प्रेम रखनेवाले भद्रप्रकृति के धारी राजा प्रहलाद को शरीरादि की कुशल कामना के बाद आज्ञा देते हैं कि समस्त विद्याधर राजा तो शीघ्र ही आकर मुझे नमस्कार कर चुके हैं; पर पातालनगर में जो दुर्बुद्धि वरुण रहता है, वह अपनी शक्ति से सम्पन्न होने के कारण प्रतिकूलता कर रहा है, विरोध में खड़ा है। इसी विद्वेष के कारण उसके साथ अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ था, सो उसके सौ पुत्रों ने खरदूषण को किसी तरह पकड़ लिया है। युद्ध में उसका मरण न हो जाए इस विचार से समय की विधि को जानते हुए मैंने महायुद्ध की भावना छोड़ दी है। इसलिए इसका प्रतिकार करने के लिए तुम्हें अवश्य ही आना चाहिए; क्योंकि आप जैसे पुरुष कभी करने योग्य कार्य में भूल नहीं करते। अब मैं तुम्हारे साथ सलाह कर ही आगे कार्य करूँगा।"

पत्र सुनकर राजा प्रहलाद ने अपने पुत्र पवनंजय को बुलाया और पत्र का सार बताकर राज्यभार उन्हें सोंपकर मन्त्रियों की सलाह से वे स्वयं युद्धभूमि को जाने के लिए तैयार होने लगे। यह देखकर पवनंजय पिता को नमस्कार कर बोले

कि समर्थ पुत्र के रहते पिता का युद्ध में जाना उचित नहीं है। आप यहाँ आराम से रहें, मैं दशानन की सहायता के लिए जाता हूँ।

इसप्रकार पिता की आज्ञा लेकर माँ आदि सभी परिजनों से विदा लेकर जब वे जाने लगे तो उनकी दृष्टि कोने में खड़ी अश्रुमयी अंजना पर पड़ी। पति की अपनी तरफ नजर उठी देखकर अंजना ने उनसे कहा कि आपके द्वारा परित्यक्ता मैं अभी तक आपके दर्शन मात्र से ही जीवित थी, अब आपके विदेश जाने पर मैं कैसे जीवित रह सकूँगी। अतएव अब मुझे सिर्फ मरण ही शरण है।

इतना सुनने पर भी पवनंजय का दिल नहीं पसीजा और वे उनकी बात को सुनी-अनसुनी कर उनका तिरस्कार करते हुए आगे बढ़ गए।

तभी विनय ने पूँछा— गुरुजी! पवनंजय ने अपनी पत्नी का तिरस्कार क्यों किया?

गुरुजी ने कहा— जब पवनंजय की अंजना से सगाई हुई थी, तब पवनंजय ने अंजना को देखा भी नहीं था। अतः जब उन्होंने अंजना के रूप की प्रशंसा सुनी तो उन्हें अंजना को देखने की तीव्र इच्छा हुई। यद्यपि शादी तीन दिन बाद ही होनेवाली थी, पर पवनंजय को अंजना के देखे बिना चैन नहीं था। अतः वे अपने अभिन्न मित्र प्रहस्त के साथ आकाशमार्ग से उन्हें देखने चले गए।

राजा महेन्द्र के महल में पहुँच कर वे सखियों से घिरी अंजना की बातचीत को छिपकर सुनने लगे। बातचीत के बीच में अंजना की एक सखी बसंतमाला पवनंजय की प्रशंसा करने लगी, तभी उसकी बात काटकर उनकी दूसरी सखी मिश्रकेशी

कहने लगी कि पवनंजय और विद्युत्प्रभ की कोई तुलना नहीं। विद्युतप्रभ बल, पराक्रम, रूप सब में ही पवनंजय से श्रेष्ठ है। "वह शीघ्र ही मुनि होगा"– यह सुनकर ही राजा ने विद्युत्प्रभ के स्थान पर पवनंजय से इसका विवाह तय कर दिया है। पवनंजय में अनुरक्त अंजना इतना सुनने पर भी लज्जावश कुछ न बोली।

अंजना को मौन देखकर पवनंजय को बहुत गुस्सा आया और वे वहाँ से वापिस आ गए। उन्हें संदेह हुआ कि अंजना को भी विद्युत्प्रभ ही पसंद है। यदि उसे वह पसंद न होता तो सखी की बातें चुपचाप नहीं सुनती रहती। पवनंजय सोचने लगे कि जो स्त्री अन्य पुरुष पर आसक्त है, उससे विवाह करना ठीक नहीं

संदेह उस अमरबेल के समान है, जो बिना जड़ के होती है और दूसरों के सहारे पनपती है। एक दृष्टि से संदेह अमरबेल से भी भयंकर है, क्योंकि अमरबेल तो पहले दूसरों को नष्ट करती है, फिर बाद में स्वयं नष्ट होती है; किन्तु सन्देह प्रथम अपने को ही मिटाता है, दूसरे मिटें या न मिटें।

सन्देह जिसके मन में पलता है, उसे ही सबसे पहले बर्बाद भी करता है। वह अपनों को ही समाप्त करता है, अजनवी तो इसकी सीमा से बाहर ही होते हैं।

वहम इन्सान का दुश्मन है, जो मन मस्तिष्क पर बुरी तरह हमला कर विवेक को हर लेता है।

विवेकरहित सन्देह से जकड़े पवनंजय ने घरवालों को अपना निर्णय सुनाया कि मैं अंजना से विवाह नहीं करूँगा।

कुमार का यह निर्णय सुनकर दोनों राजाओं के खेमों में खलबली मच गई। किसी को कुछ समझ में नहीं आ रहा

था कि कलतक तो राजकुमार अच्छे-भले थे, विवाह के इच्छुव थे, अब यह रातों-रात क्या हो गया है? माता-पिता वे बहुत समझाने पर उन्होंने विवाह तो कर लिया, पर विवाह के बाद अंजना की शक्ल तक नहीं देखी।

"पवनंजय अंजना से विरक्त हैं, वे उनका मुख भी देखना पसंद नहीं करते, उन्हें एक अलग महल में रख दिया है।" —यह बात जंगल में लगी आग के समान सारे राज्य में अल्प काल में ही फैल गई।

पति से परित्यक्ता अंजना अपने महल में अपनी सखी के साथ एकाकी जीवन व्यतीत करने लगी। उसका आदर-सम्मान करना तो दूर, कोई उससे बोलना, उसे देखना भी पसन्द नहीं करता था; क्योंकि पति से सम्मानित स्त्रियाँ ही सर्वत्र सन्मान पाती हैं।

संदेह का बीज पनपता शीघ्र है, पर नष्ट मुश्किल से होता है। पवनंजय को संदेह के कीड़े ने बाईस वर्ष तक अंजना से दूर रखा। और जैसा कहा जाता है कि 'बहम का इलाज खुद इन्सान के पास ही होता है।' पवनंजय के साथ भी ऐसा ही हुआ।

जब पवनंजय दशानन के बुलावे पर दशानन की सहायता के लिए जा रहे थे, तब रास्ते में रात होने पर उन्होंने सरोवर तट पर विश्राम के लिए डेरा डाला। रात्रि के सन्नाटे में जब वे आराम कर रहे थे कि उन्हें चकवी का विलाप सुनाई दिया, जिसे सुनकर उन्हें विचार आया कि यह चकवी तो अपने प्रिय से एक रात का भी वियोग सहन नहीं कर पा रही है और मैंने उस सुन्दरी को अकारण ही बाईस वर्ष का वियोग दिया। इतना ही नहीं, आते समय भी उसका तिरस्कार कर उसे छोड़ आया। अब आश्चर्य नहीं कि ...

का वरण कर ले। अतः उससे मिलकर उसे सान्त्वना देना आवश्यक है, ताकि मेरे लौटने तक वह यत्नपूर्वक जीवित रहे। पर अभी मैं पिताजी व परिवारजनों से विदा लेकर आया हूँ; अतः वापिस जाना भी उचित नहीं है। समझ में नहीं आता कि अब मैं क्या करूँ?



पवनकुमार ने जब अपने अभिन्न मित्र प्रहस्त के सामने अपनी समस्या प्रस्तुत की तो समय व सभी परिस्थिति को ध्यान में रखकर उसने मध्यममार्ग निकाला और उसकी सलाह के अनुसार वे दोनों अपने मुद्गर नामक सेनापति को सेना की सुरक्षा का भार सौंपकर सुमेरु की वंदना के बहाने वहाँ से चल दिये।

मित्र के साथ कुछ ही देर में वे अंजना के पास पहुँच गए और कई दिन अंजना के साथ रहे। वर्षों के विरह के पश्चात् हुए मिलन में वे दोनों इतने खोए कि उन्हें समय का ध्यान ही नहीं रहा, वे अपने कर्तव्य को भी भूल गए। फिर प्रहस्त के द्वारा याद दिलाए जाने पर वे युद्ध को जाने के लिए ज्यों ही तैयार हुए तो अंजना ने कहा कि आप अपने

आने की सूचना माता-पिता को देते जाइए, अन्यथा वर्षों से आपके द्वारा परित्यक्ता मैं आपके इस प्रच्छन्न मिलन से कलंकिनी घोषित हो जाऊँगी।

पवनंजय ने अंजना के इस प्रस्ताव पर गंभीरता से विचार नहीं किया। लज्जावश वे माता-पिता के पास नहीं गए, पर अंजना के बहुत कहने पर अपने नाम से युक्त अंगूठी देकर बोले कि यदि कभी जरूरत पड़ी तो इसे प्रमाण के तौर पर अपने पास रखो। वैसे हमारा यह प्रच्छन्न मिलन प्रगट हो, उससे पूर्व ही मैं तुमसे आकर मिल लूँगा।

कुछ दिनों पश्चात् अंजना को गर्भवती जानकर पवनंजय के माता-पिता व परिवारजनों ने कलंकित जानकर उसे सखी के साथ अकेली पीहर भेज दिया। उसने अपनी सफाई में मुद्रिका भी दिखायी, पर उस पर किसी ने विश्वास नहीं किया।

ससुराल से परित्यक्ता अंजना को पिता के घर भी सहारा न मिला। सो उचित ही है; क्योंकि स्थानच्युत होने पर अपने मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। जैसे जबतक कमल पानी में रहता है, तबतक सूर्य की किरणों के स्पर्श से प्रस्फुटित होता है। वही कमल जब पानी के बाहर होता है, तो उन्हीं सूर्य की किरणों से कुम्हला जाता है। यह सब पुण्य-पाप का खेल है। पुण्य के उदय में शत्रु भी सहयोग करते देखे जा सकते हैं और पाप के उदय में अपने अभिन्न भी साथ छोड़ देते हैं।

दुर्भाग्य की सताई हुई, अपने पूर्वोपार्जित दुष्कर्मों का फल भोगती हुई अंजना अपनी सखी बसंतमाला के साथ गहन जंगल में चली गई।

चलते-चलते थकने पर उन्होंने पास ही एक गुफा में आश्रय लिया। जंगली जानवरों की भयंकर आवाजों से डरी

इधर-उधर देख रही थीं कि उन्हें एक शिला पर
मान मुनिराज दिखाई दिए, जिससे दोनों का डर कुछ
आ।

उन्होंने मुनिराज की वन्दना की। मुनिराज के ध्यान के
होने पर बसंतमाला ने उनसे पूँछा कि कौन मन्दभाग्य
के गर्भ में आया है कि जिसके आते ही यह कलंकिनी
षित हो गई व महलों में रहनेवाली इस राजवधू को इन
गलों में भटकना पड़ रहा है।

यह सुनकर मुनिराज ने कहा— इसके गर्भ में आनेवाला जीव मंदभाग्यवाला नहीं, अपितु महाभाग्यशाली है। इसके जो पुत्र होगा, उससे माँ को परमसुख की प्राप्ति होगी, यथाशीघ्र पति से मिलाप होगा। यह जीव अनन्तशक्ति का धारक है और इसी भव से मुक्ति को प्राप्त करेगा। इसप्रकार उनकी जिज्ञासा को शांतकर मुनिराज तो आकाशमार्ग से विहार कर गए और उनके कहे शब्दों से अपनी सखी अंजना को धैर्य बंधाती हुई बसंतमाला ने विद्याबल से अंजना के खान-पान आदि की व्यवस्था की। वह अंजना को प्रसन्न रखने का यथासंभव प्रयत्न करती। अपनी शक्ति-अनुसार उसकी सेवा भी करती।

इसप्रकार जंगली जानवरों से डरते हुए, अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हुए, मुनिराज के कथन से एक-दूसरे को धैर्य बँधाते हुए उन्होंने दिन व्यतीत किए।

योग्य समय पर अंजना ने सुन्दर पुत्र को जन्म
दिया, जिसके तेज से गुफा प्रकाशमान हो गई। इसी
समय उन्हें आकाश में एक विमान दिखाई दिया, जि
देखकर पुत्र के अनिष्ट की आशंका से डरकर अंज
रोने लगी। रोने की आवाज सुनकर विमान में

विद्याधर राजा नीचे गुफा में आए और उनसे रोने का कारण पूँछते हुए बसंतमाला से बोले कि यह स्त्री कौन है, यहाँ सघन बन में क्या कर रही है और क्यों रो रही है? बसन्तमाला ने बताया कि यह राजा महेन्द्र की पुत्री है और राजा प्रहलाद के पुत्र पवनंजय की पत्नी है। विवाह के पूर्व जब मिश्रकेशी नामक सखी इसके सामने पवनंजय की निन्दा व विद्युत्प्रभ की प्रशंसा कर रही थी, तब पवनंजय ने अपने मित्र के साथ छिपकर वह सब वार्ता सुन ली और संशयात्मक मनवाले उन्होंने इन्हें ब्याह कर छोड़ दिया। शादी के २२ वर्ष पश्चात् जब वह दशानन की सहायता के लिए जा रहे थे कि मानसरोवर पर विरह से छटपटाती चकवी को देखकर उनका मन अंजना के प्रति दयालु हो गया और वह गुरुजनों आदि से छिपकर अंजना से मिलने आए। कुछ दिन अंजना के साथ बिताकर उसे गर्भाधान कराकर वे पिता की आज्ञा पूर्ण करने युद्ध में चले गए।

गर्भ प्रकट होने पर निर्दोष अंजना को कुलटा जानकर ससुराल वालों ने पिता के घर भेज दिया। अपकीर्ति के भय से पिता ने भी इसे आश्रय नहीं दिया । सो ठीक ही है; क्योंकि सज्जन पुरुष मिथ्या दोष से डरते ही हैं।

आश्रयहीन अंजना इस भयानक वन में रहने लगी। और अब पुत्र के जन्म होने पर परिवारजनों से विलग अकेली होने से यह रो रही है।

इतना सुनकर वे बोले कि मैं हनुरुहद्वीप का स्वामी राजा प्रतिसूर्य हूँ। अंजना मेरी भानजी है। मैंने इसे बहुत दिनों से देखा नहीं है, इसलिए पहचाना नहीं। जब उन्होंने

किशोरावस्था की घटनाएँ सुनाई, तो अंजना ने मामा-मामी को पहचान लिया। अंजना ने फिर उनसे बहुत देर तक बातें की। इसके बाद वे अपने मामा के साथ हनुरुहद्वीप की ओर रवाना हो गई।

रास्ते में अंजना की गोदी से उछलकर बालक पर्वत पर गिर पड़ा, पर आश्चर्य तो यह कि शिला चकनाचूर हो गई, पर बालक को खरोंच भी नहीं आई। चकनाचूर शिलापर बालक प्रसन्न मुद्रा में पड़ा था।

यह देखकर राजा ने अंजना से कहा कि जब इस बालक में बाल-अवस्था में इतनी ताकत है तो पता नहीं युवावस्था में क्या करेगा? यह तो चरमशरीरी है। आज से इसका नाम श्रीशैल रहा।

हनुरुहद्वीप पहुँचने पर उसका जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया गया। हनुरुहद्वीप में रहने से बालक हनुमान नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हनुमान के पिता पवनंजय ने वरुण को युद्ध में जीतकर खरदूषण को छुड़ाया और फिर दशानन से आज्ञा लेकर अंजना से मिलने के इच्छुक वे शीघ्र ही घर लौटे।

घर लौटने पर माता-पिता आदि सभी ने उनका स्वागत-सत्कार किया। उन सबसे मिलते हुए पवनंजय की आँखें अंजना को ही ढूँढ़ रहीं थीं। इन सबके बीच जब उन्हें अंजना दिखाई नहीं दी, तो वे बहुत व्याकुल हुए और चुपचाप उसे सब जगह ढूँढ़ने लगे। जब वह कहीं न मिली तो अन्त में लज्जा छोड़कर उन्होंने माँ से उसके बारे में पूँछ ही लिया। अंजना का नाम सुनते ही माँ ने कानों पर हाथ रख लिए और बोली— उस कुलटा का नाम न लो। न जाने कहाँ

अपना मुँह काला करके आई थी? अतः हमने उसे उसके पिता के घर भिजवा दिया।

पवनंजय एक पल रुके बिना महेन्द्रनगर गए। श्वसुर ने उनकी बहुत आवभगत की। सबसे मिलने के पश्चात् जब उन्होंने अंजना के बारे में पूँछा तो उन्हें वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। अंजना को वहाँ न पाकर उन्होंने तुरन्त नगर छोड़ दिया।

नगर छोड़ने के पश्चात् पवनंजय ने अपने मित्र को माता-पिता के पास भेज दिया और कहा कि अंजना के बिना मेरा जीना सुनिश्चित नहीं है; अतः मैं उसे ढूढ़ने जा रहा हूँ और आपको भी जो उचित लगे सो करो।

प्रहस्त को भेजने के पश्चात् अंजना को ढूढ़ते हुए पवनंजय पागलों की भांति इधर-उधर भटकने लगे। बिना खाए-पिए ऐसे ही घंटों विचारमग्न पड़े रहते।

प्रायः वह भोला-भाला मासूम चेहरा उनके मानसतल पर उतर आता, जो उनसे कह रहा होता कि अपने आने की सूचना माता-पिता को देते जाइये। जब भी दर्पण में अपना चेहरा देखते उन्हें अंजना का अश्रुपूरित तरल चेहरा नजर आने लगता और वे उस प्रतिबिम्ब को देखकर पुरानी यादों में खो जाते।

इसप्रकार अम्बरगोचर नामक हाथी पर घूमते-घूमते वे भूतरव नाम वन में पहुँचे। जहाँ उन्होंने हाथी को छोड़ दिया और उससे बोले कि तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ जाओ अंजना के बिना मेरा जीना मुश्किल है। यह कहकर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जबतक अंजना के समाचार नहीं मिलते, तबतक मैं खाना-पीना और बोलना छोड़ता हूँ।

पवनंजय के मित्र प्रहस्त ने जब पवनंजय के समाचार उनके माता-पिता को सुनाए तो माँ ने विह्वल होकर कहा कि तुम मेरे पुत्र को अकेले छोड़ आए, यह तुमने अच्छा नहीं किया। पता नहीं अब वह कहाँ व कैसा होगा? इसप्रकार उसकी याद करते हुए माता-पिता बहुत दुःखी हुए। सो उचित ही है; क्योंकि जो मनुष्य बिना विचार किए सहसा निर्णय ले लेते हैं, उन्हें कष्ट होता ही है, पश्चाताप भी होता ही है।

पवनंजय के पिता राजा प्रह्लाद ने अपने मित्र सभी विद्याधरों को बुलाया और आकाशमार्ग से सभी के साथ पुत्र को ढूढ़ने निकल पड़े।

राजा प्रतिसूर्य के पास जब राजा प्रह्लाद का दूत पहुँचा तो उसके द्वारा पवनंजय के समस्त समाचार जानकर राजा प्रतिसूर्य व अंजना बहुत दुःखी हुए। फिर अंजना को धैर्य बंधाकर राजा प्रतिसूर्य तुरन्त पवनंजय को ढूढ़ने निकल पड़े।

इसप्रकार विजयार्द्धवासी विद्याधर व त्रिकुटाचलवासी राक्षस राजा प्रतिसूर्य के साथ मिलकर यत्नपूर्वक पृथ्वी पर पवनंजय को ढूढ़ने निकले। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते जब वे भूतरव नामक वन के ऊपर पहुँचे तो उन्हें वहाँ पवनंजय का हाथी दिखाई दिया, जिसे देखकर वहाँ पवनंजय की उपस्थिति को अनिवार्य जानकर वे विमान से उतरे व धीरे-धीरे पवनंजय को ढूढ़ने के लिए आगे बढ़ने लगे। सेना सहित राजाओं को देखकर स्वामी रक्षा में तत्पर पवनंजय का हाथी उन लोगों पर विघ्न करने लगा। किसी तरह उसे वश में कर वे सभी पवनंजय के समीप पहुँचे और उनके कुशल समाचर पूँछने लगे, पर वे चुप ही रहे। और उन्होंने इशारे से बताया कि अंजना के बिना मैं मरने का निश्चय कर चुका हूँ। यह सुनकर

माता-पिता बहुत हताश हो गए। उन्हें बार-बार समझाने का प्रयत्न करने लगे कि हम अंजना को शीघ्र ही ढूंढ़ निकालेंगे। तुम अभी घर चलो, भोजनादि लो; पर पवनंजय अपने निर्णय पर अटल रहे। जब राजा प्रतिसूर्य वहाँ पहुँचे तो उन्हें पवनंजय के मौनव्रत व मृत्यु के वरण करने के निश्चय का पता चला, तब राजा प्रतिसूर्य ने माता-पिता को धैर्य बँधाया और सभी राजाओं को दूर कर पवनंजय से एकान्त में बोले कि अंजना मेरे पास हनुरुहद्वीप में अपने पुत्र के साथ सकुशल है। इतना सुनते ही पवनंजय तुरन्त हनुरुहद्वीप की ओर चल पड़े।

राजा प्रतिसूर्य ने पवनंजय को सम्मान के साथ रखा। अंजना को पाकर पवनंजय अपना सब दुःख भूल गए और सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

इसप्रकार पवनंजय हनुरुहद्वीप में वर्षों रहे। हनुमान भी अब जवान हो गए थे। उन्हें समस्त विधाएँ सिद्ध हो गई थीं। महाबलवान हनुमान शस्त्रचालन व शास्त्रपठन दोनों विद्याओं में कुशल हो गए थे।

पवनंजय जब एक दिन राज्यसभा में बैठे थे, तभी दशानन का दूत प्रतिसूर्य के पास आया। दूत ने दशानन के सन्देश को बताते हुए कहा कि वरुण अपने सौ पुत्रों और उत्कट दुर्ग के बल पर फिर से आज्ञा भंग करने लगा है; अतः युद्ध के लिए चलना है। यह समाचार सुनकर राजा प्रतिसूर्य और पवनंजय हनुमान को राज्याभिषेक कर जाने को उद्यत हुए, पर हनुमान ने उन्हें नहीं जाने दिया और युद्ध के लिए स्वयं चले गए।

जब हनुमान दशानन के पड़ाव में पहुँचे तो दशानन ने उनका स्वागत किया। इसके पश्चात् अत्यन्त स्नेहपूर्वक दशानन ने कहा कि सज्जनोत्तम पवनंजय ने मेरे साथ बहुत स्नेह

दर्शाया है, जो कि प्रसिद्ध गुणों के धारक इस पुत्र को भेजा है। इस महाबलवान और तेजोमण्डल के धारक वीर को पाकर मुझे इस संसार में कोई भी कार्य कठिन नहीं रहेगा।

इसप्रकार दशानन जब हनुमान के गुणों का वर्णन कर रहे थे, तब हनुमान लज्जावनत हो गए। सो उचित ही है; क्योंकि महापुरुषों की वृत्ति ऐसी ही होती है।

इसके पश्चात् वे युद्ध के लिए निकल पड़े। युद्ध में हनुमान की सहायता से दशानन ने वरुण को उसके सौ पुत्रों सहित पकड़ लिया। फिर वरुण की रक्षा का भार भानुकर्ण को सौंपकर बहुत दिन बाद निश्चिंत हुए दशानन आराम करने चले गए।

दशानन के जाने के पश्चात् क्रोधावेश में भानुकर्ण शत्रु के नगर को नष्ट करने लगे। सिपाहियों ने उस नगर की कीमती वस्तुएँ लूट लीं और वे सुन्दर स्त्रियों को पकड़कर दशानन के पास ले गए। उन स्त्रियों की दयनीय अवस्था देखकर और करुण क्रन्दन सुनकर करुणामय दशानन ने भानुकर्ण से कहा कि जो तूँ कुलवती स्त्रियों को बन्दी के समान लाया है, यह तूने अत्यन्त निन्दनीय कार्य किया है। इन भोली-भाली



स्त्रियों का क्या दोष था? जो तू इन्हें पकड़कर लाया है — ऐसा कहकर दशानन ने उन स्त्रियों को छुड़वाया व उन्हें आश्वासन देकर भयरहित किया और सुरक्षापूर्वक घर भिजवाने की व्यवस्था की।

इसके पश्चात् वरुण को बुलाकर दशानन ने उससे कहा कि तुम युद्ध में पकड़े जाने का शोक मत करो; क्योंकि युद्ध में वीरों का पकड़ा जाना तो उनकी उत्तमकीर्ति का कारण है। स्वाभिमानी वीर युद्ध में दो गतियाँ प्राप्त करते हैं, या तो पकड़ा जाना या मारा जाना। तुम पहले के समान ही समस्त मित्र बन्धुओं के साथ अपने राज्य का पालन अपने स्थान से करो।

यह सुनकर गद्-गद् हो वरुण बोला कि इस संसार में आपका पुण्य विशाल है, जो आपके साथ वैर रखता है, वह मूर्ख है। आपने अपने अपूर्व बल से मुझे जीत लिया है। वीरों में अग्रणी आप वीरभोग्या इस वसुन्धरा का पालन करें। हे उदार यश के धारक दशानन! आप हमारे स्वामी हो, अतः मेरे दुर्वचनों से आपको जो दुःख हुआ है, उसे आप माफ करें। आप अत्यन्त पराक्रमी हैं, इसीलिए आपसे संबंध कर मैं कृतकृत्य होना चाहता हूँ, अतः आप मेरी पुत्री स्वीकृत कीजिए, क्योंकि उसके योग्य आप ही हैं।

दशानन की स्वीकृति से वरुण ने कमलमुख सत्यवती नामक पुत्री का विवाह दशानन से कर दिया।

दशानन ने भी हनुमान की वीरता से प्रसन्न होकर अपनी बहिन चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा का विवाह हनुमान से किया[१] और कर्णकुण्डलपुर का राज्य भी दिया, जहाँ हनुमान सुखपूर्वक रहने लगे।

---

१. एकोनविंशति पर्व, १०१—१०२

हनुमान की वीरता देखकर नल आदि राजाओं ने[१] भी अपनी-अपनी पुत्रियों का विवाह हनुमान के साथ किया। इसप्रकार हनुमान की कुल एक हजार रानियाँ थीं।[२]

कुछ दिन पश्चात् सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा हनुमान का चित्र देखकर मोहित हो गई। तब पद्मरागा की सखी ने उसका चित्र लेकर हनुमान को दिखाया। चित्र देखते ही हनुमान भी उस पर मोहित हो गए और वे तुरन्त किष्किंधपुर की ओर चल पड़े। किष्किंधपुर पहुँचकर पद्मरागा से विवाह कर हनुमान वहाँ कुछ दिन सुखपूर्वक रहे।

इसप्रकार दशानन ने सुग्रीव, हनुमान आदि सभी राजाओं की सहायता से तीन खण्ड के राजाओं को अपने वश में किया। सभी राजाओं ने अपनी-अपनी पुत्रियों का विवाह दशानन से किया। दशानन की कुल अठारह हजार रानियाँ थीं; शत्रुरहित दशानन ने उनके साथ चिरकाल तक सुखोपभोग किया।

सभी भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओं ने मिलकर दशानन का अर्द्धचक्री पद पर अभिषेक किया।

अनुपम कान्ति के धारी, महाप्रभावशाली दशानन की आज्ञा सभी शिरोधार्य करते थे। सभी उसके कार्यों की प्रशंसा करते थे।

इसप्रकार विशालकीर्ति को धारण करनेवाले दशानन ने वंशपरंपरागत लंकापुरी को स्वशक्ति से प्राप्त करके आश्चर्यकारी ऐश्वर्य और संसार-संबंधी श्रेष्ठ सुखों का बहुत समय तक उपभोग किया।

---

१. एकोनविंशति पर्व, १०४–१०५
२. एकोनविंशति पर्व, १०५

सातवाँ दिन

गुरुजी कहानी प्रारम्भ करते इससे पूर्व ही विनय ने पूछा— गुरुजी, दशानन इतना अच्छा था, सब उसका सम्मान करते थे, तो फिर आज हम सभी उसका पुतला क्यों जलाते हैं?

गुरुजी बोले—उसकी एक ही गलती उसकी दुर्दशा का कारण बनी । तुम तो जानते हो कि कषायें चार होती हैं — क्रोध, मान, माया और लोभ। इनमें से वह मान कषाय का शिकार हो गया। जबतक उसने राजा इन्द्र को नहीं जीता था, तबतक वह पग-पग पर संदेहशील रहता था। हर कदम फूंक-फूंक कर उठाता था। किसी भी कार्य को करने से पहले दस बार सोचता था, मन्त्रियों से मंत्रणा करता था, भाइयों की सलाह लेता था; पर इन्द्र को जीतते ही उसे अपनी वीरता का अभिमान हो गया। तब से वह अपने सामने सभी को तुच्छ समझने लगा।

तभी बीच में बात काटते हुए एक बृद्ध सज्जन बोले— पण्डितजी! परस्त्री सीता के साथ विवाह की इच्छा ही इसका कारण थी न ?

गुरुजी ने कहा — यह सच है कि दशानन ने परस्त्री से विवाह की इच्छा की थी, इसलिए उसका हरण भी किया था; पर उसे अपने पति राम में अनुरक्त देखकर वे उससे विरक्त हो गए थे। सीता को उसके पति को लौटाना भी चाहते थे; पर जीतकर, हारकर नहीं। अपनी शक्ति के मद में चूर दशानन अपने इसी अभिमान के कारण अन्त में दशरथ के दूसरे बेटे लक्ष्मण के हाथों मारे गए।

यह तो मैं प्रारंभ में ही बता चुका हूँ कि दशानन के भय से प्राणरक्षा के लिए राजा दशरथ व जनक अनेक दिनों से गुप्तवास में थे।

कुछ समय बाद वे दोनों उत्तरापथ में घूमते हुए, कौतुकमंगल नामक नगर में पहुँचे। जहाँ पर सर्वकला पारंगत सुन्दरी कैकेई का स्वयंवर हो रहा था, राजा दशरथ व जनक भी वहाँ जाकर बैठ गए। राजकुमारी कैकेई ने अन्य समस्त राजाओं को छोड़कर साधारण वेश में रहनेवाले राजा दशरथ को अपना वर चुन लिया। यह देखकर अन्य उपस्थित राजा आपस में लड़ने व युद्ध करने को तैयार हो गए। इस युद्ध में कैकेई ने दशरथ के रथ का सारथी पद सम्हाला, जिसके कुशल सारथित्व के सहारे राजा दशरथ युद्ध में विजयी हुए। इसके पश्चात् दशरथ व कैकेई का पूरे वैभव के साथ विधि पूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ।

कैकेई से शादी करने के पश्चात् राजा दशरथ अयोध्या व राजा जनक मिथिला लौट आए। जहाँ पर उनके परिजनों व जनता ने पुनर्जन्मोत्सव व पुनर्राज्याभिषेक किया।

पुनर्राज्याभिषेक के अवसर पर राजा दशरथ ने अन्य रानियों व सभी राजाओं की उपस्थिति में कैकेई से कहा कि आज मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि तुम्हारे ही कारण मैं आज इसप्रकार सुखी हूँ। यदि तुम उस समय चतुराई से उस प्रकार रथ नहीं चलाती, तो मैं एक साथ हमला करनेवाले अगणित शत्रुओं के समूह को किसप्रकार जीतता? अतः तुम्हारी जो इच्छा हो, कहो; मैं उसे पूर्ण कर दूँगा।

अपनी प्रशंसा सुनकर कैकेई लज्जावनत हो चुप रही। राजा के बारम्बार आग्रह करने पर वे धीरे से बोलीं कि मेरी इच्छित वस्तु की याचना आपके पास धरोहर रहे।

"तुम जैसा चाहोगी वैसा ही होगा" —ऐसा कहकर राजा दशरथ बहुत दिनों के पश्चात् प्राप्त राज्यसुख का उपभोग करने लगे।

एक दिन रानी कौशल्या ने राजा से कहा कि मैंने प्रातःकाल चार स्वप्न देखे हैं — (१) उज्ज्वल हाथी, (२) केसरी सिंह, (३) सूर्य और (४) सर्वकला पूर्ण चन्द्रमा।

कृपाकर इनका फल बताइए।

राजा ने कहा कि तेरे अन्तर्बाह्य शत्रुओं को जीतने वाला महापराक्रमी मोक्षगामी पुत्र होगा।

कुछ दिन बाद सुमित्रा ने चार स्वप्न देखे :—

(१) बड़ा केसरी सिंह, (२) कमल से ढ़के व जल से भरे सुन्दर कलशों से आदरपूर्वक स्नान करती हुई लक्ष्मी व कीर्ति, (३) सुमित्रा स्वयं बड़े पहाड़ के मस्तक पर बैठी हुई समुद्रपर्यंत पृथ्वी को देख रही है। और (४) नाना प्रकार के रत्नों से मंडित चक्र।

इनका फल बताते हुए राजा ने बताया कि तेरे पृथ्वी पर प्रसिद्ध शत्रु के समूह का नाश करनेवाला महातेजस्वी पुत्र होगा।

समय होने पर दोनों रानियों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उनके जन्म का बहुत उत्सव किया, गरीबों को दान दिया।

कमल के समान नेत्र होने से कौशल्या के पुत्र का नाम पद्म और इंदीवर कमल के समान श्यामसुन्दर होने से सुमित्रा के पुत्र का नाम लक्ष्मण रखा गया।

जिस दिन लक्ष्मण का जन्म हुआ, उस दिन दशानन के नगर में हज़ारों उत्पात हुए और हितैषियों के यहाँ शुभशकुन हुए।

कुछ समय पश्चात् कैकेई के दिव्यरूप को धारण करनेवाले पृथ्वी पर प्रसिद्ध भरत और सुप्रभा के शत्रुओं को जीतनेवाले शत्रुघ्न नामक पुत्र हुए।

कौशल्या ने पद्म का दूसरा नाम 'बल' रखा। सुमित्रा ने अपनी इच्छा से उसका दूसरा नाम 'हरि' घोषित किया। कैकेई ने अपने पुत्र का नाम 'अर्द्धचक्री' रखा। यह सब देखकर सुप्रभा सोचती है कि मैं अपने बेटे का नाम क्या रखूँ? वहुत सोचने के बाद अरिहंत का पर्यायवाची होने से उसने अपने बेटे का नाम 'शत्रुघ्न' ही रहने दिया। 'अरि' अर्थात् शत्रुओं का 'हंत' अर्थात् नाश करनेवाला। इसप्रकार शत्रुघ्न शब्द अरिहन्त का ही पर्यायवाची है।

चारों पत्नियों का चारों बेटों से अपार स्नेह देखकर दशरथ प्रसन्न थे, उनके प्रेम को देखकर यह पता ही नहीं चलता था कि कौन किसकी माता है और कौन किस का बेटा? इसप्रकार चारों बेटे चारों माताओं की देख-रेख में बढ़ रहे थे। बड़े होने पर राजा दशरथ ने उन्हें धनुर्विद्या में अति प्रवीण "ऐर" नामक गुरु के पास पढ़ने के लिए भेजा। इसप्रकार चारों भाई सर्व विद्याओं में प्रवीण हुए।

एकवार राजा दशरथ के परममित्र राजा जनक की धन-धान्य, गाय-भैंस तथा अनेक रत्नों से परिपूर्ण मिथिलानगरी को अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छों ने लूटना प्रारम्भ किया। श्रावकों के पूजा-विधानादि धार्मिक कार्य नष्ट किए जाने लगे, जिससे समस्त प्रजा दुःखी होने लगी। तव राजा जनक ने अपने

दूत को अयोध्या भेजकर म्लेच्छों से बचाव के लिए सहायता माँगी।

दशरथ जनक के मित्र थे, अतः मित्र की सहायता को जाने के लिए वे तुरन्त उद्यत हुए। सो उचित ही है; क्योंकि सच्चे मित्र मुसीबत में मुँह नहीं फेरते, अपितु आगे बढ़कर मित्र का साथ देते हैं।

राजा दशरथ ने अपने बड़े पुत्र राम को बुलाकर कहा कि राम तुम इस पृथ्वी का पालन करो, मैं देवों द्वारा भी दुर्जेय शत्रु से युद्ध के लिए जा रहा हूँ—यह सुनकर राम बोले कि हे तात! आप अस्थान में क्रोध क्यों करते हैं? चूहों के विरोध करने से उत्तम गजराज क्षोभ नहीं करते। अतः वहाँ जाने के लिए आप मुझे आज्ञा दीजिए। पिता ने कहा कि तुम अभी बालक हो, सुकुमार हो; तुम उन्हें कैसे जीत सकोगे? इसप्रकार अनेकों तर्कों द्वारा दशरथ ने राम को रोकने का प्रयास किया, पर राम अपने निश्चय पर अटल रहे और बोले कि आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि अकेला बालसूर्य ही घोर अंधकार व नक्षत्र समूह की कान्ति नष्ट कर देता है। — इसप्रकार के उत्तरों से प्रसन्न होकर विषाद मिश्रित हर्ष के साथ राजा दशरथ ने राम और लक्ष्मण को विदा किया।

मिथिला पहुँचकर राम और लक्ष्मण ने म्लेच्छों की सेना को क्षणभर में नष्ट कर दिया। भयभीत म्लेच्छों ने विजय की इच्छा छोड़कर सन्धि करली व सह्य तथा विन्ध्य पर्वत पर रहते हुए राम की आधीनता स्वीकार करली।

राजा जनक ने राम की वीरता देखकर और मित्रता को दृढ़ करने के लिए अपनी पुत्री सीता का विवाह उनसे करने का विचार किया। जब राजा जनक ने अपना यह विचार

राजा दशरथ के सामने प्रगट किया, तब उन्होंने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की।

दशरथ के मुख से राम के साथ सीता के विवाह की चर्चा सुनकर नारद सीता को देखने की इच्छा से तुरन्त सीता के महल में पहुँच गए।

उस समय दर्पण में अपने-आपको देखती हुई सीता श्रृंगार कर रही थी। अचानक दर्पण में नारद की जटा देखकर वह भयभीत होकर भागी। सो उचित ही है; क्योंकि नारियाँ स्वभाव से ही भीरु होती हैं।

सीता के पीछे नारद भी भागे। यह भागा-दौड़ी देखकर पहरेदार भी नारद के पीछे भागे। नारद ने मुश्किल से अपनी जान बचाई। इससे नारद को बहुत गुस्सा आया। सो उचित ही है; क्योंकि अपना अपमान किसे बर्दाश्त होता है?

वे विचारने लगे — मेरे मन में तो कोई दोष नहीं था। मैं तो केवल राम के अनुराग से सीता को देखने वहाँ गया था; परन्तु ऐसी दशा को प्राप्त हो गया, जिसमें मृत्यु तक की आशंका हो गई। वह पापिनी अब कहाँ जाएगी? मैं उसे अवश्य संकट में डालूँगा। मैं तो बाजे के बिना ही नाचता हूँ, फिर यदि बाजे मिल जावें तो कहना ही क्या? ऐसा विचार कर सीता से बदला लेने के लिए उन्होंने सीता का सुन्दर चित्र बनाकर चन्द्रगति विद्याधर के पुत्र प्रभामण्डल को दिखाया। चित्र देखते ही वे उस पर मोहित हो गए और उन्होंने खाना-पीना बंद कर दिया। पुत्र की ऐसी अवस्था देखकर राजा-रानी बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने विचार किया कि विद्याधरों की अनुपम कन्यायें छोड़कर हम लोगों का भूमिगोचिरियों के साथ संबंध करना कैसे उचित हो सकता है? दूसरी बात यह भी है कि भूमिगोचरियों के घर जाकर

उनसे याचना कैसे करें? पुत्र मोहवश उनसे याचना करें भी, परन्तु यदि उन्होंने कन्या नहीं दी तो हमारा कितना अपमान होगा? अतः किसी उपाय से कन्या के पिता को यहीं बुलवाना चाहिए।

विद्याधर राजा चन्द्रगति ने चपलवेग नामक विद्याधर को राजा जनक को लाने का आदेश दिया। सो उचित ही है, पुत्र को दुःखी देखकर कौन माता-पिता शांत रह सकते हैं?

चपलवेग विद्याधर ने अपनी विद्या के बल से सुन्दर अश्व का वेष बनाया और मिथिला में जाकर उपद्रव करने लगा। राजा जनक ने उसे अपने वश में कर अपनी अश्वशाला में रख लिया।

एक माह पश्चात् एक दिन जब राजा जनक उस घोड़े पर सवारी कर रहे थे कि घोड़ा उन्हें लेकर उड़ गया। रथुनूपुर के पास पहुँचने पर उतरने के लिए जब घोड़ा थोड़ा नीचे हुआ तो राजा जनक ने एक महावृक्ष की शाखा को मजबूती से पकड़ लिया। पेड़ की शाखा में झूमें राजा जनक को उसने वहीं छोड़ दिया; क्योंकि राजा जनक को रथुनूपुर की सीमा में लाकर उसने अपना काम कर लिया था। अतः वह इसकी सूचना देने राजा चन्द्रगति के पास चला गया।

राजा चन्द्रगति ने जब जनक के आने का समाचार सुना तो वे जनक से मिलने के पूर्व मन्दिर में दर्शन करने गए।

राजा जनक भी पेड़ से उतर कर हाथ में तलवार लिये हुए उस नगर में प्रविष्ट हुए। सुवर्णनिर्मित मन्दिर को देखकर वे सोचने लगे कि उस घोड़े ने मेरा उपकार किया है। जिससे मैं ऐसे अपूर्व मन्दिर के दर्शन कर सका हूँ। वे दर्शन कर ही रहे थे कि अचानक उन्हें घोड़ों के पैरों की आवाज सुनाई

दी। जब उन्होंने बाहर झाँककर देखा तो किसी राजा को सेना सहित आता देखकर राजा जनक मंदिर में सिंहासन के नीचे छिप गए; पर राजा को मन्दिर में भक्तिभाव से पूजा करते देखकर उनका डर दूर हुआ और वे सिंहासन से बाहर निकले।

अचानक सिंहासन के नीचे से निकले व्यक्ति को देखकर राजा चन्द्रगति कुछ विचलित हुए, किन्तु शीघ्र ही सन्तुलित होकर बोले – "आप कौन हैं, कहाँ से आए हैं?"

राजा जनक ने कहा – मैं मिथिला का राजा हूँ, मुझे एक मायामयी घोड़ा हरकर यहाँ लाया है।

यह सनुते ही राजा जनक को पहिचान कर राजा चन्द्रगति ने उनका सन्मान किया। कुशल समाचार के पश्चात् उन्होंने राजा जनक के सामने प्रभामंडल व सीता के विवाह का प्रस्ताव रखा।

जनक ने सविनय कहा कि मैंने उसे राम को देने का विचार किया है।

चन्द्रगति ने पूँछा – वह कन्या राम को ही दी जाए – ऐसा निर्णय आपने क्यों किया?

जनक ने पूरी घटना बताते हुए कहा कि कुछ समय पूर्व म्लेच्छों ने हमारे ऊपर आक्रमण किया। तब विनयवान महापराक्रमी राम और लक्ष्मण ने उस महायुद्ध में मेरी व मेरे छोटे भाई की रक्षा कर देवों से भी दुर्जेय उन समस्त म्लेच्छों को पराजित किया। यदि उन दोनों भाइयों द्वारा म्लेच्छों की वह सेना जीती नहीं जाती तो निश्चय ही यह पृथ्वी म्लेच्छों से भर जाती ।

प्रजा से स्नेह करनेवाले, सर्वगुणसम्पन्न उन दोनों पुत्रों को पाकर राजा दशरथ अपने महल में इन्द्र के समान सुखों

का उपभोग कर रहे हैं। न्यायनिपुण राजा दशरथ के राज्य में इस समय हवा भी प्रजा को कष्ट नहीं दे पाती है, फिर अन्य मनुष्यों की तो बात ही क्या है?

इस उपकार के वदले मैं क्या उपकार करूँ? इस चिन्ता में मुझे दिन-रात नींद नहीं आती थी। मैं महान उपकार से दवा हुआ, प्रत्युपकार करने में असमर्थ अपने-आपको तृण के समान तुच्छ मानता था। एक दिन अपनी नवयुवती होती पुत्री को देखकर मैंने उसे रामचन्द्र को देने का निर्णय कर लिया।

यह सुनकर उपस्थित अन्य विद्याधर उनकी निन्दा करते हुए कहने लगे – कहाँ तुम भूमिगोचरी और कहाँ हम विद्याधर, हमारे जैसा बल भूमिगोचरियों में कहाँ? राम ने म्लेच्छों को पकड़ा तो क्या हुआ? उनको तो क्षुद्र मनुष्य भी हरा सकता है, तुम तो बुद्धिमान हो, इस समय तुम क्षुद्र भूमिगोचरी राम को छोड़कर आकाश में चलनेवाले विद्याधरों के अधिपति के साथ संबंध करो।

राजा जनक ने निर्भीक होकर उत्तर दिया कि पानी से लबाबल समुद्र से प्यास नहीं बुझती, वह काम तो छोटे-छोटे कुंओं का मीठा जल ही कर सकता है। और फिर विद्याधर आकाश में चलते हैं तो क्या? आकाश में तो कौए भी चलते हैं।

राम भूमिगोचरी हैं तो क्या? ऋषभदेव के इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न राजा दशरथ का वंश निन्दनीय कैसे हो सकता है? सभी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र जैसे महापुरुष भी भूमिगोचरी ही होते हैं।

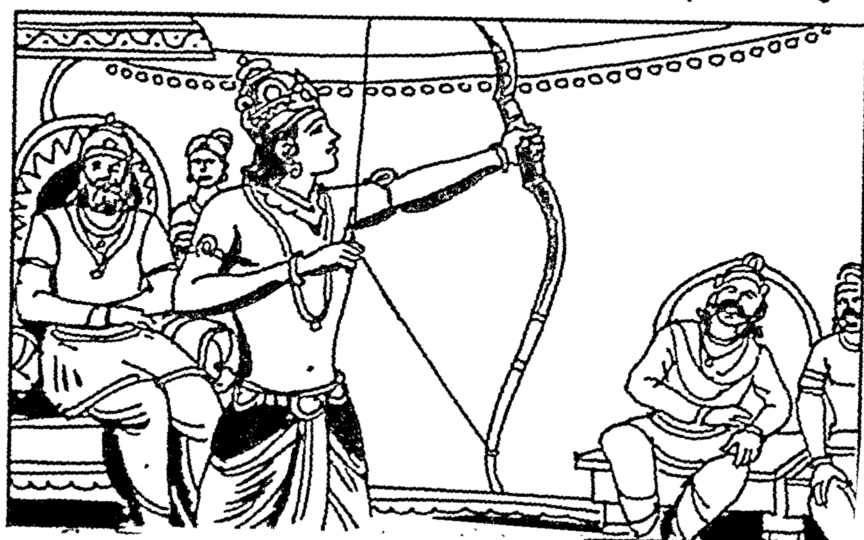
चार महारानी और पाँच सौ पत्नियों वाले राजा दशरथ के बड़े पुत्र राम के गुणों की महिमा अकथनीय है। अतः मैं अपनी कन्या उन्हें ही परणाऊँगा।

जब जनक सीता का विवाह प्रभामण्डल से करने को किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुए और राम के बल की प्रशंसा करते ही रहे, तो वे विद्याधर बोले कि हम तुम्हें सागरावर्त और वज्रावर्त नामक दो धनुष देते हैं, जिनकी रक्षा देव करते हैं। यदि राम-लक्ष्मण इन धनुषों को चढ़ा सकें तो सीता उनकी, नहीं तो हम सीता को जबरदस्ती ले जायेंगे।

राजा जनक ने विवश हो उनकी यह शर्त मंजूर तो कर ली, पर मिथिला आकर बहुत चिन्तित हुए। रानी भी इस समाचार से बहुत दुःखी हुई। पर मरता क्या न करता, आखिर जनक ने स्वयंवर की घोषणा की।

सीता के स्वयंवर में अनेकों देशों के राजा आए, जिनमें से कुछ तो धनुष के चारों ओर से उठनेवाली लपटों से डर गए और कुछ उससे लिपटे सर्पों से डर गए, किसी ने धनुष उठाने की बात तो दूर, उसके पास जाने का साहस ही नहीं किया।

अन्त मे राम धनुष की ओर बढ़े, उनके पास जाते ही अग्नि शांत हो गई, सर्प गायब हो गए। ज्यों ही राम धनुष



चढ़ाकर खींचने लगे त्यों ही भयानक आवाज हुई जिसे सुनकर सभी प्रजाजन डर गए। यह देखकर राम ने उठाया हुआ धनुष नीचे रख दिया।

लक्ष्मण ने दूसरा धनुष चढ़ाया। यह सब देखकर विद्याधरों ने फूल बरसाये, दुन्दुभि बजाई।

लक्ष्मण की सूर-वीरता से प्रसन्न होकर चन्द्रवर्द्धन विद्याधर ने अत्यन्त बुद्धिमती अठारह कन्याओं का विवाह लक्ष्मण के साथ धूमधाम से किया। राम का भी सीता के साथ विधिवत् पाणिग्रहण हुआ।

भरत ने यह सब देखा तो विचारने लगे कि एक ही पिता के पुत्र होते हुए मैं कम शक्तिशाली क्यों हूँ? राम-लक्ष्मण जैसा सामर्थ्य मुझमें क्यों नहीं? अवश्य ही यह उनके पूर्व जन्म के पुण्यों का फल है।

सर्वकला निपुण कैकेई ने जब भरत को विचारमग्न देखा तो वे दशरथ से बोलीं — भरत कुछ उद्विग्न-सा दिखाई दे रहा है, कहीं वह दीक्षा न ले ले। अतः तुम जनक के भाई कनक की पुत्री का विवाह भरत से कराओ।

दशरथ के कहने पर राजा जनक ने पुनः स्वयंवर रचा व कनक की पुत्री स्वयंप्रभा ने भरत के गले में वरमाला डाली और भरत उस सुन्दरी के रूपजाल में उलझ गए।

इसके पश्चात् राम, लक्ष्मण और भरत आदि सभी अयोध्या लौटे, जहाँ उनका बहुत स्वागत हुआ।

आठवाँ दिन

प्रजा में सर्वत्र सुख-शांति थी। बेटों के विवाह के पश्चात् दशरथ भी अपना समय धार्मिक अध्ययन-मनन में व्यतीत करने लगे।

कुछ दिनों पश्चात् अष्टान्हिका महापर्व आने पर राजा दशरथ ने आठ दिन का उपवास किया। उपवास की समाप्ति पर उन्होंने जिनेन्द्र भगवान का उत्कृष्ट अभिषेक किया और समस्त परिवार के साथ जिनेन्द्र पूजा की। पूजा के पश्चात् रानियाँ चलीं गईं। कुछ देर पश्चात् समस्त विधि पूर्ण होने पर राजा ने शान्तिकारक गंधोदक सभी रानियों के पास पहुँचाया। तीन रानियों के पास तरुण स्त्रियां गंधोदक ले कर गईं, अतः उनके पास गंधोदक शीघ्र ही पहुँच गया; किन्तु सुप्रभा के लिए गंधोदक वृद्ध खोजा के द्वारा भेजा गया था, अतः वह समय पर नहीं पहुँचा। अपने पास गंधोदक नहीं आया देखकर सुप्रभा अपने-आपको अन्य रानियों से हीन व अपमानित महसूस करती हुई आत्मघात करने का निर्णय कर बैठी और उसने विशाख नामक भण्डारी से विष मंगवाया।

मन्दिर से लौटने पर राजा दशरथ ने अन्तःपुर में तीन रानियाँ देखी, पर सुप्रभा दिखाई नहीं दी। कारण जानने के लिए राजा सुप्रभा के महल में गए। तभी विशाख नामक भण्डारी विष ले आया। विष देखकर राजा ने कहा कि मरण का दुःख ही सबसे बड़ा दुःख है। अभी तुम्हें ऐसा कौन-सा दुःख उत्पन्न हो गया कि जिसके उपायस्वरूप तुमने मरण को स्वीकारा

है? रानी ने कहा कि अपमान का दुःख। आपने गंधोदक सभी रानियों को भेजा, पर मुझे नहीं भेजा? राजा कुछ कहते कि तभी बृद्ध खोजा गंधोदक ले आया। रानी ने गंधोदक मस्तक से लगाया। राजा ने क्रोधित होकर बृद्ध खोजा से देर से आने का कारण पूछा।

खोजा ने कहा – मैंने लाने में कुछ लापरवाही नहीं की है। यह तो बृद्धावस्था का दोष है। पहले मैं प्रत्येक कार्य पलभर में करता था, पर अब मैं लकड़ी के सहारे बिना नहीं चल सकता। मेरे शरीर की हीनशक्ति के कारण ही मुझे देर हो गई है। अतः मेरा शरीर बुढ़ापे के आधीन जानकर आप मुझ पर क्रोध नहीं कीजिए।

यह सुनकर राजा दशरथ का मन वैराग्य से ओत-प्रोत हो गया और वे सोचने लगे कि वह दिन कब आएगा जब मैं भी अपने पूज्य पिताजी एवं बड़े भाई के समान मुनिव्रत अंगीकार करूँगा। मैंने चिरकाल से सुखपूर्वक पृथ्वी का पालन किया, यथायोग्य भोग-भोगे, शूरवीर पुत्र उत्पन्न किए, फिर अब मेरे द्वारा किस बात की प्रतीक्षा की जा रही है? यह हमारे वंश की परंपरा है कि पुत्रों के समर्थ होने पर हमारे धीर-वीर वंशज पुत्रों के लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवन में जाकर आत्मसाधनारत हो जाते रहे हैं; पर मैं अभी तक उनके पदचिन्हों पर चलने में असमर्थता क्यों महसूस कर रहा हूँ? – इसप्रकार विचार करते हुए राजा दशरथ की यद्यपि भोगों में आसक्ति कुछ कम अवश्य हुई, पर रागवश वह गृहत्याग में समर्थ नहीं हुए। इसप्रकार बहुत समय निकल गया।

कुछ काल पश्चात् अयोध्या के पास महेन्द्रोदय नामक उद्यान में सर्वभूतहित मुनिराज का संसघ पदार्पण वर्षाकाल समीप होने से उन्होंने वहीं पर चौमासा व्यतीत

राजा दशरथ अपने परिवार के साथ प्रतिदिन मुनिराज के दर्शन कर उनके उपदेशों का श्रवण करते थे। इसप्रकार वर्षाऋतु बीती व शरद ऋतु आई। राजा दशरथ का तत्त्वोपदेश श्रवण का कार्य पूर्ववत् चालू था। तभी एक दिन अर्द्धरात्रि में "राजा जनक का पुत्र जयवंत हो" — इस तेज जयघोष से अयोध्यावासी जाग गए। सीता के कानों में जब यह स्वर पड़ा तो भाई की याद कर वे रोने लगीं; क्योंकि उनका भाई पैदा होते ही चुरा लिया गया था। राम के द्वारा समझाने पर वे चुप हो गईं और दूसरे दिन प्रातःकाल ही वे महेन्द्र उद्यान गईं ।

राजा दशरथ भी जब प्रातःकाल मुनिराज के दर्शन को निकले तो नगर के चारों तरफ फैले हुए विद्याधरों को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। जब वे महेन्द्रोदय उद्यान में पहुँचे तो वहाँ उन्होंने विद्याधर राजा चन्द्रगति का दीक्षा महोत्सव देखा। राजा दशरथ ने जब उनके वैराग्य का कारण जानना चाहा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि जब राजा जनक की रानी विदेहा के गर्भ रहा, तब पूर्वजन्म के बैरी एक देव को इच्छा हुई कि मैं इस बालक को मार डालूँ। "गर्भ में ही बालक को मारने से मां को कष्ट होगा" — यह सोचकर वह उसके जन्म का इन्तजार करने लगा। अतः समय होने पर जब रानी के जुड़वा लड़का-लड़की हुए तो बदला लेने का इच्छुक वह देव लड़के को चुरा ले गया। ज्यों ही वह देव उसे मारने लगा, त्यों ही उसका विवेक जागृत हो गया। पापकृत्य से डरे हुए उस देव ने उस बालक के कानों में दैदीप्यमान कुण्डल पहनाए और उसे पृथ्वी पर छोड़ दिया।

कुण्डलों से प्रकाशित उस बालक को चन्द्रगति नामक विद्याधर राजा ने उठाया और अपनी पत्नी को जाकर दे दिया। रानी के कोई पुत्र नहीं था। अतः लोक में उन्होंने यही

कहा कि रानी के ही पुत्र हुआ है और उस बालक का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया।

कुण्डलों की किरणों से सुशोभित होने के कारण उसका नाम प्रभामण्डल रखा, जो कि बाद में भामण्डल नाम से प्रसिद्ध हुआ।

युवावस्था होने पर भामण्डल नारद द्वारा दिखाए गए सीता के चित्र पर मोहित हो गए।

सीता की मंगनी भामण्डल से करने के लिए राजा चन्द्रगति ने मायामयी अश्व द्वारा राजा जनक का हरण करवाया; परन्तु जनक के इस निर्णय पर अटल रहने से कि "सीता राम को ही दी जायेगी" विद्याधरों ने धनुष चढ़ाने व स्वंयवर की शर्त रखी। उस स्वयंवर में सीता ने राम को वर लिया।

उधर सीता के विवाह से अनभिज्ञ भामंडल को जब कुछ काल पश्चात् सीता का विरह असह्य हो गया तो वह स्वाभाविक लज्जा छोड़ पिता के पास गया और बोला कि सीता के बिना बहुत समय तक रहा, पर अब विरह असह्य है। आप लोग कुछ प्रयत्न क्यों नहीं करते?

तब चन्द्रायन नामक विद्याधर धीरे-धीरे बोला कि हम लोग कन्या के पिता को यहाँ लाए थे। उनसे आपके लिए कन्या मांगी थी, पर वे उसे राम को देने का विचार कर चुके थे। उन्हें हमने बहुत समझाया, पर वे नहीं माने, तब हमने बहुत विचार कर धनुष की शर्त रखी। सोचा था कि राम धनुष नहीं चढ़ा सकेंगे तो कन्या तुम्हारी हो जायेगी; पर देवाधिष्ठित उन धनुषों को चढ़ाकर राम ने वह सुन्दरी प्राप्त करली। इस समय वह कन्या देवों से भी नहीं हरी जा सकती है, फिर उन दोनों धनुषों से रहित हमारी तो

बात ही क्या है? और उसे स्वयंवर से पहले भी जबरदस्ती नहीं हरा जा सकता था; क्योंकि दशानन का जवाई राजा मधु जनक का मित्र है। दशानन त्रिखंडी है, सभी विद्याधर भूमिगोचरी उसके अधीन हैं। उसकी सहायता प्राप्त जनक की कन्या को हम कैसे हर सकते थे?

सीता के स्वयंवर के वृतान्त को सुनकर भामण्डल विचारता है कि मेरा विद्याधर का जन्म निरर्थक है; क्योंकि मैं तो साधारण मनुष्यों की तरह अपनी प्रिया को भी प्राप्त नहीं कर सका।

ऐसा विचार कर तीव्र मोहवश उसने निर्णय किया कि मैं स्वयं ही भूमिगोचरियों को जीतकर उस उत्तमकन्या को ले आता हूँ । और वह तैयार होकर विमान में बैठकर आकाश मार्ग से मिथिला जाने लगा। मिथिला जाते हुए रास्ते में अपने पूर्वभव का नगर देखकर भामंडल को जातिस्मरण हो गया। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि जिस कन्या के प्रेम में वह पागल है, वह और कोई नहीं अपितु उसी की सगी बहिन है। यह जानकर वह तुरन्त रथनूपुर लौट गया तथा राजा चन्द्रगति को समस्त घटनाक्रम सुनाया।



राजा चन्द्रगति को जब यह घटना मालूम हुई तो संसार के संबंधों की विचित्रता व क्षणभंगुरता का ख्याल कर उन्हें वैराग्य हो गया और उन्होंने वहाँ मुनिराज के समीप जिनदीक्षा ले ली।

भामण्डल को राजा जनक का पुत्र जानकर राजा दशरथ ने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधर के हाथ राजा जनक के पास पत्र भेजा और स्वयं अत्यधिक स्नेहपूर्वक उनसे मिले। सीता भी भाई को पाकर फूली नहीं समाई।

राजा जनक ने पत्र देनेवाले को अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण दिये और विदेहा के साथ तुरन्त अयोध्या आकर अपने बिछुड़े हुए बेटे से मिले।

इसके पश्चात् वे सभी एक माह तक अयोध्या में रहे। फिर भामण्डल ने सब लोगों से सलाहकर मिथिला का राज्य कनक को सोंप दिया और स्वंय माता-पिता के साथ रथुनूपुर चले गये।

कुछ दिन पश्चात् राजा दशरथ मुनिराज के दर्शन करने गए। उनके मुख से अपने पूर्वभव सुनकर उन्हें जातिस्मरण हो गया। और उन्होंने तुरन्त ही मुनिदीक्षा लेने का विचार बनाया तथा मंत्री को बुलाकर अपने प्रथम पुत्र को महामण्डलेश्वर पद के अभिषेक करने की तैयारी करने को कहा। मंत्री के द्वारा कारण पूछे जाने पर वे बोले – अब मैं भवसमुद्र को पारकर शिवपुरी को जाना चाहता हूँ, अतः निर्विघ्न होकर तप करने की मेरी इच्छा है।

यह बात जंगल में लगी आग की भाँति पूरे राज्य में फैल गई। पत्नी व प्रजाजन सभी दुःखी थे, पर वैरागी भरत पिता के साथ दीक्षा की तैयारी करने लगे। वे मन में सोचते

हैं कि जब पिताजी दीक्षा ही ले रहे हैं तो फिर उन्हें राज्य की चिन्ता क्यों? उचित ही है, सब बंधनों में स्नेह का बंधन मुश्किल से छूटता है। पर मुझे क्या? मुझे तो किसी से पूछने की आवश्यकता भी नहीं है; क्योंकि रोगों का घर यह नश्वर शरीर ही जब मेरा नहीं है, तो फिर उससे संबंधित भाई मेरे कैसे हो सकते हैं?

कैकेई भरत का यह भाव ताड़ गई और वह पति और पुत्र दोनों को वन जाने से रोकने का उपाय सोचने लगी। तभी उसे अपने वर की याद आई और वह राजा दशरथ के पास गई।

पहले तो रानी ने राजा को मुनिव्रत लेने से रोकने की कोशिश की, पर राजा अपने निश्चय पर अटल रहे और कैकेई से बोले – मैं तो निश्चित मुनिव्रत लूँगा, पर तेरी और जो इच्छा हो, सो माँग ले।

रानी नीचा मुख करके बोली कि भरत तुम्हारे साथ दीक्षा लेने का इच्छुक है और पति तथा पुत्र रहित मेरा जीवन व्यर्थ है, अतः यदि आप भरत को राज्य दे दें तो ....। कैकेई आगे कुछ कहती कि दशरथ बोले इसमें लज्जा की क्या बात है? जैसा तुम कहोगी वैसा ही होगा। इसप्रकार आश्वासन देकर दशरथ ने कैकेई को विदा किया और सौचने लगे कि भरत से भी बढ़कर राम को चाहनेवाली कैकेई आज यह क्या माँग बैठी? क्या वह समझती नहीं है कि भरत का राज्याभिषेक राम-लक्ष्मण के वनगमन से ही संभव है। बड़े भाईयों के राज्य में रहते हुए छोटे भाई को राज्याभिषेक कैसे संभव है? राम को उसने भरत से भी अधिक प्यार दिया है। भरत को तो उसने मात्र जन्म ही दिया है पर राम को तो स्वयं पाला है – ऐसे प्रियपुत्र राम को क्या

वह अपने से दूर जाते देख सकेगी? अथवा वैरागी भरत को वनगमन से रोकने की चिन्ता में व्याकुल वह यह सब सोच ही नहीं सकी है। मैं राम को गृहत्याग की आज्ञा भी नहीं दे सकता और वचनभंग भी नहीं कर सकता। अस्तु, जो भी हो, अब राम स्वयं ही इस समस्या का समाधान करेंगे।

यह सोचकर उन्होंने राम-लक्ष्मण को बुलाया और उनसे कहा कि समस्त कलाओं में निपुण रानी कैकेई की वीरता से प्रसन्न होकर एक समय मैंने उसे वचन दिया था, जिसे उसने उस समय धरोहर रख दिया था; अब वह अपने पुत्र को राज्य मांगती है। यदि उसे राज्य नहीं देता हूँ तो भरत मुनिदीक्षा लेते हैं और कैकेई भी पुत्रशोक में प्राण तजेगी। वचन भंग होने से मेरी भी अपकीर्ति होगी। दूसरी तरफ यह कार्य मर्यादा के विपरीत है कि बड़े पुत्र को छोड़कर छोटे पुत्र को राज्य दूँ। और यदि भरत को राज्य सीमा की सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य दूँ तो परमतेज को धारण करनेवाले तुम दोनों भाई कहाँ जाओगे? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। तुम निपुण हो, बुद्धिमान हो; अतः इस दुःखपूर्ण स्थिति से बचने का उपाय तुम ही बताओ।

यह सुनकर विनयपूर्वक राम बोले — आप अपने वचन का पालन कीजिए। आपके वचन की रक्षा के लिए मुझे वन में भी स्वर्ग का ही आनन्द मिलेगा और वचनभंगरूपी अपकीर्ति के द्वारा उपलब्ध राज्य अत्यन्त दुःखदायी होगा। सच्चा पुत्र तो वही है जो कि पिता को पवित्र करे अर्थात् शोक से रक्षा करे; अतः मैं आपको वचनभंगरूपी शोक से अवश्य ही मुक्ति दिलाऊँगा।

पिता-पुत्र में ये बातें हो ही रही थीं कि दीक्षा लेने के इच्छुक भरत किसी को कुछ कहे बिना महल से बाहर जाने

लगे। यह देखकर भरत की रानियाँ विलाप करने लगीं। क्रन्दन सुनकर राजा दशरथ ने स्नेह से भरत को रोका, उसे गले लगाया और उससे बोले कि अभी तेरी तपोवन में जाने की उम्र नहीं है, तूं तो राज्य कर तपोवन को तो मैं जाऊँगा तुम अभी संसार से सुखों का उपभोग करो फिर वृद्धावस्था में दीक्षा लेना, अभी तो तुम गृहस्थावस्था में ही रहकर धर्म करो।

यह सुनकर भरत ने आदर सहित कहा कि पिताजी मृत्यु बालक, तरुण किसी की भी प्रतीक्षा नहीं करती; अतः मैं तो अभी ही निर्ग्रन्थरूप धारण करूँगा। दूसरी बात संसार के सुखों का उपभोग करने की है, सो संसार में सुख हैं ही नहीं, संसार नाम ही दुःखों का है। हाँ, कभी-कभी हमें वे कम दुःख ही सुख से लगते हैं। जहाँ तक गृहस्थाश्रम में रहकर मुक्ति के प्रयास की बात है सो हे तात्! यदि मुक्ति सुख की प्राप्ति घर में रहकर हो सकती है तो आप भी स्वयं इस राज्य का त्याग क्यों कर रहे हैं? जब आप त्याग कर ही रहे हैं तो फिर मुझे क्यों रोक रहे हैं? हे तात! जो पुत्र को दुःख से तारे और तप की अनुमोदना करे, वही तात का तातपना है। अतः आप संसार के दुःख से मुझे तारें और मेरे तप की अनुमोदना करें।

भरत के ऐसे तार्किक जवाब सुनकर पिता दशरथ गद्-गद हो गए और बोले कि हे वत्स! तूं उत्तम भव्य है, तूं निश्चित ही शीघ्र मुक्ति प्राप्त करेगा। पर तूं विनयी मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ है, तूने कभी मेरी बात नहीं टाली है। फिर अब मेरी आज्ञा का उल्लंघन क्यो कर रहा है। अपनी माता को क्यों महाशोकरूपी समुद्र में गोते लगाने दे रहा है? अपत्य (पुत्र) का अपत्यपना यही है कि जो माता-पिता को शोकरूपी समुद्र

में नहीं गिरने दे, अतः तुम अभी कुछ दिन राज्य करो, फिर जैसी तुम्हारी इच्छा हो सो करना।

भरत पिताजी से कुछ कहते कि राम ने भरत का हाथ पकड़ा और मधुर स्वर में बोले — जो पिताजी ने कहा है सो उचित ही है। अभी तुम्हारी अवस्था तप के योग्य नहीं है । तुम्हारे समान भाग्यशाली पुत्र के रहते पिता का वचन भंग हो, माता प्राण तजे — यह ठीक नहीं है। पिता के वचन की रक्षा के लिए तो हम शरीर भी छोड़ सकते हैं, तो फिर राज्य की तो बात ही क्या है? पिता के जिस वचन की रक्षा के लिए मुझे राज्य छोड़ना है, उनके उसी वचन की रक्षा के लिए तुम्हें राज्य करना है। मैं यह नगर छोड़कर जा रहा हूँ और किसी नदी के किनारे पर्वत पर अथवा वन में कही भी वेष बदल कर रहूँगा; अतः कोई मुझे पहिचान भी नहीं पायेगा। अतः तुम शांतिपूर्वक राज्य करो। इसप्रकार भरत को मनाकर स्वयं लक्ष्मण के साथ वे माता से आज्ञा लेने चले गये।

राम के मुख से देशान्तर की बात सुनकर कौशल्या वेहोश हो गई। कुछ देर पश्चात् होश में आने पर वे बोली कि बेटा! कुलवती स्त्रियों के तीन ही आधार हैं — पिता, पति और पुत्र। इस समय मेरे पिता हैं नहीं, पति दीक्षा ले रहे हैं और यदि तुम भी मुझे छोड़कर चले जाओगे तो मैं कैसे जिऊँगी?

राम बोले—माँ! मैं आपको छोड़कर नहीं जा रहा हूँ। मैं तो हमेशा आपके साथ ही रहूँगा। पर अभी आपको साथ ले चलना संभव नहीं है; क्योंकि अत्यन्त ऊँची-नीची कठोर धरती, पहाड़ व जंगलों में आप चल नहीं सकेंगी। फिर मैं दक्षिण दिशा में जाकर आपके रहने योग्य स्थान बनाकर आपको

सवारी द्वारा ले जाऊँगा। इसप्रकार माँ को मनाकर अन्य माताओं से विदा लेने के पश्चात् वे सीता के महल में गये।

राम के बहुत समझाने पर भी दृढ़निश्चयी सीता न मानी। बस, उनका एक ही जवाब था – "जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं भी रहूँगी।"

सीता सहित राम और लक्ष्मण का वनगमन देखकर माता-पिता के दुःखों का पार नहीं था। पर सान्त्वना देने में निपुण राम-लक्ष्मण ने उन्हें शान्त किया और वे राजमहल से बाहर निकल गये।

राम को नगर से बाहर जाते देखकर अयोध्यावासी हक्के-बक्के रह गए। और कुछ समझ न पाने के कारण किंकर्त्तव्यविमूढ़ से उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

वे राम के पीछे बढ़े जा रहे थे, चलते चले जा रहे थे। ज्यों-ज्यों उनकी गति तीव्र होती जा रही थी, त्यों-त्यों उनके सोचने की गति भी तीव्र होती जा रही थी। उन्हें ध्यान आया कुछ पल पूर्व बीते हुए क्षणों का, जब वे इन्हीं राम के राज्याभिषेक की तैयारी में लगे थे। राम के मस्तक पर मुकुट देखने को उनकी आँखें लालायित थीं। पर नियति को कुछ और ही मंजूर था। पिता के वचन की रक्षा के लिए भाई भरत को राज्य सौंपकर उन्होंने स्वयं ही वनवास चुन लिया है। सिंहासन पर बैठने की बात तो दूर रही, भाई को सुखी देखने की इच्छा से वे अयोध्या की सीमा से भी कोसों दूर चले जा रहे हैं। पर हम तो राम के ही साथ जायेंगे। इसप्रकार वे सोच ही रहे थे कि राम की आवाज सुनकर उनकी तन्द्रा भंग हो गई। उनके चहेते राम उन्हें अयोध्या वापिस जाने को कह रहे थे, पर प्रजा उनका साथ छोड़ने को तैयार नहीं थी।

अतः राम ने रात्रि होने पर सोने का बहाना किया और सबके सो जाने पर उन्हें छोड़कर सीता, राम व लक्ष्मण तीनों आगे बढ़ गये।

प्रातःकाल सीता, राम व लक्ष्मण को न देखकर सभी ने दोड़ लगाई और उनसे जा मिले। वे सभी सीता को धन्यवाद देते हुए बोले कि आपके कारण ही हम राम-लक्ष्मण का साथ पा सके हैं। यदि आप धीरे-धीरे न चलतीं तो क्या हम आपका साथ पा सकते थे?

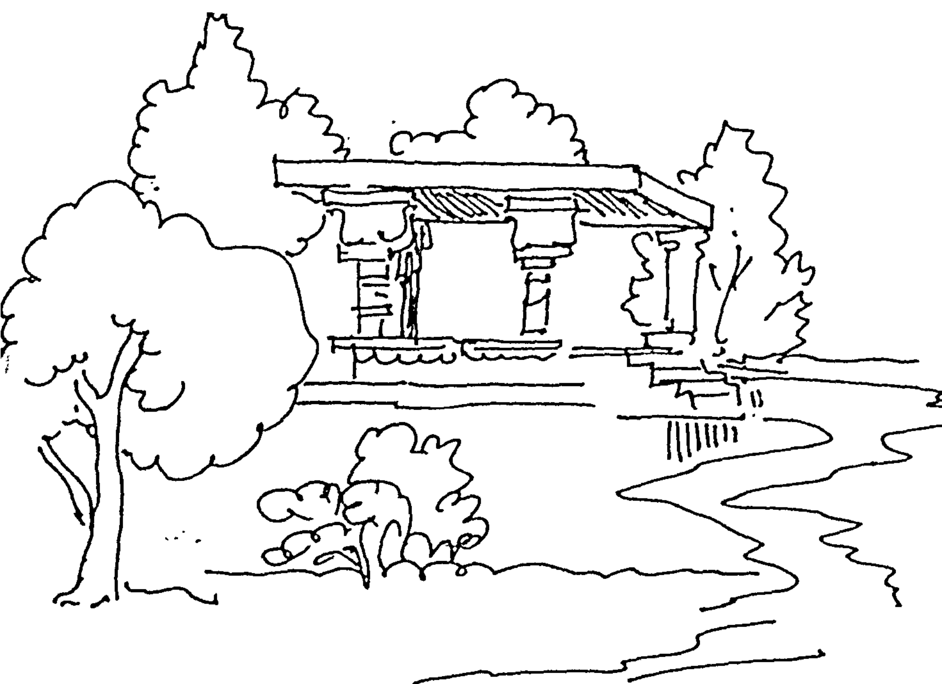
थोड़ी दूर पर नदी का तेज वेग था। जल को पार करने की विद्या में निपुण राम तो सीता का हाथ पकड़कर लक्ष्मण सहित नदी पार कर गए, पर प्रजाजन जल के तीव्र वेग को पार कर नहीं सके; अतः विवश हो उन्हें जाते हुए तबतक देखते रहे, जबतक वे नजरों से ओझल नहीं हो गए।

राम के जाने के पश्चात् उन लोगों में से अनेकों ने मुनिव्रत अंगीकार कर लिया, अनेकों ने श्रावक के व्रत लिये और अयोध्या लौट आये।

लौटे हुए व्यक्तियों से राम के समाचार सुनकर कौशल्या व सुमित्रा ने राजा दशरथ से राम को लौटाने के लिए बहुत कहा। राजा दशरथ तो विरक्त हो गये थे; अतः उन्होंने रानियों से कहा कि यह विकाररूप जगत मेरे आधीन नहीं है। यदि सभी काम मेरी इच्छानुसार हो, तो मैं तो सोचता हूँ कि समस्त प्राणी सदा सुखी रहें, किसी को जन्म-जरा आदि व्याधि न सताये, पर कर्मों की नानाप्रकार की स्थिति होती है, जिसके अनुसार प्राणी उनके फल भोगता है। अतः विवेकी मनुष्यों को शोक नहीं करना चाहिए। राज्य तो मैंने छोड़ ही दिया है और संसार से भयभीत अब मैं मुनिव्रत धारण करूँगा। ऐसा कहकर भरत का विधिपूर्वक राज्याभिषेक कर राम के

जाने से सन्तप्त चित्त दशरथ ने सर्वभूतहित मुनि के पास जाकर मुनिव्रत अंगीकार किया।

मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा ध्यान और अध्ययन में मग्न रहते थे, फिर भी राम के विदेशगमन की वजह से उनका मन कभी-कभी दुःखी हो जाता था। यही कारण है कि विषम परीषहों को सहकर एवं दुर्द्धर तप करने पर भी उन्हें मोक्षरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं हुई और बहुत समय पश्चात् वे इस देह का त्याग कर तेरहवें स्वर्ग में गये। ●



नौवाँ दिन

"ऐश्वर्य में जिसने आँखों को खोला, फूलों को ही जिसने देखा; दुःख क्या होता है? —यह जिसने जाना ही नहीं, बाल्यकाल से ही प्यार में पली-बढ़ी बह सीता अब वन में कैसे रह सकेगी? राम ने यह कैसा निर्णय लिया?"—यह सोच-सोच कर कैकेई परेशान थी।

वे सोच रही थीं कि मैंने भरत को वनगमन (दीक्षा लेने) से रोकने का प्रयास अवश्य किया था; पर राम, लक्ष्मण, सीता का वनगमन तो नहीं चाहा था। पुत्र के स्नेहवश उसके लिए मांगे गए राज्य का परिणाम राम-लक्ष्मण का वनवास होगा, इसकी तो मैंने कल्पना भी न की थी। पति के साथ-साथ पुत्र के भी वनगमन के विचार से ही जब मैं काँप गई थी तो आज पति के दीक्षित व पुत्र के गृहत्याग पर दोनों दीदियों (अपराजिता व सुमित्रा) के दुःखों की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

नहीं, नहीं; यह संभव नहीं है कि मैं भरत के साथ सुख से रहूँ और वे विलाप करती रहें— ऐसा सुख मुझे नहीं चाहिए। मैं इतनी स्वार्थी नहीं हूँ कि अपने पुत्र भरत की खातिर दोनों बड़े पुत्रों व सुकुमार सीता को वन-वन पैदल भटकने दूँ। भले ही भरत दीक्षा लेता हो तो ले लेवे; पर राम-लक्ष्मण को तो लौटाना ही होगा।

इसप्रकार दृढ़निश्चय कर कैकेई तुरन्त भरत के पास गई और बोली—राम, लक्ष्मण और सीता के बिना यह राज्य, यह

महल सूना-सूना लगता है। तुम शीघ्र जाओ और उन्हें आगे बढ़ने से रोको, मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे सेना लेकर आती हूँ और फिर उन तीनों को अयोध्या वापिस ले आयेंगे। वे मेरा कहना कभी न टालेंगे।

तीव्रगामी अश्व द्वारा जंगल को व नौकाओं द्वारा नदी को पारकर भरत छह दिनों में ही राम के पास पहुँच गए। पीछे-पीछे कैकेई भी रथ में बैठकर सेना सहित वहाँ पहुँच गई।

दोनों ने मिलकर राम को बहुत समझाया, अयोध्या लौटने के लिए अनेक तर्क दिए, दोनों माताओं के दुःखों का वर्णन किया; जिसे राम शांतचित्त होकर सुनते रहे।

यह सब देखकर कैकेई ने अन्त में कहा कि मेरे जिस वचन की पूर्ति के लिए तुम वन जा रहे हो, वह मैं वापिस लेती हूँ। अतः अब तुम निःसंकोच अयोध्या चलो।

यह सुनकर राम सविनय बोले – हे माताजी! यदि मैं आपके साथ अयोध्या चलता हूँ तो दीक्षा के लिए जाते हुए पिता को दिए हुए वचन का भंग होगा, उनकी आज्ञा का उल्लंघन होगा; जिससे हमारे उज्ज्वल कुल की अपकीर्ति होगी। फिर भी यदि आप मुझे आज्ञा देंगी तो मुझे सहर्ष स्वीकार है। राम का यह तर्क सुनकर कैकेई निरुत्तर हो गई, सो उचित ही है; क्योंकि पति कुल की अपकीर्ति कौन पत्नी चाहेगी?

माँ की मौन स्वीकृति पाकर राम ने वहीं पर सभी के सामने हाथों से भरत का पुनर्राज्याभिषेक किया और उन्हें विदा किया।

अयोध्या लौटने पर शत्रुओं से रहित राज्य पर सुखपूर्वक शासन करने लगे; पर उनका मन इन सभी

में नहीं लगता था। वे जल से भिन्न कमल की तरह ही राज्यकार्य करते थे।

सैकडों रानियों के होने पर भी वे उनमें अनासक्त रहते हुये अपना समय अध्यात्म-आगमादि ग्रन्थों के अध्ययन करने में ही व्यतीत करते, अनेक शास्त्रों के ज्ञाता, धर्म के जाननेवाले, विनय व श्रद्धायुक्त भरत साधुओं को यथायोग्य दान देते थे, उनके प्रवचन सुनते थे । — इसप्रकार धर्ममय जीवन व्यतीत करते हुए, निरन्तर निर्ग्रन्थ होने की भावना भाते हुए, उन्होंने आचार्य द्युति के समक्ष प्रतिज्ञा की कि मैं राम के दर्शन मात्र से ही मुनिव्रत धारण करूँगा।

भरत को विदा करने के पश्चात् राम, लक्ष्मण व सीता घूमते हुए एक तापसी के आश्रम में पहुँचे। जहाँ तापसियों ने उनका यथोचित सम्मान करते हुए फलादि का भोजन कराया एवं रुकने का आग्रह किया, किन्तु जब राम ने आगे बढ़ने का अपना दृढ़ निश्चय दुहराया तो उन्होंने राम को सावधान करते हुए कहा कि आगे तीन मील दूरी पर घना जंगल है; अतः इस सुकुमार स्त्री के साथ आप उस वन में न जाएँ। किन्तु छोटी-छोटी बाधाओं से न घबड़ाने वाले राम उस वन में बढ़ते गए। सीता को वह भयानक वन राम के साथ उपवन-सा ही लगा।

इसप्रकार बढ़ते हुए साढ़े चार माह बाद चित्रकूट होते हुए वे अवन्ती देश में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह नगर फल-फूलों से युक्त होने पर भी जनशून्य था। वे इस जनशून्यता के कारण पर विचार कर ही रहे थे कि उन्हें एक दरिद्री मनुष्य आता दिखा। राम द्वारा नगर की जनशून्यता का कारण पूँछने पर उसने बताया कि दशांगपुर नामक नगर में जन्म से ही बलवान क्रूरकर्मी राजा ब[illegible]

राज्य करता था। एक दिन जब वह जंगल में शिकार खेलने गया, तब वहाँ मुनिराज को देखकर उसका मन कुछ शांत हुआ। और उसने उन मुनिराज के समक्ष प्रतिज्ञा की कि मैं जिनेन्द्रदेव, जिनवाणी और जिनगुरु के अतिरिक्त अन्य किसी को नमस्कार नहीं करूँगा। साथ ही उन्होंने श्रावक के व्रत लिए, सो उचित ही है; क्योंकि निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिराज के समक्ष जब जन्मजात वैरभाववाले मांसाहारी पशु भी अपनी क्रूरता छोड़ देते हैं तो मानव का तो कहना ही क्या है?

राजमहल लौटने पर वज्रकर्ण को चिन्ता हुई कि मैं तो उज्जयिनी के राजा सिंहोदर का सेवक हूँ, उन्हें नमस्कार करना अनिवार्य है। यदि उन्हें नमस्कार न करूँगा तो वे दण्ड देंगे। नमस्कार करके मैं अपनी प्रतिज्ञा भी भंग नहीं करना चाहता। अब मुझे क्या करना चाहिए? इसप्रकार बहुत सोच-विचार के पश्चात् उन्होने एक अंगूठी में मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा बनवाकर उसे दाहिने हाथ में पहिन ली तथा सिंहोदर को नमस्कार करते समय वे उस अँगूठी को आगे रखते। एक दिन यह भेद राजा सिंहोदर को किसी ने बता दिया। तब उन्होने क्रोधित होकर राजा वज्रकर्ण को मारने का विचार बनाया। अतः उन्होंने राजा वज्रकर्ण को मिलने के बहाने बुलवाया।

सिंहोदर की कुटिलता से अनभिज्ञ वज्रकर्ण जब राजा से मिलने के लिए जा रहे थे कि रास्ते में विद्युदंग नामक एक व्यक्ति ने राजा वज्रकर्ण को सचेत करते हुए कहा कि हे राजन यदि आप शरीर व भोगों से उदासीन हो गये हो तो ही राजा सिंहोदर के पास जाएँ, अन्यथा नहीं; क्योंकि राजा सिंहोदर को नमस्कार न करने के अपराध के कारण वह तुम्हारा वध करने को ही तुम्हें बुला रहा है।

सिंहोदर में अतिविश्वासी बज्रकर्ण सोचते हैं कि किसी दुश्मन ने मुझमें व सिंहोदर में कुछ फूट डालने के लिए ही यह षडयंत्र रचा है; अतः उसकी बात की यथार्थता जानने से लिए राजा बज्रकर्ण उस व्यक्ति से पूछते हैं कि इतनी गुप्त बात तुम्हें कैसे मालूम हुई? यदि तुम राजा सिंहोदर के अनुचर हो तो तुम मुझे यह राज क्यों बताना चाहते हो? मैंने तुम्हारा कुछ उपकार भी नहीं किया, और तो और मैं तुम्हें जानता भी नहीं?

तब उस व्यक्ति ने अपनी कहानी सुनाते हुए कहा — "मैं उज्जयिनी की एक वेश्या पर आसक्त था। एक दिन वह रानी के कुण्डल देखकर उन पर मोहित हो गई और उन्हें पहनने की इच्छा उसने मेरे सामने रखी। अपनी प्रेयसी की इच्छापूर्ति के लिए मैं उन कुण्डलों की चोरी करने के उद्देश्य से राजमहल में रानी के शयनकक्ष में गया। उस समय राजा-रानी जाग रहे थे और आपस में बातें कर रहे थे। रानी बार-बार राजा से उनके चिन्तित होने का कारण पूँछ रही थी। तब रानी के अत्यधिक आग्रह पर राजा ने कहा कि मैं जबतक नमस्कार से विमुख रहने वाले राजा बज्रकर्ण को नहीं मारता हूँ तबतक मुझे शांति नहीं, नींद नहीं; क्योंकि जिसप्रकार जो ऋण की चिन्ता से व्याकुल हो, जिसकी पत्नी विट पुरुष के चक्कर में पड़ गई हो, जो संसार के दुःखों से भयभीत हो और जो शत्रु को जीत नहीं सका हो; — ऐसे मनुष्य की निद्रा दूर भाग जाती है, उसीप्रकार जो अपमान से जल रहा हो, उसकी निद्रा भी दूर भाग जाती है। अतः यदि मैं नमस्कार से विमुख रहनेवाले बज्रकर्ण को नहीं मारता हूँ तो तेजरहित मेरे जीवन से क्या लाभ?"

इसप्रकार आपबीती सुनाकर वह व्यक्ति राजा वज्रकर्ण से बोला कि देखिए सामने से राजा सिंहोदर की सेना भी आ

रही है। यदि आपको मारने का विचार न होता तो सेना का क्या प्रयोजन था? आपने हिंसादि क्रूरकर्म छोड़कर श्रावक के व्रत ले लिए हैं – यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। इसीलिए मैं चोरी करने का विचार त्यागकर आपको सावधान करने के लिए चला आया।

सेना को शीघ्रता से अपनी तरफ आते देखकर राजा वज्रकर्ण को विद्युदंग की बात का विश्वास हो गया और वे विद्युदंग सहित अपने महल में जाकर छिप गए।

यह देखकर सिंहोदर ने क्रोधित होकर वज्रकर्ण पर आक्रमण किया, किन्तु उसकी सेना वज्रकर्ण के अभेद्य किले में प्रवेश न कर सकी। अतः बौखलाकर अपनी खीझ मिटाने के लिए सिंहोदर ने बाहर का सारा ग्राम जला दिया। उस आग में मेरा भी सारा सामान जल गया। अतः अब मेरी पत्नी ने मुझे उजड़े हुए घरों से सामान लाने को भेजा है।

यह सुनकर उस दरिद्र पथिक की दरिद्रता दूर करने के लिए राम ने अपना रत्नजडित सोने का हार उसे दे दिया, जिसे बेचकर उस दरिद्र की दरिद्रता दूर हुई।

इसके पश्चात राम और सीता को चन्द्रप्रभ के चैत्यालय में छोड़कर लक्ष्मण राजा वज्रकर्ण के दुर्ग के समीप भोजन की व्यवस्था के लिए गए। अजनबी होने से उन्हें वज्रकर्ण ने अन्दर प्रवेश नहीं करने दिया। जब राजा वज्रकर्ण को यह मालूम हुआ कि कोई अजनबी भोजन के लिए बाहर आया है, लेकिन शत्रु का भेदिया जानकर अनुचरों ने उन्हें अन्दर नहीं आने दिया है, तब उन्होंने उस अजनबी को आदर सहित अन्दर बुलाया और सुस्वादु भोजन करने को कहा। किन्तु लक्ष्मण ने भोजन ग्रहण नहीं किया और वे बोले कि मेरे भाई-भाभी चन्द्रप्रभ चैत्यालय में हैं, उनके बिना मैं भोजन नहीं लूँगा।

यह सुनकर बज्रकर्ण ने अपने अनुचरों के साथ ढ़ेर सारा भोजन चैत्यालय में भिजवा दिया।

लक्ष्मण ने जब राजा वज्रकर्ण द्वारा की गई आवभगत की सूचना राम-सीता को दी, तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि बज्रकर्ण ने हमें जाने-पहिचाने बिना हमारा इतना सम्मान किया है, जैसे कि कोई दामाद का करता है; अतः हमें भी उसकी सहायता करना चाहिए। लक्ष्मण तुम महाबलवान हो, सब कार्यों में प्रवीण हो; अतः तुम जाओ और जैसे उचित समझो, वैसे बज्रकर्ण को सिंहोदर से मुक्ति दिलाओ; [illegible] सिंहोदर इतना बलवान है कि वह भरत से भी जीता [illegible] जा सकता है, तो फिर बज्रकर्ण के वश में तो कैसे [illegible]

राम की आज्ञानुसार लक्ष्मण भरत के दूत बनकर [illegible] के पास गए और बोले कि उत्तम गुणों को धारण [illegible] राजा भरत आपको आज्ञा देते हैं कि राजा बज्रकर्ण [illegible] प्रयोजन बैर से क्या लाभ है?

यह सुनकर सिंहोदर बोले कि तू मेरी ओर [illegible] के राजा भरत से कहना कि अविनीत [illegible] लाने के लिए स्वामी प्रयत्न करते ही हैं [illegible] विरोध दिखाई देता है? यह बज्रकर्ण [illegible] विनयाचार रहित है। उसके दो [illegible] या मरण से; इसलिए मैं इसका [illegible] में आप चुप रहिए, बीच में [illegible]

सिंहोदर के इस उद्दण्डता [illegible] क्रोधित हुए, फिर भी उन्होंने आक्रमण नहीं किया [illegible] वीरता के गर्व में चूर, किसी को [illegible] ने सैनिकों को आक्रमण का आदेश दिया। [illegible] तेजस्वी लक्ष्मण ने अकेले ही [illegible]

देखकर सिंहोदर स्वयं सेना सहित उन पर टूट पड़े। पर लक्ष्मण ने अपनी चपलता व वीरता से सिंहोदर की सेना को हराकर सिंहोदर को बाँध लिया और उसे राम के पास ले जाने लगे। यह देखकर सिंहोदर की पत्नी ने लक्ष्मण से उन्हें माफ करने की प्रार्थना की। इस पर लक्ष्मण ने कहा कि हम इन्हें चन्द्रप्रभ चैत्यालय में जाकर छोड़ देंगे।

जब लक्ष्मण सिंहोदर को लेकर राम के पास पहुँचे, तब राम ने वज्रकर्ण को बुलवाया और दोनों में मैत्री करवाई; तदनन्तर सिंहोदर व वज्रकर्ण में राज्य आदि सभी सम्पत्ति आधी-आधी बाँट दी।

राम-लक्ष्मण से उपकृत बज्रकर्ण ने उन दोनों की बहुत प्रशंसा की व अपनी आठ कन्याओं की सगाई लक्ष्मण के साथ की। इसीप्रकार सिंहोदर सहित अन्य राजाओं ने भी अपनी तीन सौ कन्याओं की सगाई लक्ष्मण से की।

जब वे सभी राजा शादी का मुहूर्त निकलवाने लगे तो लक्ष्मण ने कहा कि मैं शादी तभी करूँगा, जब अपनी भुजाओं के बल पर राज्य बनाऊँगा और तभी अपनी माताओं को भी बुलाऊँगा। राम ने भी लक्ष्मण की हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा कि अभी हमारा निश्चित निवास नहीं है। स्वर्ग के समान भरत के राज्य में जो देश हैं, उन्हें पार करते हुए हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्र के आस-पास अपना घर बनायेंगे, तब अपनी माताओं को लाने हम दोनों में से एक अवश्य ही अयोध्या जायगा, तभी आपकी कन्याओं को भी ले जायेंगे। किन्तु सभी राजा राम-लक्ष्मण से वहीं रहने की प्रार्थना करने लगे, उन्हें आगे बढ़ने से रोकने लगे। अतः सीता और लक्ष्मण के साथ राम अर्द्धरात्रि में चुपचाप वह जगह छोड़कर आगे बढ़ गए।

प्रातःकाल जब राजा-प्रजा चैत्यालय में आए तो वहाँ श्रीराम को न देखकर बहुत दुःखी हुए और उनके पुनः आने का इन्तजार करने लगे।

इसप्रकार घूमते हुए वे कुंवर नामक ग्राम के पास वाले वन में पहुँचे। पानी लेने के लिए जब लक्ष्मण पास में स्थित सरोवर पर पहुँचे तो राजकुमार का वेश बनाए हुए कल्याणमाला नामक राजकुमारी की नजर उन पर पड़ी और वह लक्ष्मण के रूप पर मुग्ध हो गई। अतः उसने अपने एक प्यादे को भेजकर लक्ष्मण को अपने पड़ाव में बुलवाया।



लक्ष्मण के कुल गोत्र आदि को जानने के लिए उत्सुक कल्याणमाला ने ज्यों ही उनसे चर्चा आरंभ की तो वे बोले कि पहले मैं अपने भाई-भाभी को खान-पान सामग्री दे आऊँ, फिर उनकी आज्ञा से आपके साथ निश्चिंत होकर बातचीत करूँगा।

यह सुनकर कल्याणमाला ने एक दूत को भेजकर राम व सीता को भी अपने पास बुलवा लिया। तथा एक शीघ्रगा

पुरुष भेजकर रसोई की समस्त सामग्री मंगवा कर भोजन तैयार करवाया।

कल्याणमाला ने राम, लक्ष्मण और सीता को उचित स्थान देकर उनका समुचित सम्मान किया। भोजन कराया, अपने सभी सेवकों को वाहर भेज दिया तथा आज्ञा दी कि अन्दर किसी को न आने दें, जो कोई भी अन्दर आयेगा वह मेरे द्वारा मारा जाएगा।

सभी के चले जाने पर राम, लक्ष्मण और सीता के समक्ष कल्याणमाला ने राजकुमार का वेश त्यागकर अपना असली रूप धारण किया। अतीव सुन्दर उस कन्या को देखकर लक्ष्मण भी उस पर मोहित हो गए और वे टक-टकी लगाकर उसे देखते ही रह गए।

राम द्वारा लड़के के वेश में रहने का कारण पूछने पर उसने वताया कि जव मैं गर्भ में ही थी, तभी मेरे पिता वालखिल्य को म्लेच्छों के राजा ने आक्रमण कर वंदी बना लिया था, मेरे पिता राजा सिंहोदर के सेवक थे। अतः राजा सिंहोदर ने कहा कि वालखिल्य की अनुपस्थिति में उसकी रानी से जो पुत्र होगा, वही राज्य का अधिकारी होगा। पर जव पुत्र के स्थान पर मैं पुत्री हुई तो राज्य जाने के डर से मेरी माँ व सुवुद्धि नामक मंत्री ने मिलकर मुझे पुत्र रूप में ही जनता के समक्ष प्रस्तुत किया और तभी से मैं राजकुमार के रूप में पलने-वढ़ने लगी।

म्लेच्छ राजा अत्यधिक शक्तिशाली है, उससे लड़ने में राजा सिंहोदर भी समर्थ नहीं है; अतः वह भी मेरे पिता को छुड़ाने मे मेरी मदद नही कर सकते। मेरे पिता अभी बहुत कष्ट में है। इस देश मे जो भी धन-धान्य होता है,

वह सब दुर्ग की रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजा को भेज दिया जाता है।

इसप्रकार कल्याणमाला की बात सुनकर और उसे अत्यन्त दुःखी देखकर लक्ष्मण ने कहा कि हे सुन्दरी! तुम शोक छोड़ो और पुरुषवेश में राज्य करते हुए धैर्य के साथ कुछ दिन और प्रतीक्षा करो। अब तुम्हारे पिता शीघ्र ही छूट जायेंगे, क्योंकि म्लेच्छों के राजा को वश में करना कोई बड़ी बात नहीं है।

लक्ष्मण के उक्त कथनों से निश्चिंत हुई कल्याणमाला ने उनके साथ तीन दिन प्रसन्नतापूर्वक बिताए।

कल्याणमाला के सोने पर रात्रि में राम-लक्ष्मण व सीता चुपचाप वहाँ से निकल गए। जागने पर रामादि को न पाकर कल्याणमाला बहुत दुःखी हुई, पर अन्त में अपने को सम्हाल कर, राजकुमार का वेश धारण कर अपने नगर लौट गई।

राम, लक्ष्मण और सीता नर्मदा नदी को पार कर जब विन्ध्याचल के सघन जंगल में पहुँचें तो वहाँ उनकी मुठ-भेड़ म्लेच्छों के अधिपति से हो गई, जिसे लक्ष्मण ने पल भर में पराजित कर दिया और उसके द्वारा बन्दी बनाए हुए राजाओं को छुड़वाया, जिनमें कल्याणमाला के पिता बालखिल्य भी थे।

जब बालखिल्य अपने नगर में पहुँचे, तो नगरवासियों ने उनका बहुत स्वागत किया। कल्याणमाला भी अपने असली रूप में आ गई। उसे राजकुमारी के रूप में देखकर प्रजा आश्चर्यचकित रह गई।

इसप्रकार पीड़ितों को दुष्टों से बचाते हुए राम और लक्ष्मण, सीता सहित रात्रि के सघन अंधकार में आगे बढ़ते रहे।

दसवाँ दिन

चलते-चलते सीताजी थक जाती हैं। प्यास से उनका मुँह सूख जाता है। सीताजी को सान्त्वना देकर राम-लक्ष्मण उन्हें समीपवर्ती गांव में ले जाते हैं, जहाँ पास में स्थित कपिल ब्राह्मण के घर में उसकी पत्नी के द्वारा दिए गए ठंडे जल से उन सबकी थकान दूर होती है। ब्राह्मणी उनका कुछ आदर सत्कार करती, इससे पूर्व ही उसका पति कपिल ब्राह्मण लकड़ियों का भार सिर पर रखे हुए आता है और रामादि का सत्कार करती ब्राह्मणी को देखकर उस पर बहुत गुस्सा होता है। वह राम आदि का तिरस्कार कर उन्हें घर से निकलने पर बाध्य कर देता है। भाई-भाभी का तिरस्कार सहने में असमर्थ लक्ष्मण जब ब्राह्मण का वध करने को उद्धत होते हैं, तभी राम और सीता उन्हें समझाकर शान्त कर देते हैं।

जब वे तीनो ब्राह्मणी के घर से बाहर निकल कर जंगल की ओर जा रहे थे कि घनघोर वर्षा होने लगती है। उससे बचने के लिए उन्होंने एक वटवृक्ष के नीचे शरण ली। उस वटवृक्ष पर रहनेवाले यक्षराज ने अपने अवधिज्ञान से उन्हें बलभद्र व नारायण जानकर वहाँ अति शोभायमान नगरी की रचना की और उसमें उन्हे ठहराया।

जब वही कपिल ब्राह्मण प्रातः जगल में लकड़ी काटने आता है, तो जंगल के स्थान पर भव्य नगर को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है। फिर अपनी पत्नी सहित नगर की शोभा देखने जाता है। वहाँ नगर में जिनमंदिर के दर्शन

करता है तथा मन्दिर में विराजमान मुनिराज के उपदेशामृत का पान कर उनसे श्रावक के व्रत धारण कर के जब राज दरबार में पहुँचता है, तो वहाँ लक्ष्मण को देखकर भयभीत होकर भागने लगता है। राम द्वारा सान्त्वना मिलने पर वह शान्तचित्त होकर बैठ जाता है और राम की स्तुति करता है। राम उसे अपरिमित धन-धान्य सम्पदा देकर उसकी गरीबी दूर कर देते हैं। अपकार के बदले उपकार का अनुभव कर ब्राह्मण बहुत लज्जित होता है और अन्त में गृहस्थी का भार पत्नी को सौंपकर जिनदीक्षा ले लेता है।

वर्षा ऋतु बीतने पर जब राम उस यक्ष द्वारा निर्मित नगरी से चलने लगे तो यक्ष ने उन्हें रोकने का बहुत प्रयास किया, पर राम को रोकने में वह सफल नहीं हुआ। तब यक्ष ने राम को स्वयंप्रभ नामक अद्भुत हार, लक्ष्मण को दैदीप्यमान मणिकुण्डल तथा सीता को महामांगलिक चूड़ामणि और देवोपनीत वीणा दी। इसके बाद वे वहाँ से चल दिए, तब यक्ष ने भी नगरी समेट ली।

घूमते हुए राम, लक्ष्मण और सीता जब वैजयन्तपुर नगर के पास वाले वन में पहुँचे तो रात्रि हो गई। राम व सीता तो सो गए, पर जंगल से आने वाली सुगन्धि के कारण लक्ष्मण को नींद नहीं आई। उस सुगन्धि से आकर्षित होकर लक्ष्मण उठकर उस ओर चले गये। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें एक सुन्दर कन्या दिखाई दी, जिसे देखकर लक्ष्मण सोचने लगे कि अर्द्धरात्रि में यह कन्या इस भयानक जंगल में अपरिहार्य दुःख से दुःखी होकर आत्मघात करने की इच्छा से ही यहाँ आई होगी अथवा अभीष्ट प्राप्ति के लिए तप करने आई होगी। जो भी हो,मैं इसका पीछा करके देखता हूँ कि यह क्या कर रही है।

इसप्रकार वे उसका पीछा करने लगे। कन्या के रुकने पर लक्ष्मण एक पेड़ के पीछे छिप गए। वह कन्या उसी पेड़ के सामने आकर वोली कि हे वृक्ष! यदि कदाचित् वन में घूमते हुए लक्ष्मण यहाँ आएँ, तो तुम उन्हें मेरी विरहवेदना वतलाना और उनसे कहना कि वैजयन्तपुर की राजकुमारी वनमाला बचपन से ही तुम्हारे गुणों पर आसक्त थी। वह तुमसे विवाह करना चाहती थी। उसके पिता पृथ्वीधर को भी इसमें कुछ एतराज नहीं था, पर जब राजा पृथ्वीधर ने उनके वनगमन की बात सुनी, तब लक्ष्मण के मिलने की उम्मीद छोड़कर उन्होंने वनमाला की सगाई अन्यत्र करदी। वनमाला ने लक्ष्मण के अतिरिक्त अन्य किसी से शादी करने की अपेक्षा मरण उचित समझा। वह पिताजी से व्रत समाप्त करने का वहाना कर फूलों की थाली लेकर जंगल में आई और आत्महत्या करली इतना कहकर वनमाला ज्यों ही गले में फंदा डालने लगी, त्यों ही लक्ष्मण ने सामने आकर उसे इस जघन्य कृत्य से रोका।

अचानक जीवनरक्षक वनकर आए हुए उस व्यक्ति को देखकर पहले तो वनमाला भयभीत हुई, फिर लक्षणों से लक्ष्मण को पहिचानकर वनमाला ने उनके गले में वरमाला डाल दी।

आँखे खुलने पर जव राम ने लक्ष्मण को अपने पास नहीं देखा तो वे व्याकुल हो गए और ऊँचे स्वर में आवाज देने लगे कि हे भाई लक्ष्मण तू कहाँ है?

भाई की आवाज सुनकर लक्ष्मण वनमाला सहित शीघ्र भाई-भाभी के पास आए।

उधर वनमाला को पास में न देखकर उसकी सखियाँ सिपाहियों के साथ वन में उसे ढूंढने आई। वन में लक्ष्मण के साथ राजकुमारी को देखकर प्रसन्नचित्त वे राजा के पास

गई व राजा से कहा कि आपके जामाता लक्ष्मण नगर के पास में ही है। इस सूचना से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें इनाम दिया और वे राम, लक्ष्मण व सीता को आदर सहित नगर में ले आये। जहाँ सभी आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन वे राजा पृथ्वीधर के साथ राजसभा में बैठे थे कि नन्दावर्त का स्वामी, महाप्रबल पराक्रम का धारी राजा अतिवीर्य का दूत आया। उसने अतिवीर्य का पत्र राजा को दिया; जिसमें लिखा था कि मैं अयोध्या के राजा भरत के प्रति सदल-बल आक्रमण कर रहा हूँ; अतः आपके आने की राह देख रहा हूँ।

राम द्वारा भरत व राजा अतिवीर्य के विरोध का कारण पूछने पर दूत ने बताया कि राजा अतिवीर्य ने भरत के पास अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए दूत भेजा था, पर शत्रुघ्न ने दूत का अपमान कर भगा दिया। अतः राजा अतिवीर्य उन पर आक्रमण कर उन्हें अपने आधीन बनाना चाहते हैं।

राम के इशारे पर राजा पृथ्वीधर ने दूत को आने का आश्वासन देकर विदा किया और राजा से विचार-विमर्श के पश्चात् राम पृथ्वीधर के पुत्रों के साथ अतिवीर्य की राजधानी की ओर रवाना हुए।

अतिवीर्य की राजधानी के समीप स्थित मन्दिर में पहुँचकर राम एकान्त में लक्ष्मण से कहते हैं कि शत्रुघ्न ने लड़कपन के कारण अत्यन्त उद्धत होकर अंधेरी रात में अतिवीर्य के सैनिकों पर छापा मार कर बहुत से निद्रामग्न वीरों को मारा हैं, उसके हाथी आदि चुराए है; अतः अतिवीर्य का भड़क उठना स्वाभाविक ही है। अतिवीर्य युद्ध के मैदान में भरत से जीता नहीं जा सकता हैं, फिर भी भरत युद्ध के लिए अयोध्या से निकल आया है और उसने यहीं पास में डेरा

डाल रखा है। अतः हमें भरत की सहायता ऐसे करना चाहिए कि भरत को पता भी नहीं चले कि हम यहाँ हैं, क्योंकि अयोध्या से वनवास के लिए निकले हमें अपने-आपको प्रगट करना उचित नहीं है।

विचार-विमर्श के पश्चात् सीता को वहाँ उपस्थित आर्यिका वरधर्मा के पास छोड़कर नर्तकियों के वेष में वे राजा अतिवीर्य के दरबार में गए। वहाँ उन्होंने अपने अनुपम संगीत व कलापूर्ण नृत्य से सभा को मन्त्रमुग्ध कर वशीभूत कर लिया। रंग जमा हुआ देखकर नर्तकी ने डाट दिखाते हुए कहा कि तूँ भरत के प्रति जो अभियान कर रहा है, वह तेरी मृत्यु का कारण है; अतः यदि जीवित रहना चाहता है तो भरत को प्रणाम कर।

इसप्रकार अपनी निन्दा व भरत की प्रशंसा सुनकर क्रोधित हो अतिर्वीर्य ने नर्तकियों को तलवार से मारना चाहा, जिसे नर्तकी बने लक्ष्मण ने छीन ली और उससे सब राजाओं को भयभीत कर अतिर्वीर्य को जीवित ही पकड़ लिया। यह देखकर सभी राजा सोचने लगे कि जब भरत की नर्तकी इतनी शक्तिशाली है तो फिर स्वयं भरत की शक्ति का तो कहना ही क्या है? अतः उन्होंने चुपचाप भरत की आधीनता स्वीकार करली।

राम-लक्ष्मण बंधनबद्ध अतिवीर्य को सीता के पास ले गए। उसकी दयनीय अवस्था से द्रवीभूत होकर सीता ने उन्हें माफ करने को कहा। लक्ष्मण ने बंधन खोलकर उन्हें पूर्ववत् राज्य करने को कहा, पर अतिवीर्य ने राज्य स्वीकार नहीं किया और उन्होने श्रुतधर मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ले ली।

इसके पश्चात् राम ने अतिवीर्य के पुत्र विजयरथ को राज्य सोंप दिया, विजयरथ ने अपनी छोटी बहिन रत्नमाला का विवाह लक्ष्मण के साथ और बड़ी बहिन विजयसुन्दरी का विवाह राम के साथ किया। इसके बाद कार्य समाप्ति पर राम-लक्ष्मण जिनेन्द्रवंदना कर राजा पृथ्वीधर के पास लौट गए।

जब यह समाचार राजा भरत व शत्रुघ्न को मिला कि नर्तकियों द्वारा पकड़े जाने पर राजा अतिवीर्य विरक्त हो दीक्षित हो गए हैं, तब शत्रुघ्न तो उनकी मजाक उड़ाने लगा, पर भरत ने उन्हें रोका और कहा कि स्त्रियों में इतनी सामर्थ्य कहाँ? जरूर किसी जिनशासन की भक्त देवी ने यह कार्य किया है। वे राजा अतिवीर्य प्रशंसनीय हैं, जो उन नर्तकियों से प्रेरणा पाकर मुक्तिपथ पर बढ़ गए हैं। चलो, उनके दर्शन कर हम अपने आपको कृतार्थ करें।

इसके पश्चात अतिवीर्य मुनि के भक्तिभाव से दर्शन कर वे अयोध्या वापिस आए।

राम-लक्ष्मण ने कुछ दिन तो राजा पृथ्वीधर के यहाँ सुखपूर्वक व्यतीत किए, फिर वे वहाँ से आगे बढ़ने लगे तो वनमाला ने उन्हें रोकने का बहुत प्रयास किया; परन्तु वे उसे समझाकर अर्द्धरात्रि में ही वहाँ से निकल पड़े।

चलते-चलते थकने पर उन्होंने क्षेमांजलि नामक नगर के निकट वन में डेरा डाला। लक्ष्मण राम की आज्ञा पाकर भोजन-पानी की व्यवस्था के लिए नगर के अन्दर गए। नगर में उन्होंने लोगों के मुख से सुना कि यहाँ की राजकुमारी जितपद्मा अतिकठोर है। उसे देवों के दर्शन भी प्रिय नहीं, तो मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? उसके समक्ष तो कोई पुलिंग शव्द का उच्चारण भी नहीं कर सकता। उसके पिता

ने प्रतिज्ञा की है कि जो कोई व्यक्ति मेरी शक्ति की चोट खाकर जीवित रहे, वही मेरी बेटी से ब्याह कर सकता है।

राजकुमारी को देखने की इच्छा से लक्ष्मण राजमहल में गए और अपना परिचय भरत के सेवक के रूप में देते हुए बोले कि मैं तुम्हारी पुत्री को देखने की इच्छा से यहाँ आया हूँ। उसका मान भंग करना चाहता हूँ। अतः तुम एक साथ पांचों शक्तियाँ छोड़ो।

झरोखे में बैठी जितपद्मा लक्ष्मण के रूप पर मोहित हो गई और लक्ष्मण के मरने की आशंका से उसे शक्ति की चोट खाने से इशारे द्वारा मना करने लगी। लक्ष्मण ने इशारे में ही उसे सान्त्वना दी।

राजा ने ज्यों ही लक्ष्मण पर शक्ति चलाई, उन्होंने पहली शक्ति को दायें हाथ में दूसरी को बायें हाथ में, तीसरी को दायीं भुजा में, चौथी को बायीं भुजा में और पाँचवीं को मुख से पकड़ लिया।

यह देखकर नगरवासी आनन्दित हुए। जितपद्मा ने लक्ष्मण के गले में वरमाला डाली। राजा ने जब पाणिग्रहण की चर्चा की तो लक्ष्मण बोले— मेरे भाई-भाभी पास के वन में ही हैं, उनसे अनुमति लेकर ही कुछ कार्य हो सकता है। इतना सुनते ही राजा सेना सहित राम-सीता के पास गए।

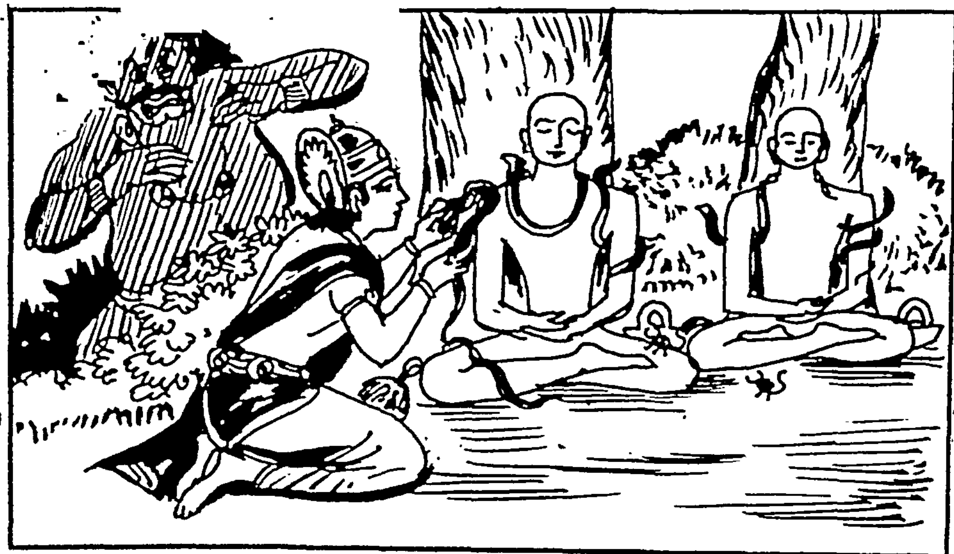
धूल उड़ने व सेना की आवाज सुनकर सीता भयभीत होकर राम से बोली— शायद लक्ष्मण ने कुछ उपद्रव कर दिया है; अतः राजा सेना सहित आ रहा है। तभी नृत्य करती महिलाओं को पास में आती देखकर सीता का डर कुछ कम हुआ।

राम-सीता की अनुमति से जितपद्मा के साथ लक्ष्मण

का विवाह विधिवत सम्पन्न हुआ। कुछ दिन राजा के साथ रहने के पश्चात वे आगे चल पड़े। वे जहाँ भी जाते, उन्हें खान-पान आदि सामग्री सुलभ हो जाती।

आगे चलने पर जब वे वंशधर नामक पर्वत पर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने नगर के लोगों को भयभीत होकर नगर से बाहर जाते देखा। कारण जानने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि कोई दुष्ट देव रात्रि में क्रीड़ा करता है, जिससे नानाप्रकार की भयंकर आवाजें आती हैं। अतः नगरवासी रात्रि में बाहर चले जाते हैं और प्रातःकाल लौट आते हैं। यह सुनकर सीता ने नगरवासियों के साथ ही चलने की इच्छा व्यक्त की, पर कारण जानने के इच्छुक राम वहीं रुके रहे। पर्वत पर चढ़ने पर, उन्होंने दो मुनिराजों को ध्यानमग्न देखा। मुनिराजों को नमस्कार करके पास में बैठे ही थे कि उसी समय भयंकर आवाज करता हुआ असुर वहाँ आया। पलभर में ही मायामयी सर्प, बिच्छु आदि मुनिराजों के शरीर से लिपट गए, जिन्हें राम ने अपने हाथों से हटाए।

यह देखकर क्रोधित हो असुर ने भयानक अग्नि की ज्वाला



छोड़ी, भंयकर जंगली जानवर छोड़े और अनेकों दिल दहलानेवाली क्रियायें करने लगा। इन उपसर्गों से मुनिराज को वचाने के लिए राम ने धनुष चढ़ाया। धनुष चढ़ाने का शव्द सुनकर और अवधिज्ञान से राम-लक्ष्मण को वलभद्र-नारायण जानकर वह असुर अपनी माया समेट कर भाग गया। इसी समय उन दोनों देशभूषण और कुलभूषण मुनिराजों को केवलज्ञान हुआ। चतुरनिकाय के देवों ने आकर केवली को विधिपूर्वक नमस्कार कर धर्मश्रवण किया।

इस धर्मसभा में देशभूषण-कुलभूषण के पूर्वभव के पिता गरुणेन्द्र भी आये थे। उन्होंने रामचन्द्रजी से कहा कि तुमने इनकी असुर से रक्षा की है; अतः मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो इच्छित हो, वह माँग लो। राम वोले—तुम देवों के स्वामी हो, अतः जव कभी हम पर विपत्ति पड़े, तव तुम हमारी सहायता करना। गरुणेन्द्र ने कहा—जव तुम्हें जरूरत पड़ेगी मैं तुम्हारे पास ही रहूँगा।

केवली का उपदेश श्रवणकर अनेक व्यक्तियों ने मुनिव्रत अंगीकार किये, अनेकों ने श्रावक के व्रत लिए और अनेकों ने अपनी शक्ति-अनुसार अन्य प्रतिज्ञाएँ लीं।

केवली के मुख से राम को तद्‌भव मोक्षगामी सुनकर सभी ने राम की जय-जयकार की। वंशस्थल के राजा सूरप्रभ ने उनसे अपने साथ नगर में चलने की प्रार्थना की। जव राम उनके साथ नहीं गए तो उन्होंने वहीं पर्वत पर नगरी वसा दी। जहाँ राम की आज्ञा से जिनेन्द्र देव के हजारों चैत्यालय वने।

इस नगर में सुख से रहने के पश्चात् एक दिन राम लक्ष्मण से वोले कि इस पर्वत पर हमने वहुत समय सुखपूर्वक व्यतीत किया है। अव हमें यहाँ से आगे वढ़ना चाहिए; क्योंकि

राजा की उत्तमोत्तम सेवा के वशीभूत हो यदि हम यहीं पर रहते है तो हमारा संकल्पित कार्य नष्ट होता है। सुनते हैं कि कर्णरवा नदी के उस पार दण्डक वन है, जहाँ भूमिगोचरियों का पहुँचना कठिन है। उस भयानक वन के आस-पास बस्ती भी नहीं है। भरत की आज्ञा का भी वहाँ प्रवेश नहीं है। अतः वहीं कहीं सुन्दर भूमि में अथवा समुद्र के किनारे घर बनाकर माताओं को ले आयेंगे।

इसप्रकार निर्णय कर उन्होंने वंशस्थलपुर के राजा से बिदा ली, पर राजा व नगरवासी उनके साथ ही चल दिए। राम-लक्ष्मण के बहुत समझाने पर मुश्किल से दुःखी मन से वे वापिस लौटे।

दक्षिण समुद्र को देखने के इच्छुक वे अनेकों नगर, ग्राम व देशों को पारकर महाभयानक दंडक वन के समीप स्थित कर्णरवा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने वृक्ष से पके फलादि लेकर खाना तैयार किया। मुनि को आहार देने की इच्छा से वे खड़े हो गए।

कुछ देर पश्चात् वनचर्या की प्रतिज्ञा लिए दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज वहाँ आए। जिन्हें राम-लक्ष्मण और सीता ने यथाविधि आहारदान दिया। मुनियों के आहार ग्रहण के पश्चात् वहाँ पंचाश्चर्य हुए, रत्नों की वर्षा हुई।

तीन ज्ञान के धारी मुनिराजों का आहार देखकर एक गिद्ध पक्षी मुनि के चरणों पर आ गिरा। उनकी चरणरज से पक्षी का शरीर स्वर्ण समान हो गया और चोंच, पैर आदि रत्नों के समान हो गए। राम के द्वारा वहुत हटाये जाने पर भी जब वह नहीं हटा तो उन्होंने मुनिराज से इसका कारण पूछा।

मुनिराज ने कहा कि हमें देखकर इसे अपने पूर्वभव की

याद आ गई हैं; अतः यह हमारे चरणों में आ गया है। मुनिराज ने उस पक्षी को श्रावक के व्रत दिए व विहार कर गए।

सीता उस पक्षी की देखभाल करने लगी। रत्नों की किरणों से सुशोभित जटा देखकर राम ने उसका नाम जटायु रखा। कुछ ही दिनों में जटायु तीनों से बहुत हिल-मिल गया।

धीरे-धीरे घूमते हुए, बीच-बीच में विश्राम करते-करते, वन की सुषमा का अवलोकन करते-करते वे दंडक वन के मध्यभाग में पहुँच गए। वहीं पर एक जगह कुटी बनाकर राम ने लक्ष्मण से कहा कि अब तुम जाओ और माताओं को यहीं ले आओ। नहीं, नहीं; तुम सीता व जटायु के साथ यहीं रहो, मैं ही माताओं के लेकर आऊँगा। अच्छा अभी रहने दो, वर्षा ऋतु के बाद ले आयेंगे; क्योंकि इस ऋतु में नदी में वेग बहुत होता है, पृथ्वी कीचड़ से भरी रहती है, त्रसजीवों की उत्पत्ति भी बहुत होती है; अतः विवेकी इस मौसम में गमन नहीं करते।

इसप्रकार निश्चय कर उन्होंने चार माह वहाँ शांतिपूर्वक बिताये।

ग्यारहवाँ दिन

वर्षा ऋतु व्यतीत हो चुकी थी। मौसम सुहावना था। शीतल मंद पवन चल रही थी। अतः राम की आज्ञा लेकर लक्ष्मण घूमने निकल गए। चलते-चलते मनमोहक सुगंध आई। उनके कदम अपने-आप ही उस अद्भुत सुगंध की दिशा में बढ़ते गए। आगे जाने पर उन्हें बाँसों के झुरमुट में एक तलवार लटकती दिखाई दी। उसमें से ही अद्भुत सुगंध आ रही थी और उसके प्रकाश में बाँस के बीड़े प्रकाशमान हो रहे थे। कौतूहलवश लक्ष्मण ने वह तलवार उठाई और उसकी तीक्ष्णता जानने के लिए उसे बाँस के बीड़े पर चला दी। तेजधार वाली उस खड्ग से बाँस के बीड़े के साथ-साथ उसमें बैठे संबूक के भी दो हिस्से हो गए। तलवार पर लगे खून को देखकर उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ। पर "अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।"

इसकी सूचना राम को देने के लिए वे तलवार को लेकर उनके पास जाने को उद्यत हुए।

संबूक के मरते ही खड्ग के रक्षक हजारों देव लक्ष्मण के हाथ में खड्ग देखकर बोले कि तुम हमारे स्वामी हो।

लक्ष्मण को लौटने में देरी होते देखकर राम चिन्तित हुए और जटायु से बोले कि तुम लक्ष्मण का पता लगाकर लाओ। तभी सीता बोली कि वे तो हाथ में अद्भुत कटार लिए इधर चले आ रहे हैं। पास आने पर उन्होंने राम को प्रारम्भ से अन्त तक के सभी समाचार सुनाए। जिसे सनकर

राम गंभीरतापूर्वक वोले कि तुमसे जो पंचेन्द्रिय मानव का वध हो गया है, उसका तो परिणाम हमें भुगतना ही पड़ेगा और जो तुमने वनस्पतिकाय जीव का वध किया है, उसका भी तुम्हें प्रायश्चित करना चाहिए।

वनस्पती में भी जीव है, उन्हें भी दुःख होता है, उनके छेदन-भेदन करने से न केवल उन्हें दुःख होता है, अपितु उनका मरण भी हो जाता है। उनके दुःखों से अनभिज्ञ हम निर्द्वन्द होकर अपनी क्षणिक जिज्ञासाओं, अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए उन्हें निरन्तर तोड़ते रहते हैं, काटते रहते हैं। यह अच्छी वात नहीं है।

उनके वीच में वातें हो ही रही थीं कि अचानक उन्हें एक स्त्री के रोने की आवाज सुनाई दी। आवाज सुनकर वे तीनों वाहर आए और सीता ने उस स्त्री से रोने का कारण पूछा। वह स्त्री वोली—मेरे माता-पिता नहीं हैं। मैं अनाथ अकेली वन में वहुत दिनों से भटक रही थी। आज मेरे पापकर्म के नाश से आपके दर्शन हुए हैं। मृत्यु मेरा वरण करें, उससे पहले यदि आपमें से कोई मेरा वरण करे तो अच्छा रहेगा।

अपनी उलझनों में उलझे, कुछ देर पहले घटी घटना में खोए वे दोनों भाई चुप रहे। दोनों को उदासीन देखकर वह स्त्री वहाँ से चल दी।

वह सोचती है कि मैं सम्राट दशानन की वहिन महाबलशाली खरदूषण की पत्नी चन्द्रनखा अपने वेटे के दुःख को भूलकर उन्हें अपनाने आई थी, पर उन्होंने मेरा तिरस्कार किया। अव मैं इसका वदला लेकर ही रहूँगी।

चन्द्रनखा के जाने के वाद उसके रूप पर मुग्ध लक्ष्मण सोचते हैं कि अपनी समस्या में उलझे मैंने उस सुन्दरी को व्यर्थ ही ठुकराया। उस मृगनयनी को मैं अव कहाँ खोजूँ?

वह रूपश्री मुझे अब कहाँ मिलेगी? वह कौन थी? इस प्रकार अनेकों विकल्पों में उलझे उस रूपश्री को पाने को व्याकुल लक्ष्मण अन्य कार्य का वहाना कर जंगल में उसे ढूँढ़ने निकल पड़े।

बहुत खोजने पर भी जव उन्हें उस रूपश्री का पता नहीं चला तो उदासीन से वे लौट आए।

राम-लक्ष्मण के इन्कार से अपमानित चन्द्रनखा अतिव्याकुल विलाप करती हुई अपने पति के समक्ष गई।

उसके बिखरे बाल, फटे वस्त्र देखकर खरदूषण ने इस दयनीय अवस्था का कारण पूछा। चन्द्रनखा ने प्रारंभ से घटनाक्रम बताते हुए कहा कि प्रतिदिन की तरह जब मैं अपने पुत्र संबूक के लिए भोजन लेकर पहुँची, तो दूर से मैंने उस बाँस के बीड़े को कटा देखा, जिसके नीचे संबूक ने बारह वर्ष तपस्या करके सूर्यह्लास खड्ग की सिद्धि की थी। पास में जाने पर जब बेटे का सिर भी कटा देखा तो कुछ पल को तो मैं बेहोश हो गई। होश में आने पर जब मैं बेटे की मृत्यु का बदला लेने उस व्यक्ति के पास गई तो उसने मेरे से अनीति विचारी और मेरी यह दुर्दशा कर दी। मैं बहुत मुश्किल से अपनी इज्जत बचाकर आई हूँ।

इतना सुनते ही आग-बबूला हो खरदूषण तुरन्त ही उनसे लड़ने को जाने लगा। तब मन्त्रिगण बोले कि जिसने सूर्यह्लास खड्ग लिया है, वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं होगा। इसलिए वहाँ अकेले जाना उचित नहीं है। अतः दशानन को भी सहायता के लिए सूचना भिजवा देते हैं।

मंत्रियों की सलाह पर खरदूषण ने एक वेगशाली दूत दशानन को सूचना देने के लिए तुरन्त ही भेज दिया। फिर स्वयं विचार करता है कि मेरी उस शूर-वीरता

है, जो अन्य सहायकों की इच्छा करती है। मेरी वह भुजा किस काम की, जो अपनी ही अन्य भुजा की सहायता चाहती है। इसप्रकार अपनी शक्ति के मद में चूर, शत्रु को नगण्य मानता हुआ खरदूषण एकाकी ही आकाशमार्ग से उसे मारने जाने लगे, तो उन्हें युद्ध को तैयार देखकर उनके चौदह हजार मित्र भी उनके साथ चल पड़े।

सेना का शब्द सुनकर राम ने अनुमान लगाया कि लक्ष्मण ने जिसका वध किया है, उसके भाई-बांधव आए होंगे अथवा उस स्त्री ने अपने बांधवों को हमें कष्ट देने के लिए भेजा होगा। कुछ भी हो, पास आए शत्रु की उपेक्षा करना उचित नहीं; अतः वे शत्रु के साथ लड़ने को निकलने लगे। यह देखकर उन्हें रोकते हुए लक्ष्मण बोले कि मेरे रहते आपको कष्ट करने की क्या जरूरत है? यदि मैं विपत्ति में फँसा तो सिंहनाद करूंगा, तब आप मेरी सहायता के लिए आना।

इतना कहकर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित लक्ष्मण युद्ध के लिए निकल पड़े।

आकाश में स्थित विद्याधरों ने वाण, चक्र, भाले आदि विभिन्न अस्त्रो से उन पर वार करना प्रारंभ किया, जिन्हें लक्ष्मण ने अपने वाणो से बीच में ही रोक दिया। इसप्रकार लक्ष्मण व खरदूषण की सेना में घमासान युद्ध होने लगा।

खरदूषण के दूत से सबूकवध का समाचार सुनते ही क्रोधित दशानन शीघ्रता से बहनोई की सहायता के लिए पुष्पक विमान में बैठकर दंडकवन की ओर रवाना हो गए।

दण्डक वन में प्रवेश करते ही दशानन को एक अपूर्व सुन्दरी नजर आई। जिसके रूप को देखकर दशानन के मन में वासना जागृत हो गई और संबूकवध से उपजा क्रोध नष्ट हो गया। वह सोचने लगा कि मेरे आने का किसी को पता

लगे, उससे पहले ही मैं इस सुन्दरी को ले जाऊँ। अतः उसने अवलोकिनी विद्या से उस स्त्री के बारे में पूछा। अवलोकिनी विद्या ने उसका नाम, कुल आदि बताकर कहा कि यह राम की स्त्री है, संबूक का वध करनेवाला राम का भाई लक्ष्मण खरदूषण से लड़ने गया है और राम से कह गया है कि जब मैं सिंहनाद करूं, तब तुम मेरी सहायता के लिए आना।

यह सब जानकारी हासिल करके दशानन सोचता है कि पुत्रशोक से अत्यन्त क्रोधित खरदूषण शत्रुसमूह से भी अजेय हैं, तो फिर यहाँ तो मात्र दो ही व्यक्ति है, जिन्हें वह अपनी शक्ति व शस्त्रों से पलभर में ही मार डालेगा। अतः यहाँ मेरी कुछ विशेष आवश्यकता नहीं है। अब मैं सीता को प्राप्त करने का ही उपाय करता हूँ। फलस्वरूप जब खरदूषण और लक्ष्मण में घमासान युद्ध हो रहा था, तब दशानन ने कृत्रिम सिंहनाद कर हे राम! हे राम!! कहा, जिसे सुनकर व्याकुलचित्त राम सीता को जटायु के संरक्षण में छोड़कर लक्ष्मण की सहायता को गए।

राम के निकलते ही दशानन सीता को उठाकर ले जाने लगा, तब जटायु ने अपने पंखों व पंजों से दशानन पर वार किया। यथेष्ट कार्य में विघ्न देखकर दशानन ने क्रोधित हो उस पक्षी के पंख काट दिए, जिससे वह जमीन पर गिरकर बेहोश हो गया। दशानन पुष्पक विमान में सीता को बैठाकर लंका की ओर बढ़ने लगा।

जटायु को मरणासन्न देखकर और अपने को अपहृत जानकर सीता विलाप करने लगी।

पति में आसक्तचित्त सीता के विलाप को देखकर दश[illegible] कुछ विरक्त सा होकर सोचता है कि जो किसी अन्य में [illegible]

है– ऐसी स्त्री से मुझे क्या प्रयोजन? तो क्या मैं इसे मार डालूँ? नहीं, नहीं; यह भी उचित नहीं कि मैं एक स्त्री की हत्या करूँ। फिर क्या करूँ? इसप्रकार के नाना विकल्प उसे सताते हैं। अन्त में वह सोचता है कि मेरी सम्पदा से प्रभावित यह कुछ ही दिनों में मुझे चाहने लगेगी; अतः मुझे इसकी प्रसन्नता की प्रतीक्षा करना चाहिए।

सीता बार-बार पुकार रही थी – हे भाई भामण्डल! मुझे बचाओ! हे लक्ष्मण तुम कहाँ हो? यह दुष्ट मुझे मेरे पति से दूर ले जा रहा है।



आकाश मार्ग से जाते हुए रत्नजटी विद्याधर ने सीता का यह करुण क्रन्दन सुना और उन्हें अपने स्वामी भामण्डल की बहिन जानकर बचाने का प्रयत्न करने लगा, तब युद्ध से बचने के लिए दशानन ने उसकी विद्या हरली। विद्यारहित रत्नजटी आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा वहीं पर्वत पर फल खाकर जीवन व्यतीत करने लगा।

लक्ष्मण की सहायता के लिए जब राम युद्ध मैदान मे पहुँचे तो आश्चर्यचकित हो लक्ष्मण ने पूँछा कि सीता को अकेली

छोड़कर आप यहाँ क्यों आए? राम ने जब सिंहनाद की बात बताई तो चिन्तित लक्ष्मण बोले कि यह दुश्मन की ही कोई चाल होगी। मैंने कोई सिंहनाद नहीं किया। आप शीघ्र ही भाभी के पास जाइये। इतना सुनते ही अनिष्ट की आशंका से भयभीत राम तुरन्त कुटी पर पहुँचे, परन्तु जो दुर्घटना घटनी थी, वह घट चुकी थी। सीता वहाँ नहीं थी और जटायु मरणासन्न पड़ा था।

राम ने सर्वप्रथम जटायु को णमोकार मंत्र सुनाया। जटायु समाधिमरण कर स्वर्ग में देव हुआ। तदनन्तर राम सीता को खोजने लगे।

दण्डक वन में जब लक्ष्मण व खरदूषण का युद्ध चल रहा था, तब खरदूषण से बदला लेने का इच्छुक विराधित योग्य वीर साथी की तलाश में घूमता हुआ वहाँ आ गया। जब उसने सेना सहित खरदूषण से लक्ष्मण को अकेले मुकाबला करते देखा तो वह लक्ष्मण को कोई नरोत्तम जानकर तथा खरदूषण से बदला लेने का उत्तम मौका समझकर अपनी सेना सहित लक्ष्मण के पास गया तथा लक्ष्मण से कहा कि आप खरदूषण को सम्हालो, मैं सेना को देखता हूँ।

विराधित की सहायता से लक्ष्मण ने कुछ देर में ही खरदूषण को मारकर युद्ध जीत लिया और उसकी पाताल लंका का राज्य विराधित को दिया।

युद्ध समाप्ति पर जब लक्ष्मण कुटी पर पहुँचे तो राम को शोकमग्न देखा व सीता कहीं दिखाई नहीं दी। लक्ष्मण के पूँछने पर जब राम सीता के हरण व जटायु की मृत्यु का समाचार सुना ही रहे थे कि अचानक सेना का शब्द सुनकर राम अत्यधिक चिन्तित हुए। लक्ष्मण ने उन्हें बताया कि यह शत्रु सेना नहीं, अपितु राजा चन्द्रोदर के पुत्र विराधित की

सेना का शब्द है। युद्ध में इसने वहुत सहयोग किया है, जिससे मैंने शीघ्र ही शत्रु पर विजय हासिल की है। अब यह आपसे मिलने के लिए सदल-वल आ रहा है।

कुशलक्षेम की चर्चा के उपरांत लक्ष्मण ने विराधित से कहा कि मेरे वड़े भाई की पत्नी सीता को किसी दुष्ट ने छल से हर लिया है। अतः यदि उसके वियोग में राम ने प्राण छोड़ दिए तो मैं निश्चय ही अग्नि में प्रवेश करूँगा। अतः इस विषय में तुम्हीं कोई उपाय करो।

विराधित ने तत्क्षण ही अपने अनुचर विद्याधरों को सीता की खोज में दौड़ाए पर सभी निराश लौट आए।

सीता के आस-पास न मिलने पर विराधित ने राम, लक्ष्मण को सलाह दी कि अव आप मेरे साथ पाताल लंका चलें, वहीं से हम सीता की खोज जारी रखेंगे। यहाँ अधिक देर रहना उचित नहीं है; क्योंकि खरदूषण की मृत्यु का समाचार सुनकर उसके परम मित्र किष्किंधाधिपति सुग्रीव, इन्द्रजीत, भानुकर्ण हनुमान जो कि उसका जवाँई भी हैं आदि परमवीर हम पर वार करेंगे। दण्डक पर्वत के गुफाद्वार के नीचे स्थित सुन्दर नगर अलंकारोदय (पाताल लंका) में आकाश में गमन करने वाले विद्याधर ही जा सकते है। विद्या से रहित मनुष्यों के लिए यह अत्यन्त दुर्गम है। शत्रु का प्रवेश उसमें सहज साध्य नहीं है; अतः हमें वहाँ चलकर सुरक्षित होकर ही सीता की खोज करना चाहिए।

राम-लक्ष्मण को भी यही उचित प्रतीत हुआ। अतः वे सभी पाताल लंका की ओर वढ़े। उन्हें आता देख कर खरदूषण का छोटा वेटा अपनी माँ के साथ अपने मामा दशानन के पास गया।

दशानन ने लंका में आकर सीता को पटरानी बनाने का प्रलोभन दिया; मायामयी सर्प, बिच्छु आदि भयानक जानवरों से डराया। इसप्रकार अनेक कष्ट देते हुए उसने साम-दाम-दंड-भेद सभी नीतियाँ अपनाई, पर सीता न तो भयभीत होकर दशानन की शरण में गई, न ही धन-दौलत का प्रलोभन ही उसे डिगा सका। नारी का हृदय प्रेम से जीता जाता है, ताकत से नहीं। बंधनों में रखकर कोई उसे अपना नहीं बना सकता।

दशानन की कैद में रहते हुए सीता ने प्रतिज्ञा की कि जबतक पति की कुशलता के समाचार नहीं मिलते, तबतक मेरे आहार-जल का त्याग है।

जब दशानन अपने महल में लौटे तो उन्हें खरदूषण की मृत्यु के समाचार मिले। अपनी रोती-बिलखती बहिन को धैर्य बँधाते हुए उन्होंने कहा कि मैं इसका बदला शीघ्र ही लूँगा। और वे अपने शयनकक्ष में जाकर विचारमग्न हो गए।

दशानन को उदास देखकर मन्दोदरी ने कहा कि कभी किसी के मरने पर मैंने आपको इतना शोकाकुल नहीं देखा, पर आज खरदूषण की मृत्यु की खबर से आप इतने उदासीन क्यों हैं, बेचैन क्यों हैं; क्या आप खरदूषण को मारनेवालों की शक्ति से चिन्तित हैं?

दशानन ने कहा—नहीं, मैं भूमिगोचरियों से डरा नहीं हूँ; अपितु आज मेरी बेचैनी का कारण दूसरा ही है। यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहती हो तो, तुम्हारे लिए मेरे प्रति क्रोध करना उचित नहीं है; क्योंकि प्राण ही सब वस्तुओं में मूल कारण है। अतः यदि तुम मेरे सहयोग की प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हें अपने दुःख का कारण बताऊँ।

इसप्रकार अपनी मीठी-मीठी वातों से मंदोदरी को पहले से ही प्रतिज्ञावद्ध करके अपने अनुकूल आचरण पर विवश कर दशानन ने कुछ हिचकिचाहट से धीरे-धीरे कहा कि मैं अपूर्व सुन्दरी सीता से विवाह करना चाहता हूँ, पर ....

मंदोदरी ने बीच में ही वात काटकर कहा कि इसमें चिन्ता की क्या वात है? वह नहीं मानती है तो जवरदस्ती विवाह करलो। इस पर दशानन ने कहा कि मैं ऐसा नहीं कर सकता; क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा ली हुई है कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी, मैं उससे जवरदस्ती विवाह नहीं करूँगा, पर उस स्त्रीरत्न के विना मैं जीवित नहीं रह सकता। अतः तुम ही मेरे जीवन का कुछ उपाय करो।

यह सुनकर पति की परमहितैषी मन्दोदरी अन्य १८ हजार रानियों के साथ सीता के पास जाकर समझाने का प्रयास करती है; उसे पति के अनुकूल करने का प्रयत्न करती है, पर सीता उन्हें समझाते हुए कहती है कि पतिव्रता स्त्रियों के लिए ऐसी वातें शोभा नहीं देती। तुम मुझे मारो या काटो पर मैं अपने पति के सिवा अन्य किसी को अपने मन में भी नहीं ला सकती।

इसप्रकार सीता से दो टूक जवाव पाकर निराश रानियाँ राजमहल में लौट आई।

दूसरे दिन खरदूषण के निधन से शोकाकुल विभीषण जव दशानन से मिलने आए तो उन्हें स्त्रीरुदन की आवाजें सुनाई दीं। वे उस दिशा में वढ़ते गए और उस स्त्री से उसके रोने का कारण पूँछा।

विभीषण को अपना हितैषी समझकर सीता ने उन्हें अपने हरण की कहानी सुनाई तथा उनसे अपने पति के पास भेजने की प्रार्थना की।

सीता को सान्त्वना देकर विभीषण दशानन के पास गए और उन्हें समझाकर कहने लगे कि भाई आप स्वयं ही तो कहते थे कि पर-स्त्री की अभिलाषा अनुचित है, घृणित है; फिर आज वही कार्य आपने कैसे किया? आप स्वयं समझदार हैं, मैं विशेष क्या कहूँ? आप इस पर-स्त्री को उसके पति के पास ही भेज दीजिए; क्योंकि यह तो आप जानते ही हैं कि मदमस्त स्वच्छंद विचरण करनेवाला कामांध वनगज मानव के बंधन में बंधकर दुःख सहता है, हिरण भी राग के लोभ में शिकारी के जाल में फँसकर दुःख सहता है, पर इनमें हमें कोई आश्चर्य नहीं होता; क्योंकि उनकी यह दशा उनके अज्ञान के कारण होती है, बुद्धिहीनता के कारण होती है। किन्तु आप तो समझदार हैं, बुद्धिमान हैं; फिर क्यों वासना के हाथों कठपुतली बने हुए, इस अनुचित कार्य को करते हुए नहीं हिचकिचा रहे हैं?

पर कामांध दशानन को कुछ होश नहीं था, उसका विवेक नष्ट हो चुका था। अतः उसके सारे तर्क अपनी वासना की तृप्ति में ही समाप्त होते थे, वह विभीषण से बोला—पृथ्वी पर जो भी सुन्दर वस्तुएँ हैं, मैं उनका स्वामी हूँ, सब मेरी ही वस्तुएँ हैं; तब वह परवस्तु कहाँ से हुई?

भाई दशानन की यह दशा देखकर विभीषण सब मंत्रियों से सलाह करते हैं। तब एक मंत्री ने कहा कि हमें बिना किसी विलम्ब के लंका को महाभयानक यंत्रों द्वारा दुर्गम बना देना चाहिए। दुर्ग के दुर्गम हो जाने से किसी को पता ही नहीं चलेगा कि सीता को किसने हरा है? सीता के बिना राम निश्चित ही प्राण छोड़ देंगे। उनके वियोग में दुःखी लक्ष्मण विराधित आदि की क्षुद्र सहायता से हमारा कुछ नहीं कर सकेगा।

इस दुर्ग की बाहरी रक्षा का भार सुग्रीवादि वानरवंशी राजाओं को सौंपना चाहिए; ताकि वे बाहर रहकर अन्तर का भेद नहीं जान पाएँ और कार्य सौंपे जाने से वे यह भी समझें कि स्वामी हम पर प्रसन्न हैं। आजकल सुग्रीव वैसे भी कष्ट में है; क्योंकि कोई विद्याधर उसका रूप बनाकर उसके राज्य में बैठ गया है। उसके इस दुःख को सिर्फ दशानन ही दूर कर सकते हैं। अतः सुग्रीव अधिक तत्परता से दुर्ग की रक्षा करेगा।

इसप्रकार निश्चयकर सभी मन्त्री अपने-अपने घर चले गए और विभीषण ने सुरक्षा के उपाय की व्यवस्था की।

बारहवाँ दिन

राजा सुग्रीव अपनी पत्नी के विरह से दुःखी व राज्य से वंचित होकर अपने राज्य व स्त्री की पुनः प्राप्ति के लिए खरदूषण से सहायता लेने जा रहे थे कि रास्ते में दण्डकवन में उन्होंने अनेक शव देखे। कारण जानने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यहाँ पर खरदूषण व लक्ष्मण का युद्ध हुआ था, जिसमें विराधित की सहायता से लक्ष्मण ने खरदूषण को मार दिया है। लक्ष्मण के बड़े भाई की पत्नी का किसी ने हरण कर लिया है; अतः अब वे पाताललंका में रहकर उसकी खोज कर रहे हैं।

खरदूषण की मृत्यु के समाचार से सुग्रीव अत्यन्त दुःखी हुआ; क्योंकि खरदूषण के अतिरिक्त और कौन उसके दुःख को दूर करने में समर्थ हो सकता है? सुग्रीव सोचता है कि दशानन यद्यपि महाबलवान, दैदीप्यमान और महाविद्याओं में निपुण है, पर कदाचित् दोनों में भेद न कर पाने से क्रोधावेश में दोनों को ही मार डालेगा तो अनर्थ हो जायगा। अतः अब मुझे उसी की शरण में जाना चाहिए, जिसने महाबलशाली खरदूषण को युद्ध में मारा हैं, जिसकी पत्नी का हरण हुआ है। राम को भी स्त्री का विरह हुआ है, मैं भी स्त्री के विरह से दुःखी हूँ। अतः एक समान दुःख होने से इस समय उनके पास जाना ही योग्य है; क्योंकि इस जगत में समान अवस्था वाले मनुष्य परस्पर प्रीति धारण करते हैं।

इसप्रकार निश्चय कर विराधित को अपने अनुकूल करने के लिए सुग्रीव ने उसके पास अपना दूत भेजा।

सुग्रीव का दूत आया है—यह सुनकर विराधित आश्चर्यचकित रह गया। वह मन में विचार करता है कि सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है, फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है।

राम, लक्ष्मण के द्वारा पूछे जाने पर कि किसका दूत है, क्यों आया है? विराधित ने संक्षेप में बताया कि यह महाबलशाली वानरवंशियों के स्वामी सुग्रीव का दूत है, इसके अंग, अंगद नामक पुत्र व सुतारा नामक पत्नी है, जिसके रूप पर मुग्ध किसी विद्याधर ने सुग्रीव का रूप बनाकर उसके राज्य पर कब्जा कर लिया, पर वह सुतारा को अभी नहीं पा सका है; क्योंकि कुछ विशेष चिन्हों से सुतारा नकली सुग्रीव को पहिचान गई। पर वह अपने पति असली सुग्रीव का साथ भी नहीं पा सकी है; क्योंकि मंत्रियों ने रानी के महल पर कड़ा पहरा बैठा दिया है ताकि दोनों में से कोई भी रानी के पास न जा सके। सुग्रीव का अंग नामक पुत्र पिता के भ्रम से कृत्रिम सुग्रीव के साथ है व अंगद नामक पुत्र माँ के वचनों पर विश्वास करके असली सुग्रीव के साथ है। मंत्रीगण भी अत्यन्त सदृशता के कारण संदेहशील हैं; परन्तु सुतारा के कहने से इन्हें ही असली सुग्रीव मानकर इनके साथ हैं। इसप्रकार सुग्रीव की आधी सेना व राज्य तो नकली सुग्रीव के साथ है और आधी असली के। नगर के दक्षिण भाग में नकली सुग्रीव को रखा गया है और उत्तर भाग में असली सुग्रीव को। संशय होने के कारण सुग्रीव के बड़े भाई वालि के पुत्र चन्द्ररश्मि ने प्रतिज्ञा की है कि — इन दोनों में से जो भी सुतारा के भवन के पास जाएगा, वह मेरी तलवार द्वारा मारा जाएगा।

इस विषय में इनके जँवाई हनुमान भी इनकी कुछ सहायता नहीं कर सके हैं। खरदूषण युद्ध में मारा गया है, अतः अब यह आपकी शरण में आए हैं।

पूरा घटनाक्रम सुनकर राम ने विचार किया कि यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है, क्योंकि इसे तो इसका शत्रु इसके सामने ही कष्ट दे रहा है। इसका कार्य अधिक कठिन है। इस समय अगर में इसकी सहायता करूँ तो बाद में यह मेरी सहायता करेगा और कदाचित् सहायता में समर्थ न हुआ तो मैं निर्ग्रन्थ मुनि होकर मोक्ष का साधन करूँगा। यह निश्चय कर राम ने सुग्रीव से कहा कि मैं तुम्हें तुम्हारा राज्य व स्त्री दिलवा दूँगा, पर बाद में तुम मुझे सीता की खोज में सहायता करना।

इतना सुनते ही गद्-गद् सुग्रीव बोले—मेरा काम होने के सात दिन के अन्दर ही में सीता का पता लगाकर दूँगा, यदि पता न लगा पाया तो अग्नि में प्रवेश करूँगा।

विराधित की सेना व राम, लक्ष्मण के साथ किष्किंधापुर पहुँचने पर असली सुग्रीव ने नकली सुग्रीव के पास दूत भेजा। नकली सुग्रीव ने उसका तिरस्कार किया और स्वयं सेना सहित असली सुग्रीव से लड़ने आ गया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। अंत में नकली सुग्रीव ने असली पर गदा का वार किया, जिससे असली सुग्रीव बेहोश होकर गिर पड़ा, नकली सुग्रीव उसे मरा समझकर प्रसन्नतापूर्वक नगर में चला गया।

असली सुग्रीव को उसके पक्ष के लोग उठा ले लाए। होश में आने पर उसने राम से पूछा कि आपने हाथ में आए शत्रु को क्यों छोड़ा? इस पर राम बोले कि लड़ते हुए दूर से तुम दोनों का एक-सा रूप देखकर मुझे संदेह हो गया। अतः मैंने सोचा कि कहीं भ्रम में मुझसे तुम्हारा ही वध

न हो जाए। अतः आज मैंने शत्रु को मारना उचित नहीं समझा।



दूसरे दिन राम ने नकली सुग्रीव को युद्ध के लिए ललकारा और असली सुग्रीव को लक्ष्मण ने कसकर पकड़ लिया, ताकि वह गुस्से मे आकर नकली सुग्रीव से लड़ने न चला जाए। जब राम नकली सुग्रीव को ललकारते हुए उसके सामने आए तो नकली सुग्रीव की रूपपरिवर्तिनी वैताली विद्या भाग गई। वैताली विद्या के चले जाने पर साहसगति विद्याधर अपने असली रूप मे आ गया, जिसे देखकर सभी का भ्रम भंग हो गया और सभी वानरवशी सोचने लगे कि अरे! यह तो वही विद्याधर है जो कि विवाह से पहले से ही सुतारा के रूप पर मुग्ध था। इसने सुतारा के पिता के पास विवाह का प्रस्ताव भी भेजा था। सुतारा के पिता को भी इसमें कोई एतराज न था। पर जब निमित्तज्ञानी ने इसे अल्पायु बताया तो सुतारा के पिता ने उसका विवाह सुग्रीव से कर दिया, सो उचित ही है; क्योंकि अल्पायु पुरुष को कौन माता-पिता अपनी कन्या देना चाहेंगे?

पर यह कौन जानता था कि सुतारा को पाने की चाहत में अंधा हुआ साहसगति उसके विवाह होने पर भी इसप्रकार की अनुचित चेष्टा भी कर सकता है? इसीलिए तो कहा गया है कि कामांध व्यक्ति क्या-क्या नहीं करता?

साहसगति के इस असली रूप को देखकर सभी वानरवंशी सेना एक हो गई और राम ने युद्ध में साहसगति को मारकर सुग्रीव का राज्य व पत्नी उसे दिलाकर अपना वचन पूरा किया।

सुग्रीव ने अपनी तेरह पुत्रियों का विवाह राम से किया। इन पुत्रियों ने राम के मन को बहलाने का बहुत प्रयास किया, पर सीता के विरह से आकुलचित्त राम को वे प्रसन्न न कर सकीं। उन्होंने एक-एक दिन गिनकर काटा, पर सुग्रीव की तरफ से सीता की खोज के कुछ समाचार नहीं मिले। राम सोचते हैं कि सुग्रीव तो राज्य व पत्नी प्राप्त कर आमोद-प्रमोद में मस्त हो गया। उसे न तो अपने वचन की याद है, न ही हमारे दुःख की।

सीता की याद में भाई को अत्यन्त दुःखी देखकर लक्ष्मण क्रोधित होकर सुग्रीव के महल में गए और बोले — तू अपना वचन भूल गया है, अब मैं तुझे भी तेरे शत्रु के पास पहुँचा देता हूँ।

यह सुनते ही सुग्रीव को अपने वचन की याद आई और उन्होंने लक्ष्मण से माफी माँगी। उन्होंने तुरन्त अपने सैनिकों व गुप्तचरों को चारों दिशाओं में खोज के लिए भेजा। भामण्डल को भी इसकी सूचना भेजी। एवं स्वयं भी आकाशमार्ग से सीता को ढूढँते हुए जब वे महेन्द्रपर्वत पर पहुँचे तो वहाँ अत्यन्त भयभीत दयनीय अवस्था में पड़े हुए रत्नजटी को देखा। रत्नजटी सोचता है कि लंकाधिपति दशानन ने ही इसे

मुझे मारने को भेजा है। अतः मृत्युभय से वह अपने आपको छिपाने का प्रयास करने लगा।

सुग्रीव ने उसके पास जाकर अत्यन्त करुणा से पूँछा कि तुम तो पहले विद्याओं से युक्त थे, अब ऐसी दशा कैसे हो गई तुम्हारी ? तुम इतने डरे हुए क्यों हो? इसप्रकार वारंवार पूँछने पर धीरे-धीरे रत्नजटी ने डरते हुए कहा कि मेरा अपराध क्षमा हो। पर आप ही बताइए कि अपने स्वामी की बहिन को कष्ट में देखकर कौन सेवक चुप रह सकता है? मैने भामंडल की बहिन सीता को बचाने का प्रयास कर अपने कर्तव्य का पालन किया है। अब आपको जो सजा देनी हो दीजिए।

यह सुनकर सुग्रीव ने उसे धैर्य बँधाया और कहा कि तुम सजा के नहीं पुरस्कार के पात्र हो। हम तो सीता को खोज-खोज कर थक गए, पर उसका कहीं पता न चला, तुम जल्दी से बताओ कि उसे किस दुष्ट ने हरा है?

इसप्रकार सुग्रीव के अनुकूल वचन सुनकर रत्नजटी ने सीताहरण व अपनी विद्याहरण की पूरी कहानी सुनाई। सुग्रीव उसे अपने साथ लेकर राम के पास गए और राम को बताया कि भरतक्षेत्र के तीन खण्डों के अद्वितीय स्वामी, कैलाशपर्वत को उठानेवाले, समुद्रान्त पृथ्वी जिसके पास है, सुर-असुर मिलकर भी जिसे जीतने में समर्थ नहीं हैं, विद्वानों में श्रेष्ठ, धर्म-अधर्म के विवेक से युक्त दशानन ने मोहवश सीता का हरण किया है।

राम ने उससे प्रसन्न होकर उसका राज्य उसे दिलवाया। तथा अन्य विद्याधर राजाओं से पूछा कि लंका कितनी दूर है?

राम का प्रश्न सुनकर सभी विद्याधर नीचा मुख कर मौन बैठे रहे। उनका अभिप्राय जानकर राम ने उनसे कहा कि हम जानते हैं कि तुम दशानन से डर कर चुप हो।

तब विद्याधरों में से एक ने कहा कि जिसके नाम को सुनकर हम कांपते हैं, उसकी बात हम कैसे करें? कहाँ हम अल्पशक्ति के धारक और कहाँ वह त्रिखंडी लंकाधिपति? अतः अब आपको हठ छोड देना चाहिए और यही मानकर संतोष करना चाहिए कि जो हो गया सो हो गया।

राम के अति आग्रह पर उन्होंने लंका के बारे में बताते हुए कहा कि यह नगर त्रिकूटाचलपर्वत के शिखर पर है। इसके चारों तरफ खाई है। यह अति सुन्दर स्वर्णमयी नगरी है। वहाँ के घर विमान के समान हैं। जहाँ लंकाधिपति अपने परिवारजनों के साथ रहता है। उसके दो भाई हैं- विभीषण और भानुकर्ण। विभीषण बुद्धि में देवों को भी जीतने वाला है और त्रिशूल का धारक भानुकर्ण की टेढ़ी भौंह युद्ध में देव भी नहीं सह सकते हैं, तो मनुष्यों की तो बात ही छोड़ो। उसके इन्द्रजीत व मेघनाद नामक महाबलशाली दो पुत्र हैं। उसके छत्र को देखकर सभी का गर्व खंडित हो जाता है। उसके चित्र देखने अथवा नाम सुनने से ही शत्रु भयभीत हो जाते हैं तो उससे युद्ध की बात कौन सोचे? अतः यह बात करना ही व्यर्थ है, कोई अन्य बात करो। विद्याधरों की कन्याओं से विवाह कर सुखपूर्वक राज्य करो।

यह सुनकर लक्ष्मण बोले— जब वह इतना बलवान था तो एक स्त्री को चुराकर क्यों ले गया?

राम बोले—इस विषय में अधिक कहने से क्या? अब जबकि सीता का पता चल गया है तब तुम कहते [illegible] उसे भूल जाओ, दूसरी बात करो। हमें तो सीता [illegible]

और कुछ नहीं चाहिए, सीता को लाना ही एक प्रयोजन है। तुम हमारी सहायता करो और शीघ्र सीता को छुड़वाओ।

जब राम किसी भी तरह नहीं माने तो जांबुनद मंत्री बोले—एकबार अनन्तवीर्य केवली से दशानन ने अपनी मृत्यु का कारण पूँछा था। तब उन्होंने बताया था कि जो कोटिशिला को उठाएगा उसके द्वारा ही तेरी मृत्यु होगी।

इतना सुनते लक्ष्मण बोले— चलो मैं अभी कोटिशिला को उठाता हूँ। सभी विद्याधर राजा अपने-अपने विमान में बैठकर रात्रि में ही कोटिशिला की ओर चल दिये।

कोटिशिला के पास पहुँचकर लक्ष्मण सहित सभी राजाओं ने उस शिला से मुक्त हुए सिद्ध जीवों को स्मरण कर नमस्कार किया, फिर तीन प्रदक्षिणा दी। अन्त में लक्ष्मण ने घुटनों तक कोटिशिला को उठाया। आकाश में देवों ने जय-जयकार किया।

इसके पश्चात सभी ने सम्मेदशिखर, कैलाशगिरि आदि सभी क्षेत्रो की वंदना की ओर फिर किष्किंधापुर लौट आए।

किष्किंधापुर लौटकर राजाओ व मन्त्रिगणों में तरह-तरह की चर्चायें होने लगी। कोटिशिला के उठाने से अधिकांश राजा राम का साथ देने को तैयार हो गये; क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया था कि निस्सन्देह अब दशानन लक्ष्मण के हाथों मारा जायगा, पर कुछ राजा अभी भी संदिग्ध थे; क्योंकि दशानन भी कम शक्तिशाली नहीं था। उसने भी कैलाशपर्वत उठाया था। भरतक्षेत्र के तीन खंड मे उसका निष्कंटक राज्य है, जबकि राम-लक्ष्मण तो गृहनिष्कासित वनवासी हैं; अतः अद्‌भुत कार्यों को करनेवाले दशानन से युद्ध को वे उचित नहीं समझते थे। राम मे विश्वासी राजा भी युद्ध नहीं चाहते थे; अतः विचार-विमर्श करते हुए उन्होंने मध्यममार्ग निकाला कि हमें

युद्ध से क्या प्रयोजन? सीता को ही वापिस बुला लेते हैं। इसप्रकार निश्चय कर वे सभी राम की आज्ञा हेतु जब राम के पास पहुँचे तो क्रोधित राम बोले– तुम लोगों द्वारा अब किसकी प्रतीक्षा की जा रही है? आलस्य को छोड़कर त्रिकूटाचल पर चलने की तैयारी क्यों नही की जा रही है? उधर सीता मेरे बिना दुःखी हो रही होगी।

यह सुनकर नीतिनिपुण वृद्ध मंत्री बोले—हे राजन् ! आप सीता को चाहते हैं या राक्षसों के साथ युद्ध। यदि युद्ध चाहते हैं तो विजय कठिनाई से प्राप्त होगी; क्योंकि राक्षसों का और आपका युद्ध बराबरी वालों का युद्ध नहीं है। दशानन भरतक्षेत्र के तीन खण्ड का शत्रुरहित अद्वितीय सम्राट है। धातकीखण्ड नामक दूसरा द्वीप भी उससे शंकित रहता है, वे ज्योतिषी देवों को भी भय उत्पन्न करनेवाले हैं। अद्‌भुत कार्यों को करनेवाले, जम्बूद्वीप में परम महिमा को प्राप्त विद्याधरों के अद्वितीय स्वामी दशानन को आप कैसे जीत सकते हैं? अतः हमें युद्ध की भावना छोड़कर शांति का प्रयास करना चाहिए। यह संभव भी है, क्योंकि दशानन स्वयं न्याय-नीति के वेत्ता हैं, उनके भाई विभीषण भी दुष्टतापूर्ण कार्यों से दूर रहते हैं, अणुव्रतों का दृढ़ता से पालन करते हैं। दशानन भी वही करते है, जो विभीषण कहते हैं। उन दोनों में निर्बाध परम प्रेम है। यदि वे उसे समझावेंगे तो उदारता से अथवा अपयश के भय से अथवा लोकलाज के वशीभूत हो, दशानन सीता को भेज देंगे। अतः शीघ्र ही ऐसे किसी व्यक्ति को इस कार्य में नियुक्त किया जाए, जो कि नीतिनिपुण, वाग्पटु व दशानन को प्रसन्न करनेवाला हो।

यह प्रस्ताव सुनकर महोदधि नामक विद्याधरों के राजा बोले कि क्या आप लोगों ने यह नहीं सुना है कि स्वयं अनेक

प्रकार के भयकर यन्त्रों से जन-सामान्य के लिए अगम्य कर दी गई है। लंका में प्रवेश की बात तो दूर उसे देखना भी कठिन है। चारों तरफ खाइयों से युक्त उस लंका में प्रवेश करके शीघ्र लौट सके—ऐसा विद्याधर यहाँ कोई नहीं है। पर राजा सुग्रीव का जँवाई और राजा पवनंजय का पुत्र हनुमान अवश्य वहाँ जा सकता है। महाबलवान उस पवनपुत्र के दशानन से मित्रतापूर्ण संबंध भी हैं। अतः दशानन उनकी बात नहीं टालेंगे। इसलिए उन्हें ही दूत बनाकर भेजना उचित रहेगा।

इसके बाद श्रीभूत नामक दूत हनुमानजी को बुलाने के लिए आकाशमार्ग से हनुमानजी के पास गया। ●

तेरहवाँ दिन

हनुमान राजसभा में शोकमग्न बैठे थे। युद्ध में श्वसुर खरदूषण की मृत्यु के समाचार से वे दुःखी थे। तभी द्वारपाल ने लक्ष्मण द्वारा भेजे गए दूत के आने की सूचना दी। अपने श्वसुर के हत्यारे लक्ष्मण के दूत की सूचना पाकर हनुमान बहुत क्रोधित हुए और उसका संदेश सुने बिना ही उसे वापिस भेजने लगे। तभी मंत्रियों ने उन्हें बताया कि लक्ष्मण के भाई राम ने आपकी दूसरी पत्नी के पिता सुग्रीव का दुःख दूर किया है। उन्होंने नकली सुग्रीव को मारकर असली सुग्रीव को उसका राज्य वापिस दिलाया है, जिसकी सहायता करने में आप भी असमर्थ थे।

सम्पूर्ण घटनाक्रम सुनकर हनुमान शांत हुए और सेना सहित परोपकारी राम से मिलने गए।

राम ने हनुमान का सम्मान किया, हनुमान भी राम से विनयपूर्वक मिले और उनसे बोले कि आपने हमारे ऊपर बहुत उपकार किया है। विद्यावल की विधि के जाननेवाले हम लोग भी जिसे पहचान नहीं सके थे, उस सुग्रीव रूपधारी साहसगति को युद्ध में मारकर आपने वानरवंश का कलंक दूर किया है। अतः अब आपकी जो आज्ञा हो सो हम करने को तैयार हैं।

तब जांबूनद मंत्री बोले कि तुम राम के दूत बनकर शीघ्र ही लंका जाओ और वहाँ किसी से विरोध नहीं करना।

प्रकार के भयंकर यन्त्रों से जन-सामान्य के लिए अगम्य कर दी गई है। लंका में प्रवेश की बात तो दूर उसे देखना भी कठिन है। चारों तरफ खाइयों से युक्त उस लंका में प्रवेश करके शीघ्र लौट सके—ऐसा विद्याधर यहाँ कोई नहीं है। पर राजा सुग्रीव का जँवाई और राजा पवनंजय का पुत्र हनुमान अवश्य वहाँ जा सकता है। महाबलवान उस पवनपुत्र के दशानन से मित्रतापूर्ण संबंध भी हैं। अतः दशानन उनकी बात नहीं टालेंगे। इसलिए उन्हें ही दूत बनाकर भेजना उचित रहेगा।

इसके बाद श्रीभूत नामक दूत हनुमानजी को बुलाने के लिए आकाशमार्ग से हनुमानजी के पास गया। ●

तेरहवाँ दिन

हनुमान राजसभा में शोकमग्न बैठे थे। युद्ध में श्वसुर खरदूषण की मृत्यु के समाचार से वे दुःखी थे। तभी द्वारपाल ने लक्ष्मण द्वारा भेजे गए दूत के आने की सूचना दी। अपने श्वसुर के हत्यारे लक्ष्मण के दूत की सूचना पाकर हनुमान बहुत क्रोधित हुए और उसका संदेश सुने बिना ही उसे वापिस भेजने लगे। तभी मंत्रियों ने उन्हें बताया कि लक्ष्मण के भाई राम ने आपकी दूसरी पत्नी के पिता सुग्रीव का दुःख दूर किया है। उन्होंने नकली सुग्रीव को मारकर असली सुग्रीव को उसका राज्य वापिस दिलाया है, जिसकी सहायता करने में आप भी असमर्थ थे।

सम्पूर्ण घटनाक्रम सुनकर हनुमान शांत हुए और सेना सहित परोपकारी राम से मिलने गए।

राम ने हनुमान का सम्मान किया, हनुमान भी राम से विनयपूर्वक मिले और उनसे बोले कि आपने हमारे ऊपर बहुत उपकार किया है। विद्याबल की विधि के जाननेवाले हम लोग भी जिसे पहचान नहीं सके थे, उस सुग्रीव रूपधारी साहसगति को युद्ध में मारकर आपने वानरवंश का कलंक दूर किया है। अतः अब आपकी जो आज्ञा हो सो हम करने को तैयार हैं।

तब जाम्बूनद मंत्री बोले कि तुम राम के दूत बनकर शीघ्र ही लंका जाओ और वहाँ किसी से विग्रह नहीं करना।

यह सुनकर हनुमान जाने की आज्ञा मांगते हुए बोले कि मैं जाकर दशानन को समझाऊँगा। वह बुद्धिमान है। अतः शीघ्र समझ जायगा और मैं आपकी पत्नी को वापिस ले आऊँगा।

हनुमान को जाने में तत्पर देखकर राम ने सीता को संदेश भेजा। मनुष्यदेह अतिदुर्लभ है, उसमें भी जिनधर्म का मिलना दुर्लभ है, उसमें भी समाधिमरण अतिदुर्लभ है। अतः तुम धर्म को मत त्यागना। तुम मेरे वियोग से दुःखी होकर यद्यपि जीवन त्यागना चाहती होगी, पर खोटे परिणामों से मरना व्यर्थ है, अतः जीवन का त्याग करना उचित नहीं। इतना कहकर सीता के विश्वास हेतु उन्होंने अपने नाम से मुद्रित मुद्रिका हनुमान को दी तथा सीता का चूढ़ामणि साथ लाने को कहा।

इसप्रकार राम से विदा लेकर हनुमान सेना सहित लंका की ओर चल दिए।

लंका जाते हुए रास्ते में महेन्द्रनगर को देखकर हनुमान को अपने जन्म की कहानी याद आ गई। वे विचारने लगे कि मेरे नाना ने मेरी माँ .को गर्भावस्था में घर से निकाल दिया था। अतः मुझे अब इनका गर्व दूर करना चाहिए और उन्होंने युद्ध का नगाड़ा बजा दिया।

युद्धभेरी सुनकर सर्वप्रथम राजा महेन्द्र का पुत्र सेना सहित युद्ध के मैदान में आया। दोनों ओर की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ, अन्त में हनुमान ने महेन्द्र के पुत्र को बांध लिया, तब राजा महेन्द्र क्रोधित होकर आयुधों के समूहों से प्रहार करने लगे, पर हनुमान ने विद्या के प्रभाव से उन्हें बीच में ही रोक दिया और उछल कर राजा महेन्द्र को भी पकड़ लिया।

चिन्हों से हनुमान को अपनी बेटी का पुत्र जानने पर राजा महेन्द्र उससे अतिप्रेम के साथ मिले। हनुमान ने भी अपनी इस उद्दण्डता की माफी मांगी और अपने लंकागमन का कारण बताया। तब राजा महेन्द्र तो किष्किंधापुर की ओर बढ़े व हनुमान लंका की ओर।

रास्तें में जाते हुए अचानक हनुमान ने देखा कि दो मुनिराज ध्यानमग्न हैं और उनके चारों ओर वन में आग लगी है। तब मुनिराज के इस उपसर्ग को दूर करने के लिए हनुमान समुद्र से पानी लाकर मूसलाधार वर्षा की तरह बरसाने लगे, जिससे अग्नि बुझ गई।

हनुमान मुनिराज को नमस्कार कर ही रहे थे कि तीन कन्याओं ने भी आकर महाराज को प्रणाम किया। जिन्हें देखकर हनुमान आश्चर्यचकित रह गए और उन्होंने उन कन्याओं से पूँछा कि इस भयानक वन में तुम इस समय क्या कर रहीं थी? तब उनमें से सबसे बड़ी बहिन बोली कि इस दधिमुख वन के पास में स्थित दधिमुख नामक नगर के राजा गन्धर्व



की हम तीनों बेटियाँ हैं। हमारे विवाह के लिए चिन्तित हमारे पिता ने एकबार अष्टांग निमित्त के वेत्ता मुनिराज से पूछा कि मेरी पुत्रियों का वर कौन होगा? तब उन्होंने बताया कि जो साहसगति विद्याधर को युद्ध में मारेगा वही इनका पति होगा। अतः हम अपने वर को देखने की इच्छा से मनोनुगामिनी विद्या की सिद्धि कर रही थीं। तभी हमारे साथ विवाह का इच्छुक विद्याधर कुमार अंगारक ने क्रोधित होकर वन में आग लगा दी, पर हम लोग उससे विचलित नहीं हुईं और जो विद्या छह वर्ष कुछ दिन में सिद्ध होनी थी, उपसर्ग के कारण वह बारह दिन में ही सिद्ध हो गई। आज यदि आप सहायता न करते तो हमारे साथ-साथ मुनिराज भी इस अग्नि में भस्म हो जाते।

हनुमान ने उनकी दृढ़ता की प्रशंसा की तथा बताया कि इस समय साहसगति को युद्ध में मारनेवाले श्रीराम किष्किंधापुर में विराजमान हैं और मैं उन्ही के किसी विशिष्ट कार्य के लिए लंका जा रहा हूँ।

हनुमान द्वारा राम का पता मिलने पर राजा गन्धर्व अपनी बेटियों और अनुचरों के साथ शीघ्र ही किष्किंधापुर पहुँच गए और राम के साथ अपनी पुत्रियों का विधिवत् विवाह किया।

इसप्रकार यद्यपि राम को समस्त सुख सामग्री उपलब्ध थीं, पर सीता के बिना उनका मन नहीं लगता था। वे उसकी सुरक्षा न कर सके। अतः उनका हृदय उन्हें हमेशा कचोटता रहता था।

आकाशमार्ग में चलते-चलते अचानक हनुमान की सेना रुक गई तो हनुमान ने मंत्री से पूँछा कि क्या बात है? क्या पर्वत शिखर पर जिनमंदिर हैं या कोई मुनिराज ध्यानमग्न

हैं? पृथु मंत्री ने कहा कि हे राजन् ! दोनों मे से कुछ भी नहीं है, अपितु यह तो दशानन द्वारा रचित मायामयी यंत्र हैं। अनेकप्रकार के मुखों से युक्त, सबको भक्षण करनेवाला दैदीप्यमान यह मायामयी कोट, देवों द्वारा भी दुर्गम्य है। यह कोट भंयकर पुतलियों से युक्त है। इसमें फण फैलाए हुए सर्प फुंकार रहे हैं। जलते हुए अंगारों से युक्त इस कोट के पास जो मनुष्य जाता है, वह जीवित लौटकर नहीं आता।

इसे देखकर हनुमान मन में विचार करते हैं कि अब दशानन में पहले की तरह सरलता नहीं रही है। अब मुझे अपनी विद्या के बल से ही इसमें प्रवेश करना होगा।

इसके पश्चात् हनुमान ने अपनी सेना को स्तम्भिनी विद्या से आकाश में ही खड़ा कर दिया और स्वयं अपनी विद्या के बल पर विद्यामई वक्तर पहिनकर , हाथ में गदा लेकर उस मायामयी यंत्र की ओर बढ़े। कोट के पास पहुँच कर उस पर हनुमान ने गदा से प्रहार किया। फलस्वरूप भंयकर आवाज करते हुए कोट टूट गया। कोटभंग की आवाज सुनकर कोट का रक्षक बज्रमुख सेना सहित आया और हनुमान से युद्ध करने लगा। पर कुछ देर में ही हनुमान ने उसे मार दिया। तब उसकी बेटी क्रोधित होकर हनुमान पर वाण आदि आयुधों से आक्रमण करने लगी। जिन्हें हनुमान ने अपने वाणों से बीच में ही रोक दिया। पर वे बज्रमुख की बेटी लंकासुन्दरी के द्वारा फैंके गए प्रेमवाण से बच न सके। वे दोनों ही एक दूसरे के रूप पर मुग्ध हो गए थे। अतः युद्ध बंद कर दोनों ने विवाह कर लिया।

हनुमान ने स्वयं व सेना के लिए स्तम्भिनी विद्या से आकाश में ही नगर बसाया और लंकासुन्दरी को सेना के पास छोड़कर वे ज्यों ही लंका की ओर प्रस्थान करने लगे कि

लंकासुन्दरी ने सावधान करते हुए कहा कि कोटभंग करने से आपकी व दशानन की पुरानी मित्रता समाप्त हो गई है। अब आपका प्रवेश लंका में एक अपराधी के रूप में होगा और दशानन आप पर क्रोध करेंगे। अतः जब उनका मन शांत हो, वे प्रसन्न हों, तभी आप उनसे मिलना।

जवाब देते हुए हनुमान बोले—हे विदुषी! तुमने जैसा कहा है, मैं वैसा ही करूँगा। मैं दशानन का अभिप्राय जानना चाहता हूँ। साथ ही यह भी देखना चाहता हूँ कि वह सीता कैसी रूपवती है, जिसने कि धीर-वीर दशानन का मन भी विचलित कर दिया है।

इसप्रकार लंकासुन्दरी को अपने वचनों से आश्वस्त कर हनुमान ने निःशंक होकर लंका में प्रवेश किया।

हनुमान लंका में सर्वप्रथम विभीषण से मिलने गए। विभीषण ने उनका यथायोग्य सम्मान किया। फिर सीता की चर्चा चलने पर हनुमान बोले कि तीन खण्ड के अधिपति को परस्त्री की चोरी करना क्या उचित है? राजा तो सभी मर्यादाओं का मूल होता है। यदि राजा ही अनाचार में लीन हो तो प्रजा भी अनाचार करने लगती है। फिर दोनों लोकों में निन्दनीय, कीर्ति को नष्ट करनेवाले इस जघन्य कार्य से आप भाई को रोकते क्यों नहीं हैं?

यह सुनकर विभीषण बोले कि मैंने भाई को कई बार समझाया है, पर वे इस प्रकरण में किसी की कुछ नहीं सुन रहे हैं। मुझसे तो उन्होंने बात करना भी छोड़ दिया है। फिर भी आपके कहने से मैं एकबार फिर प्रयास करूँगा।

विभीषण से सीता का पता पूछँकर हनुमान सीता से मिलने के लिए प्रमद नामक उद्यान में गए। एकदम सीता

के सामने जाना उचित नहीं है; अतः वे छिपकर उसे देखने लगे।

सीता यद्यपि मौन थी, रुदन नहीं कर रही थी; पर दर्द की रेखा उनके मुखारविन्द पर वैसे ही झलक रही थी जैसे कि अरविन्द पर जलकण।

हनुमान मन में विचारते हैं कि दुःखरूपी सागर में निमग्न होने पर भी श्रृंगाररहित इसके रूप की तुलना में अन्य स्त्रियाँ कुछ भी नहीं हैं। यही कारण है कि दशानन जैसा धीर व्यक्ति भी सबकुछ भूलकर इसमें उलझ कर रह गया है। सीता के दुःख को शीघ्र दूर करने की इच्छा से हनुमान रूप बदल कर सीता के नजदीक गए व राम द्वारा दी गई अंगूठी सीता की गोद में डाल दी, जिसे देखकर सीता रोमांचित हो गई, उनके मुखपर मुस्कान आ गई।

सीता को प्रसन्नचित्त देखकर पास बैठी दासियों ने दौड़कर दशानन को इसकी सूचना दी। दशानन ने उन्हें वस्त्र व रत्न दान में दिए और सभी रानियों सहित मन्दोदरी को सीता के पास भेजा।

मन्दोदरी ने सीता के पास आकर कहा कि आज तू प्रसन्न हुई है, अब तू जगत्पति दशानन को स्वीकार कर।

यह सुनकर सीता क्रोधित होकर बोली कि आज मेरे पति की कुशलता के समाचार आए हैं; अतः मुझे प्रसन्नता हुई है।

मन्दोदरी मन में सोचती है कि ग्यारह दिन से भूखी है; अतः अर्द्धविक्षिप्तावस्था में यह ऐसा कह रही है।

मन्दोदरी आदि रानियों के अविश्वासपूर्ण उपहासास्पद चेहरों को देखकर उन्हें विश्वास दिलाने के लिये सीता ने ऊँचे

स्वर में कहा कि जो अंगूठी लेकर आया है, वह मेरे भाई के समान है। अतः अब वह मेरा परमबन्धु मेरे सामने आए। यह सुनकर हनुमान विनय सहित सीता के सामने आए और नमस्कार कर राम के कुशलता के समाचार सुनाए, जिन्हें सुनकर यद्यपि सीता को प्रसन्नता हुई, किन्तु अभी भी उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। वे सोच रही थीं कि कहीं यह दशानन की ही तो कोई चाल नहीं है। अतः उन्होंने हनुमान से कहा कि प्राणनाथ तुम्हें कहाँ व कैसे मिले? तुम्हारी उनसे मित्रता क्यों हुई? उन्होंने तुम्हारा कौन-सा उपकार किया कि तुम अपने प्राणों की परवाह न करते हुए यहाँ मेरे समीप आए हो? लक्ष्मण कुशल से तो हैं? कहीं ऐसा तो नहीं की लक्ष्मण के युद्ध में मारे जाने पर प्राणनाथ ने भी प्राण त्याग दिए हों अथवा कहीं वे विरक्त होकर सकल परिग्रह का त्याग कर वन में तो नहीं चले गए अथवा मेरे वियोग में शरीर शिथिल हो गया हो और अंगूठी गिर पड़ी हो, जिसे लेकर तुम मेरे पास आए हो?

इन प्रश्नों को सुनकर सीता के संशयग्रस्त मन को विश्वास दिलाने के लिए हनुमान से सूर्यह्रास खड्ग की प्राप्ति आदि के वृत्तान्त सुनाने के पश्चात् कहा कि जब तुम्हारे पति राम सिंहनाद सुनकर लक्ष्मण के पास गए तो लक्ष्मण ने उन्हें तुरन्त वापिस भेज दिया और विराधित की सहायता से खरदूषण को युद्ध में मार कर पाताललंका चले गये और वहीं से तुम्हारी खोज करने लगे। तभी तुम्हारे पति के पास मेरे श्वसुर सहायता के लिए गए, क्योंकि कोई विद्याधर उनका रूप बनाकर उनके राज्य पर कब्जा किए हुए था। तुम्हारे पति श्रीराम ने उस साहसगति विद्याधर को मारकर मेरे श्वसुर के कुल को कलंकित होने से बचा लिया। इस उपकार से उपकृत हम सब तुम्हारे पति की सहायता के लिए कटिबद्ध हैं। अतः मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक

छुड़वाने के लिए आया हूँ। लंकाधिपति दयालु हैं, विनयी है, धीर हैं, हृदय से कोमल हैं, सत्यव्रत का पालन करने वाले हैं। अतः निश्चित ही मेरा कहना मानकर तुम्हें छोड़ देंगे।

यह सब सुनकर आश्वस्त हुई सीता ने पूँछा कि ऐसे धैर्य, रूप, विनय व पराक्रम से युक्त तुम्हारे समान और कितने वीर प्राणनाथ के साथ हैं?

हनुमान कुछ बोलते उससे पहले ही मन्दोदरी ने कहा कि तूँ इसे पहिचानती नहीं है। यह तो भरतक्षेत्र में अपने जैसा स्वयं एक ही है। यह लंकाधिपति का भानजा जँवाई है, युद्ध में कईबार इसने उनकी सहायता की है, पर बड़ा आश्चर्य है कि आज यह अपने श्वसुर खरदूषण के हत्यारे भूमिगोचरियों का दूत बनकर आया है।

प्रत्युत्तर देते हुए हनुमान बोले— तुम भी तो राजा मय की पुत्री और दशानन की पटरानी होकर यहाँ दूती बनकर आई हो और इस अकार्य में पति की अनुमोदना कर रही हो।

यह सुनकर क्रोधित मन्दोदरी ने कहा कि यदि मेरे पति को पता चलेगा कि तुम रामदूत बनकर आए हो, तो वह तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार करेंगे, जो किसी के साथ नहीं किया। सुग्रीवादि की तो मृत्यु पास आई है, इसीलिए वे भूमिगोचरियों के सेवक हो गए हैं।

अपने पति की निन्दा सहने में असमर्थ सीता बोली— मन्दोदरी! तू मन्दबुद्धि है। मेरे पति तो अद्‌भुत पराक्रम के धनी हैं। वे थोड़े दिन में ही समुद्र तैरकर आयेंगे और तू थोड़े ही दिनों में अपने पति को मरा हुआ

सीता के कहे अपशब्द सुनकर सभी रानियाँ क्रोधित होकर सीता को मारने दौड़ीं। हनुमान ने सीता का बचाव किया, तो सभी रानियाँ अपने पति दशानन के पास गईं।

हनुमान ने सीता से भोजन ग्रहण करने को कहा। प्रतिज्ञा की पूर्ति होने से सीता ने भोजन ग्रहण किया। तदनन्तर हनुमान बोले— हे माते! आप मेरे कंधे पर चढ़ो। मैं आपको क्षणमात्र में आपके पति के पास पहुँचा दूँगा।

सीता ने कहा कि पति की आज्ञा बिना मेरा जाना उचित नहीं है। यदि उन्होंने पूँछा कि तूँ बिना बुलाए क्यों आई? तब मैं क्या उत्तर दूँगी? अब तुम जाओ और उनसे मेरी कुशलता के समाचार कहना। प्रमाणस्वरूप मेरा यह चूढ़ामणि उन्हें दे देना।

हनुमान भूमिगोचरियों का दूत बनकर आया है, और उसने मन्दोदरी का अपमान भी किया है। यह सुनकर दशानन ने अपने सिपाहियों को हनुमान को मारने का आदेश दिया।

सिपाहियों ने हनुमान पर आक्रमण किया। उस समय हनुमान शस्त्ररहित थे, अतः वे अपनी सुरक्षा के लिए पेड़ उखाड़-उखाड़ कर युद्ध करने लगे, जिससे महल गिर पड़े, हजारों सुभट मारे गए। यह देखकर मेघवाहन और इन्द्रजीत सेना सहित आए। बहुत देर तक युद्ध करने के पश्चात् इन्द्रजीत ने हनुमान को नागपास में जकड़ लिया और उसे पिता दशानन के पास ले गए।

हनुमान को देखकर दशानन बोले कि तुम अनेक बार यहाँ आए हो और सबके द्वारा पूज्य रहे हो। पर इस बार राजद्रोही बनकर आए हो, अतः दण्ड के योग्य हो।

हनुमान बोले—तुम तो अपने कुल को डुबानेवाले हो। परस्त्री की तृष्णा से शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करोगे। किसी ने उचित ही कहा है – "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।"

क्रोधित दशानन ने आदेश दिया कि इसे नगर में घुमाओ और तरह-तरह के कष्ट दो।

सेवक हनुमान को लंका नगर की ओर ले चले। थोड़ी देर बाद हनुमान ने बंधन छुड़ा लिए तथा नगर के महल आदि को पैरों की चोट से गिराते हुए अपनी सेना के पास चले गए।

इसप्रकार लंका को तहस-नहस कर हनुमान किष्किंधापुर लौट आए और सुग्रीव को सभी समाचार सुनाए। सुग्रीव के साथ वे राम के पास गए। हनुमान ने राम को सीता की कुशलता के समाचार सुनाने के पश्चात् सीता द्वारा दिया हुआ चूड़ामणि राम को दिया। राम ने सभी समाचार सुनने के पश्चात् लंका प्रयाण का विचार बनाया; जिसे सुनकर सिंहनाद नामक विद्याधर ने कहा कि आप तो चतुर हैं, महाप्रवीण हैं, फिर अभी युद्ध के लिए प्रयाण की बात आप कैसे सोचते हैं? हनुमान ने लकां में जाकर जो उपद्रव किए हैं, उससे दशानन को हमारे प्रति वैसे ही क्रोध उत्पन्न हो गया है। सो अब अपनी मृत्यु तो आई ही समझो। वैसे हम तो आपके साथ हैं; पर ऐसा कार्य करना चाहिए, जिसमें सबका हित हो।

इसका जवाब देते हुए चन्द्रमारीचि विद्याधर बोला कि तुम व्यर्थ ही डर रहे हो। हमारे साथ हनुमान, सुग्रीवादि बड़े-बड़े विद्याधर राजा हैं और फिर हम नीति के साथ हैं, हमें अनीति अन्याय का विरोध करना ही च

इसके बाद राम-लक्ष्मण समस्त विद्याधर राजाओं के साथ आकाशमार्ग से लंका की ओर चल पड़े और लंका के निकट स्थित हंसपुर नामक नगर में डेरा डालकर भामण्डल के आने का इन्तजार करने लगे।

गुणों को अवगुणों में परिणत होते पल भी नहीं लगता। पता नहीं कब, कौन-सी घटना अपने जीवन के सभी गुणों को अवगुणों में बदल दे। जिसतरह एक मछली सारे तालाब को गंदा कर सकती है, उसीप्रकार एक अवगुण सारे गुणों पर पानी फेर देता है।

परस्त्री से विवाह की इच्छा ही दशानन का ऐसा अवगुण था, जो कि उसके समस्त गुणों पर धूल की तरह छा गया।

दशानन के दयादि गुणों में अनुरक्त सुग्रीवादि की श्रद्धा अब दशानन में नहीं थी। वे अनीति का साथ देने को तैयार नहीं थे, अतः वे सभी राम को उनकी पत्नी दिलाने के लिए दशानन के विरुद्ध राम का साथ देने को तैयार हो गए।

o

चौदहवाँ दिन

दशानन को युद्ध अभीष्ट नहीं था, पर पास आई शत्रु सेना की अवहेलना भी उचित नहीं थी। अतः वे भी युद्ध की तैयारी करने लगे।

भाई को युद्ध के लिए उद्यत देखकर विभीषण उन्हें समझाते हुए बोले कि परस्त्री के कारण आपकी निर्मलकीर्ति पलभर में नष्ट हो जाएगी। अतः आप राम को सीता सौंप दो। इसमें कोई दोष भी नहीं है। इसप्रकार के अनेक तर्कों द्वारा विभीषण ने दशानन को समझाने का भरसक प्रयास किया।

विभीषण की बात सुनकर दशानन मन में विचार करते हैं कि इस समय शत्रु के उपस्थित होने पर मेरा सहोदर, मेरा दायां हाथ ही मेरा साथ नहीं दे रहा है; उल्टे मुझे समझा रहा है। यह मेरा छोटा भाई, जिसने हर युद्ध में मेरा साथ दिया, आज मुझसे ऊँची आवाज में बात कर रहा है। यदि अब मैंने इसे न रोका तो यह प्रजा भी भड़क सकती है। मेरे बेटे व भाई भानुकर्ण भी गुमराह हो सकते हैं। हनुमान सबसे पहले इसी के पास गया था। इसी ने उसे सीता का पता बताया था, तब मैं चुप रहा। अतः अब इसकी हिम्मत बढ़ गई है, आज इसे दंडित नहीं किया गया तो सारी प्रजा भी मेरे विरोध में हो सकती है, सेना भी भड़क सकती है। इसे ऐसा दंड देना चाहिए कि सबको शिक्षा मिले और फिर कोई मेरे विरुद्ध बात करने की हिम्मत न कर सके, सिर न उठा सके।

इसप्रकार निर्णय कर दशानन ने विभीषण से कहा— मैं अर्द्धचक्री दशानन, जिसने शत्रु को झुकाना सीखा है, शत्रु के समक्ष झुकना नहीं; उसे तूँ झुकने की सलाह दे रहा है। तूँ मेरा भाई नहीं, दुश्मन है। जा मेरी आँखों के सामने से दूर हो जा। उसी के साथ रह, जिसका कि तू बनकर आया है।

स्वाभिमानी विभीषण अपनी तीस अक्षौहिणी सेना सहित तुरन्त लंका से निकलकर राम के पास पहुँचे। दूर से विभीषण को आता देखकर पहले तो वानरवंशियों की सेना काँपी, फिर कुछ सँम्हलकर सभी योद्धाओं ने हथियार उठा लिए। फिर विभीषण के भेजे गए दूत के शांति वचन सुनकर वे निश्चिंत हो गए। तभी एक मंत्री ने राम को सलाह दी कि हो सकता है यह दशानन की ही कोई चाल हो; क्योंकि राजाओं की चेष्टा विचित्र होती है। बाद में गुप्तचरों द्वारा यह जानकारी मिलने पर कि जिस दिन से दशानन ने सीता हरी है, तभी से उन दोनों भाइयों में मतभेद हो गया था, जो कि अभी चरम सीमा पर पहुँच कर विभीषण के निष्कासन का कारण वना है। हनुमान द्वारा भी विभीषण के पक्ष में बोलने पर राम ने उन्हें अपनी सेना में शामिल कर लिया और उन्हें लंकाधिपति बनाने का आश्वासन दिया।

इसप्रकार आठ दिन हंसनगर में रहकर उन्होंने लंका की ओर प्रयाण किया।

लंका के समीप पहुँचने पर उन्होंने रणभेरी बजाई। लंका से युद्ध के लिए सर्वप्रथम हस्त, प्रहस्त निकले। तदनन्तर इन्द्रजीत, मेघनाद, भानुकर्ण, दशानन आदि योद्धा अपनी-अपनी सवारी पर आए।

दोनों सेनाओं में भयानक युद्ध हुआ। जिसमें अनेक योद्धाओं के साथ-साथ नल व नील द्वारा हस्त-प्रहस्त वीरगति

को प्राप्त हुए। हस्त-प्रहस्त के दिवंगत होने पर दूसरे दिन दशानन की सेना ने क्रोधित होकर द्विगुणित उत्साह से युद्ध किया। फलस्वरूप इन्द्रजीत ने सुग्रीव को, मेघनाद ने भामंडल को नागपास में और भानुकर्ण ने हनुमान को भुजाओं में बाँध लिया।

यह देखकर विभीषण ने राम-लक्ष्मण से उन्हें बचाने का अनुरोध किया। अभी इनमें बातचीत चल ही रही थी कि अंगद ने भानुकर्ण का उत्तरासन हटा दिया, लज्जावश जबतक वह अपने वस्त्र संभालने लगा तबतक हनुमान उनके बंधन से निकल गए। सुग्रीव व भामंडल को बचाने विभीषण आगे बढ़े। विभीषण को देखकर इन्द्रजीत और मेघनाद मन में सोचते हैं कि ये हमारे पिता के समान हैं। इन पर हथियार उठाना उचित नहीं। काका के सामने भागने में दोष भी नहीं है। भामंडल और सुग्रीव तो मर ही जायेंगे। अतः काका का सामना नहीं करना चाहिए। इसलिए वे दोनों लौट गए। इसप्रकार आज का युद्ध यहीं बंद हो गया।

भामण्डल व सुग्रीव को बेहोश देखकर राम ने गरुणेन्द्र को याद किया। अवधिज्ञान से राम-लक्ष्मण की परेशानी जानकर गरुणेन्द्र ने चिंतावेग नामक विद्याधर को दो विद्याएँ देकर भेजा। जिसने आकर राम को सिंहवाहिनी और लक्ष्मण को गरुडवाहिनी विद्या दी। साथ ही साथ जलवाण, अग्निवाण, पवनवाण आदि अनेक दिव्यास्त्र भी दिए।

लक्ष्मण ने गरुड़वाहिनी विद्या से भामण्डल व सुग्रीव को नागपास से मुक्त कराया। फिर सबने मिलकर जिनेन्द्र वंदना की।

अगले दिन जब राक्षसवंशियों की सेना ने वानरों की सेना को भयभीत कर दिया, तब विभीषण वानरवंशियों को धैर्य

बंधाते हुए युद्ध को उद्यमी हुए। दशानन ने जब अपने सामने विभीषण को देखा तो बोले कि तुम मेरे छोटे भाई हो, मारने के योग्य नहीं हों, इसलिए मेरे सामने से दूर हो जाओ। इस पर विभीषण ने दशानन से कहा कि तू मोह से उन्मत्त है, तेरी मृत्यु नजदीक है, इसप्रकार के अपशब्द सुनते ही दशानन को क्रोध भड़का उठा और उन्होंने विभीषण पर वार कर दिया। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ने एक-दूसरे के रथ, छत्र, ध्वजा आदि तोड़ डाले।

इसीप्रकार राम भानुकर्ण से, लक्ष्मण इन्द्रजीत से परस्पर युद्ध करने लगे।

इन्द्रजीत ने लक्ष्मण पर तामस वाण चलाया। लक्ष्मण ने सूर्यवाण से उसका निराकरण किया। फिर इन्द्रजीत ने आशीर्विष नामक नागवाण चलाया, जिसका निराकरण लक्ष्मण ने गरुणवाण से किया। लक्ष्मण ने इन्द्रजीत पर नागवाण चलाया, जिससे वह बेहोश हो गया। राम ने भी भानुकर्ण को बेहोश कर दिया। दोनों को बाँधकर रथ में डालकर उन्हें विराधित व भामण्डल को सौंप दिया।

इसी समय दशानन ने विभीषण पर त्रिशूल चलाया, जिसे लक्ष्मण ने बीच में ही रोक दिया। अतः क्रोधित होकर दशानन ने लक्ष्मण पर अमोघक्षेपा शक्ति चलाई, जिससे लक्ष्मण बेहोश हो गए। यह देखकर राम ने अनेक प्रकार के अस्त्र चलाये, पर दशानन पर उनका कोई असर न देखकर वह दशानन से बोले कि तू दीर्घायु लगता है, तेरी अभी कुछ दिन आयु शेष है; इसीलिए मेरे वाण निष्फल हो रहे हैं। अब मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि युद्ध में मेरे जिस भाई को तूने शक्ति से घायल किया है, वह मरणोन्मुख है। अतः यदि तूँ अनुमति दे तो मैं उसका मुख देख लूँ।

राम के इस अनुरोध को दशानन ने तुरन्त मान लिया; क्योंकि वह किसी की प्रार्थना ठुकरा नहीं सकता था, वह इस नियम का पालन करता था कि युद्ध में कायरों, भगोड़ो घायलों, आयुधरहितों पर आक्रमण नही करना चाहिए। न ही वृद्ध, यति, स्त्री, तपस्वी, पागल, पशु, पक्षी, दीन, मूर्छित, रोग से ग्रसित और शरणागत को मारना चाहिए। अतः राम की प्रार्थना स्वीकार कर वे युद्धभूमि से अपने महल में लौट आए। महल में उन्हें इन्द्रजीत व भानुकर्ण के पकड़े जाने के समाचार मिले। जिससे उन्हें अत्यधिक दुःख हुआ।



राम ने लक्ष्मण के मरने पर स्वयं भी लक्ष्मण के साथ अग्नि में प्रवेश करने का संकल्प किया। अतः सुग्रीवादिक राजाओं को बुलाकर उन्होंने कहा कि मुझे लक्ष्मण के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब मुझे सीता से भी प्रयोजन नहीं। आप लोगों ने मेरी बहुत सहायता की है, अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ।

जांबुनद उन्हें समझाते हुए कहने लगे कि आप महा धीर-वीर है। आपको इसप्रकार से विलाप करना उचित नहीं

है। आपके भाई नारायण हैं, वे मर नहीं सकते। अभी वे शक्ति लगने से बेहोश हो गए है। अतः हमें शक्ति को निकालने का उपाय करना चाहिए, क्योंकि सूर्य उदित होने पर उनके जीने में संशय हो जाएगा। अभी किसी भी व्यक्ति को उनका स्पर्श नहीं करने दिया जाए, अन्यथा शक्ति घातक सिद्ध होगी। अतः प्रमुख व्यक्तियों को सुरक्षा की दृष्टि से लक्ष्मण के चारों तरफ बैठा दिया। सब सतर्क होकर लक्ष्मण की सुरक्षा कर ही रहे थे कि भामण्डल ने एक अजनबी को आते देखा। उससे पूछताछ करने पर पता चला कि वह राम के दर्शन का अभिलाषी है और लक्ष्मण के जीने का उपाय भी वह बता सकता है। अतः भामण्डल उस व्यक्ति को तत्काल राम के पास ले गए।

राम को अपना परिचय देते हुए उसने कहा कि मैं देवगीत नगर के राजा का पुत्र हूँ। मैं एक दिन आकाश से जा रहा था कि सहस्रविजय नामक राजकुमार से मेरा युद्ध हुआ। उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्ति मारी, जिससे बेहोश होकर मैं अयोध्या के महेन्द्र नामक उद्यान में गिर पड़ा। दूर से उद्यान में मेरा गिरता देखकर राजा भरत वहाँ आए। उन्होंने मुझे चन्दन के जल से लेप किया, जिससे शक्ति निकल गई व मेरा पहले जैसा रूप हो गया। इसप्रकार भरत ने मुझे नया जन्म दिया। राजा भरत से चन्दन के उस जल की उत्पत्ति के बारे में पूछने पर उन्होंने बताया कि कुछ समय पूर्व हमारा देश अनेक रोगों से ग्रसित हो गया था। किसी भी उपाय से कोई भी बीमारी दूर नहीं होती थी। पर राजा द्रोणमेघ प्रजा सहित निरोग था। तब मैंने (भरत ने) उन्हें बुलवाया और निरोग होने का उपाय करने को कहा। राजा द्रोणमेघ ने सुगन्धित जल से मुझे व इस नगर को सींचा, जिससे सभी प्रजा स्वस्थ हुई।

सुगन्धित जल की उत्पत्ति पूछने पर राजा द्रोणमेघ ने बताया कि मेरी विशल्या नाम की पुत्री जब गर्भ में आयी थी, तभी अनेक व्याधियों से युक्त मेरे देश की समस्त व्याधियाँ दूर हो गई और अभी भी उसके स्नान के जल से हर किसी के रोग, घाव दूर हो जाते हैं। उसकी शरीर की सुगन्धि से ही यह जल अत्यधिक सुगन्धित है। यह सुगन्धित जल क्षणभर में समस्त रोगों का नाश करता है। भरत ने राजा द्रोण से कहा कि अवश्य ही यह उसकी पूर्वभव की किसी तपस्या का फल है।

लक्ष्मण की शक्ति के दूर होने का उपाय मिलने पर राम ने हनुमान, भामण्डल और अगंद को अयोध्या भेजा। विमान द्वारा वे पलक झपकते ही अयोध्या पहुँच गए। वहाँ जाकर उन्होंने भरत को जगाया और सीताहरण व लक्ष्मण की बेहोशी का कारण बताया। जिसे सुनकर भरत को शोक के साथ-साथ अत्यन्त क्रोध भी आया। अतः उन्होंने रणभेरी बजवा दी।

अर्द्धरात्रि में रणभेरी सुनकर अयोध्यावासी चौंक गए, फिर शत्रुसेना को समीप आया समझकर युद्ध के लिए तैयार होकर महल में आने लगे।

हनुमान आदि ने भरत को समझाया कि लंका यहाँ से बहुत दूर है, बीच में समुद्र भी है। अतः सेना सहित वहाँ जाना कठिन है। हमें तो तुम सिर्फ विशल्या के स्नान का जल ला दो। इस पर भरत बोले—तुम जल की बात क्या करते हो? तुम तो विशल्या को ही साथ ले जाओ, क्योंकि मुनिराज ने कहा था कि वह लक्ष्मण की पत्नी होगी। अतः राजा द्रोणमेघ को भी इसमें कोई एतराज नहीं होगा।

है। आपके भाई नारायण हैं, वे मर नहीं सकते। अभी वे शक्ति लगने से बेहोश हो गए है। अतः हमें शक्ति को निकालने का उपाय करना चाहिए, क्योंकि सूर्य उदित होने पर उनके जीने में संशय हो जाएगा। अभी किसी भी व्यक्ति को उनका स्पर्श नहीं करने दिया जाए, अन्यथा शक्ति घातक सिद्ध होगी। अतः प्रमुख व्यक्तियों को सुरक्षा की दृष्टि से लक्ष्मण के चारों तरफ बैठा दिया। सब सतर्क होकर लक्ष्मण की सुरक्षा कर ही रहे थे कि भामण्डल ने एक अजनबी को आते देखा। उससे पूछताछ करने पर पता चला कि वह राम के दर्शन का अभिलाषी है और लक्ष्मण के जीने का उपाय भी वह बता सकता है। अतः भामण्डल उस व्यक्ति को तत्काल राम के पास ले गए।

राम को अपना परिचय देते हुए उसने कहा कि मैं देवगीत नगर के राजा का पुत्र हूँ। मैं एक दिन आकाश से जा रहा था कि सहस्रविजय नामक राजकुमार से मेरा युद्ध हुआ। उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्ति मारी, जिससे बेहोश होकर मैं अयोध्या के महेन्द्र नामक उद्यान में गिर पड़ा। दूर से उद्यान में मेरा गिरता देखकर राजा भरत वहाँ आए। उन्होंने मुझे चन्दन के जल से लेप किया, जिससे शक्ति निकल गई व मेरा पहले जैसा रूप हो गया। इसप्रकार भरत ने मुझे नया जन्म दिया। राजा भरत से चन्दन के उस जल की उत्पत्ति के वारे में पूछने पर उन्होंने बताया कि कुछ समय पूर्व हमारा देश अनेक रोगों से ग्रसित हो गया था। किसी भी उपाय से कोई भी बीमारी दूर नहीं होती थी। पर राजा द्रोणमेघ प्रजा सहित निरोग था। तब मैंने (भरत ने) उन्हें बुलवाया और निरोग होने का उपाय करने को कहा। राजा द्रोणमेघ ने सुगन्धित जल से मुझे व इस नगर को सींचा, जिससे सभी प्रजा स्वस्थ हुई।

सुगन्धित जल की उत्पत्ति पूछने पर राजा द्रोणमेघ ने बताया कि मेरी विशल्या नाम की पुत्री जब गर्भ में आयी थी, तभी अनेक व्याधियों से युक्त मेरे देश की समस्त व्याधियाँ दूर हो गई और अभी भी उसके स्नान के जल से हर किसी के रोग, घाव दूर हो जाते हैं। उसकी शरीर की सुगन्धि से ही यह जल अत्यधिक सुगन्धित है। यह सुगन्धित जल क्षणभर में समस्त रोगों का नाश करता है। भरत ने राजा द्रोण से कहा कि अवश्य ही यह उसकी पूर्वभव की किसी तपस्या का फल है।

लक्ष्मण की शक्ति के दूर होने का उपाय मिलने पर राम ने हनुमान, भामण्डल और अगंद को अयोध्या भेजा। विमान द्वारा वे पलक झपकते ही अयोध्या पहुँच गए। वहाँ जाकर उन्होंने भरत को जगाया और सीताहरण व लक्ष्मण की बेहोशी का कारण बताया। जिसे सुनकर भरत को शोक के साथ-साथ अत्यन्त क्रोध भी आया। अतः उन्होंने रणभेरी बजवा दी।

अर्द्धरात्रि में रणभेरी सुनकर अयोध्यावासी चौंक गए, फिर शत्रुसेना को समीप आया समझकर युद्ध के लिए तैयार होकर महल में आने लगे।

हनुमान आदि ने भरत को समझाया कि लंका यहाँ से बहुत दूर है, बीच में समुद्र भी है। अतः सेना सहित वहाँ जाना कठिन है। हमें तो तुम सिर्फ विशल्या के स्नान का जल ला दो। इस पर भरत बोले—तुम जल की बात क्या करते हो? तुम तो विशल्या को ही साथ ले जाओ, क्योंकि मुनिराज ने कहा था कि वह लक्ष्मण की पत्नी होगी। अतः राजा द्रोणमेघ को भी इसमें कोई एतराज नहीं होगा।

द्रोणमेघ के राज्य में जाकर विशल्या सहित एक हजार कन्याओं के साथ वे आकाशमार्ग से शीघ्र ही लंका के पास स्थित अपने सेना के पड़ाव में पहुँचे।

ज्यों-ज्यों विशल्या पड़ाव से समीप आती गई, त्यों-त्यों लक्ष्मण के शरीर में आराम होने लगा और उसके समीप पहुँचते ही तेजोपुँज शक्ति निकल गई। उस भागती हुई शक्ति को हनुमान ने पकड़ लिया, तब वह शक्ति दिव्य स्त्री का रूप धारण कर हनुमान से बोली कि आप हमें छोड़िये; क्योंकि हमारा कोई अपराध नहीं है, हमें जो साधता है, हम उसके वशीभूत होते हैं। मैं अमोघविजया नामक शक्ति हूँ। जब दशानन ने कैलाश पर्वत पर चैत्यालय में भक्ति गान किया और अपने हाथों की नस बजाई, तब धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। धरणेन्द्र ने अत्यधिक प्रसन्न होकर दशानन के मना करने पर भी जबरदंस्ती मुझे उसे प्रदान किया। मैं जिसे लगती हूँ, उसके प्राण लेकर ही निकलती हूँ। इस विशल्या के अलावा और कोई मुझे जीत नहीं सकता था। मैं पराधीन हूँ। जो मुझे चलाता हैं मैं उसके शत्रु का नाश करती हूँ। यह सुनकर हनुमान ने उस शक्ति को छोड़ दिया।

विशल्या ने राम को नमस्कार किया, फिर उसने लक्ष्मण के पास एकान्त होने पर उनके सारे शरीर में चन्दन का लेप किया। जिससे लक्ष्मण ऐसे उठे, जैसे सोते से जागे हों। उठते ही लक्ष्मण चिल्लाने लगे। कहाँ है दशानन? कहाँ है दशानन?

लक्ष्मण की आवाज सुनकर राम उनके समीप आए और उन्हें शक्ति लगने से लेकर विशल्या के आने का समस्त वृतान्त सुनाते हुए कहा कि इसके साथ जो एक हजार कन्यायें आई थीं, उन्होंने चन्दन का लेप कर सभी सैनिकों व घोड़े-हाथी आदि को भी स्वस्थ कर दिया है।

सारा वृत्तान्त सुनकर लक्ष्मण ने विशल्या को अनुराग की दृष्टि से देखा। उसी समय रात में लक्ष्मण व विशल्या का पाणिग्रहण हुआ।

उधर लंका में दशानन विचार रहा था कि शक्ति लगने से लक्ष्मण अवश्य ही मर गया होगा। उसके परिणामस्वरूप क्रुद्ध राम पक्ष के लोगों ने कैद किए भाई भानुकर्ण और इन्द्रजीत व मेघनाद दोनों पुत्रों को भी अवश्य मार डाला होगा। अतः वह उनकी याद कर मन ही मन अत्यन्त दुःखी हो रहा था। तभी विचारमग्न दशानन की विचारश्रृंखला गुप्तचरों के आने की सूचना से भंग हुई। उनसे दशानन को ज्ञात हुआ कि लक्ष्मण की शक्ति निकल गई है और उनका विशल्या से पाणिग्रहण भी हो गया है।

दशानन ने कहा कि शक्ति निकल गई तो क्या हुआ? वे मेरे बल के सामने कुछ नहीं हैं। तब मारीचि आदि मंत्रियों ने समझाया कि यद्यपि हम शत्रुओं को जीत भी लें, तो भी आपके भाई व पुत्रों का विनाश अवश्य ही हो जाएगा। अतः हमें सीता को वापिस कर संधि कर लेनी चाहिए। तब कुछ सोच-विचार कर दशानन ने अपना दूत राम के पास भेजा।

दशानन का संदेश राम को सुनाते हुए दूत ने कहा— मेरे स्वामी दशानन कहते हैं कि मुझे युद्ध से कुछ भी प्रयोजन नहीं है, क्योंकि युद्ध का अभिमान करनेवाले अनेक मनुष्य नष्ट हो चुके हैं। युद्ध से तो केवल नरसंहार ही होता है। युद्ध में यदि असफल हुए तो सबसे बड़ा दोष है और यदि सफलता मिलती भी है तो अनेक अपवादों के साथ मिलती है। कार्य की सिद्धि तो उत्तम प्रीति से ही होती है। अतः हमारे साथ प्रीति करना ही आपके लिए अत्यन्त हितकारी है। युद्ध में देवों को भी भय उत्पन्न करनेवाला इन्द्र को जीतने

वाला मैं दशानन तुमको विद्याधरों सहित समुद्रपर्यंत की समस्त पृथ्वी और लंका का आधा भाग देता हूँ। तुम मेरे भाई और पुत्रों को भेजकर सीता देना स्वीकार करो। उसी से तुम्हारा कल्याण होगा। यदि तुम ऐसा नहीं करते तो सीता तो हमारे पास है ही और युद्ध में वाँधे हुए भाई व पुत्रों को भी हम वलपूर्वक छीन लेगें।

जवाब देते हुए राम ने कहा कि मुझे राज्य से प्रयोजन नहीं है, न ही अन्य स्त्रियों से। यदि तुम सीता को भेजते हो तो मैं तुम्हारे भाई व पुत्रों को अभी भेज देता हूँ। समग्र पृथ्वी का उपभोग तुम ही करो। यदि तुम परस्त्री के लिए मरने के लिए उद्यत हो तो मैं अपनी स्त्री के लिए क्यों नहीं प्रयत्न करूँ? सीता के बिना मुझे इन्द्र के भोगों की भी आवश्यकता नहीं है ।

दूत ने कहा कि आप जानकी की आशा तो छोड़ो यदि लंकेश्वर को क्रोध आया तो जानकी की तो क्या बात है, आपके जीवन में भी संदेह हो जायेगा।

यह सुनकर क्रोधित भामण्डल दूत को मारने दौड़े। लक्ष्मण ने उन्हें समझाकर रोका। पर सुग्रीवादि सभी ने उसका तिरस्कार किया और वह दूत जान बचाकर दशानन के पास पहुँचा।

दूत ने कहा कि मैंने आपका संदेश राम को सुनाया तो उन्होंने कहा कि मुझे सीता के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। उनके अनुचरों ने मेरा वहुत अपमान किया। भामंडल तो मारने ही लगे थे, पर लक्ष्मण के वीच-बचाव से मैं किसी प्रकार अपनी जान बचाकर आया हूँ।

भाई व पुत्रों को जीवित वापिस लाने के इच्छुक दशानन ने वहुत सोच-विचार के पश्चात् वहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने

का निर्णय लिया और उन्होंने शांतिनाथ के मन्दिर को शीघ्र सजाने का आदेश दिया।

तभी अष्टान्हिका महापर्व प्रारंभ हुआ। सभी लंकावासियों ने व्रत-नियम धारण किए। सभी युद्ध से विरत निश्चिंत होकर धर्मध्यान में अपना समय व्यतीत करने लगे। जब दशानन शांतिनाथ के मन्दिर में विद्या साधने के लिए जाने लगे तो मन्दोदरी को आदेश दे गए कि जबतक मैं विद्या सिद्ध कर रहा हूँ और अष्टान्हिका पर्व चालू है, तबतक समस्त प्रजा जिनेन्द्र पूजन करे, दया में तत्पर रहे। जबतक मेरा नियम पूरा नहीं हो जाता तबतक सभी शांतिपूर्वक रहें। कोई किसी को कष्ट न दे। यदि कोई उपद्रव भी करे तो उसे दण्ड न दें, उस पर क्रोध न करें, जो क्रोध करेगा वह मेरे द्वारा बध्य होगा।

दशानन ने मन्दिर में जाकर सर्वप्रथम महापूजा की। राम की सेना ने जब सुना कि दशानन २४ दिन में सिद्ध होनेवाली, देवताओं के भी मद को हरनेवाली बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने गया है, तब उन्होंने राम से जाकर कहा कि इस समय हम लंका जीत सकते है। अन्यथा विद्या सिद्ध हो जाने पर दशानन अजेय हो जाएगा।

राम ने कहा—नहीं, यह उचित नहीं। वह नियमधारी है, मन्दिर में शांतभाव से बैठा है, हम उस पर आक्रमण कैसे कर सकते हैं?

सभी वानरवंशी विद्याधर राम से छिपकर लंका में उपद्रव करने लगे। सभी प्रजा को दुःखी देखकर राजा मय इनके प्रतिकार के लिए निकलने लगे तो मन्दोदरी ने उन्हें रोक लिया और बोली कि स्वामी की आज्ञा है कि इन दिनों धर्मध्यान ही करो, यदि आप अन्यथा प्रवृत्ति करेंगे तो उनकी आज्ञा

भंग होगी और आप उनके क्रोध के पात्र वनेंगे। मंदोदरी के इसप्रकार कहने पर राजा मय रुक गये।

कपिकुमारों के उपद्रव से लंका की प्रजा में हाहाकार मचा हुआ था। सभी इधर-उधर सहायता के लिए दौड़ रहे थे। स्त्रियाँ रुदन कर रहीं थीं, बच्चे विलख रहे थे। यह देखकर शांतिनाथ मन्दिर के सेवक पूर्णभद्र व मणिभद्र नामक देवों ने कपिकुमारों के उपद्रव से जनता को बचाया तथा वे राम के पास जाकर वोले कि नीतिप्रिय राम तुम अनीति का कार्य क्यों कर रहे हो?

तव सुग्रीव ने कहा कि तुम अन्यायी का पक्ष क्यों ले रहे हो? वह वहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है। यदि वह उसे सिद्ध हो गई तो उसके सम्मुख कोई ठहर नहीं सकता। अतः हम विद्या सिद्ध न हो, इसलिए प्रयत्न कर रहे हैं।

देवों ने कहा कि विद्या साधने में तुम्हे विघ्न करना हो तों करो, पर लंका की प्रजा को जरा भी तकलीफ नहीं होना चाहिए। ना ही तुम दशानन के अंगों का ही स्पर्श करोगे। दूर से जो भी करना हो करो, पर दृढप्रतिज्ञ दशानन में क्रोध उत्पन्न करना कठिन है।

देवो से आश्वासन पाकर सुग्रीव का पुत्र अंगद शांतिनाथ के मन्दिर में प्रवेश का प्रयत्न करने लगा। पर उसे मन्दिर का रास्ता ही समझ में नहीं आता था। मन्दिर स्फटिक मणियों से वना था। उस मन्दिर में रत्नमयी मानव व पशुओं की मूर्तियाँ वनी हुई थीं। जिन्हें वह वास्तविक समझने लगते व पशुओं से डर जाते। मानवों से आगे का रास्ता पूँछने लगते। कहीं रास्ते के भ्रम से दीवार से टकरा जाते। वहुत देर पश्चात् एक जीवित मनुष्य को मन्दिर में प्रवेश करते देखकर अंगद अपने सिपाहियों सहित उसकी सहायता से अन्दर गए। अन्दर

जाकर दशानन को ध्यान से डिगाने के उन्होंने अनेक प्रयास किए। रानियों को रोता-कलपता बताया, मन्दोदरी को अत्यन्त कष्ट में दिखाया, पर दशानन किंचित् भी विचलित नहीं हुए। जब अंगद आदि मन्दोदरी को परेशान कर रहे थे, तभी दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई बहुरूपिणी विद्या दशानन के सामने आकर बोली कि हे नाथ! मैं आपको सिद्ध हो गई हूँ। मैं आपकी हर आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ। मैं एक चक्रधारी को छोड़कर सबको वश में कर सकती हूँ। कहिए मैं आज किसका संहार करूँ ?

दशानन ने उठकर जबतक जिनेन्द्र प्रतिमा की प्रदक्षिणा की, तबतक अंगद आदि सभी सैनिक शिविर में भाग गए।

रनिवास में पहुँचने पर मन्दोदरी ने दशानन को कपिकुमारों के उपद्रव के बारे में बताया। दशानन ने सबको दिलासा दी। स्नानादि कर भोजन किया, फिर बहुरूपिणी विद्या की परीक्षा की। लंका की सुरक्षा के लिए मायामयी कोट बनाया और दूसरे दिन की युद्ध की योजना बनाते हुए वे निद्रामग्न हो गए ।



पन्द्रहवाँ दिन

आज का युद्ध दोनों ओर की सेनाओं के लिए महत्वपूर्ण था। सभी को यह महसूस हो रहा था कि आज का युद्ध निर्णायक युद्ध होगा। बहुरूपिणी विद्या से युक्त चक्रधारी दशानन की जीत में अब किसी को संदेह नहीं रहा था। वानरवंशी सेना ने सोच लिया था कि अब अगला सूर्योदय हम नहीं देख सकेंगे और राक्षसवंशी सेना ने तो अपने आपको जीता हुआ ही मान लिया था।

युद्ध में जाने के पूर्व दशानन सीता से मिलने के लिए गए तो पति व देवर के जीवन के बारे में सशंकित सीता दशानन से बोली कि आपके प्रचण्ड बल का कोई मुकाबला नहीं है। अतः जब राम तुम्हारे सामने आएँ तो उन्हें मारने के पूर्व मेरा संदेश अवश्य कहना कि भामंडल की बहिन सीता मात्र तुम्हारे दर्शन तक ही जीवित है — इतना कहते-कहते सीता बेहोश हो गई।

सीता की यह दशा देखकर दशानन बहुत दुःखी हुए। उनका हृदय परिवर्तित हो गया। वे विचारने लगे कि मैंने ऐसे स्नेहवान युगल का विछोह किया। मुझे धिक्कार है। यह तो केवल राम में ही अनुरागिनी है। अबतक यह मुझे अच्छी लगती थी, पर परासक्त हृदय होने से अब यह मुझे विषतुल्य लग रही है। अब मैं क्या करूँ? यदि दयावश इसे राम के पास भेजता हूँ तो लोग मुझे असमर्थ समझेंगे। यदि युद्ध करता हूँ तो व्यर्थ में ही महाहिंसा होगी? अंत में उन्होंने

निर्णय लिया की न्यायमार्गी राम-लक्ष्मण को जीवित ही पकड़ूँ और उन्हें धनादि सहित सीता वापिस करूँ तो मेरी कीर्ति होगी। पर सुग्रीवादि वानरवंशियों को मैं नहीं छोड़ूँगा, वे अन्यायमार्गी हैं। मैं पृथ्वीतल के सभी क्षुद्र भूमिगोचरियों को हटाकर प्रशंसनीय विद्याधरों को बसाऊँगा; ताकि सभी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र हमारे जैसे इसी वंश में जन्म लें।

दशानन के अन्तर्तम से अपरिचित मन्दोदरी उन्हें सीता से विरक्त करने के लिए प्रयत्नशील थी। मंत्रियों से मंत्रणा कर वह युद्ध के लिए उद्यत पति के पास गई।



सीता से विरक्त हुए दशानन का हृदय, मन्दोदरी को देखकर अनुराग से भर गया। पति को प्रसन्नचित्त देखकर मन्दोदरी ने समुचित मौका समझकर कहा कि हे स्वामी! आप उस भूमिगोचरी स्त्री में क्यों आसक्त हैं? क्या वह मुझसे भी अधिक सुन्दर है? आप कहो मैं वैसा ही रूप बना लूँ? दशानन बोले कि तुम मुझे ऐसे ही अच्छी लगती हो, फिर अन्य रूप धारण करने की क्या जरूरत है? तुम्हारे रहते मुझे अन्य स्त्रियों से कुछ मतलब नहीं है।

पति की अनुकूल वाणी सुनकर मन्दोदरी ने तुरन्त कहा कि मैं अभी सीता वापिस करके भानुकर्ण, इन्द्रजीत व मेघनाद को छुड़ाकर लाती हूँ।

इतना सुनते ही दशानन भड़क उठे। वे कहने लगे— राजा मय की पुत्री और सम्राट दशानन की पटरानी में ऐसी कायरता कहाँ से आई? बहुरूपिणी विद्या से युक्त मेरी विजय के बारे में आज तो शत्रु पत्नी सीता भी आश्वस्त है, फिर तुम क्यों संशकित हो?

मंदोदरी बोली— आज प्रातः से ही मेरा मन उद्विग्न है, चित्त अशान्त है। अपशकुन भी बहुत हो रहे हैं। निमित्त ज्ञानियों ने भी आपकी मृत्यु जनक की पुत्री व दशरथ के पुत्र के निमित्त से बताई थी। सीता जनक की पुत्री है और राम-लक्ष्मण दशरथ के पुत्र हैं। लक्ष्मण ने कोटिशिला भी उठा ली थी। शास्त्रों में बलभद्र व नारायण के बारे में आता ही है। लगता है ये दोनों भाई ही बलभद्र व नारायण हैं और आप प्रतिनारायण हैं ही। यह तो आप जानते ही हैं कि प्रतिनारायण नारायण के हाथ से मारा जाता है। अतः मेरा चित्त आशंकित है।

दशानन ने कहा— नाम नारायण रखने से कोई नारायण नहीं हो जाता। मैं अपने बाहुबल से युद्ध में जीतकर अपने भाई व बेटों को छुड़ाकर लाऊँगा।

जीवन में सत्य को समझना व स्वीकार करना कठिन नहीं है, परन्तु उस सत्य को किसी से कहना कठिन है। दशानन की भी यही दशा थी। सीता उसकी नहीं हो सकती— इस सत्य को उन्होंने भलीभांति समझ लिया था, वे सीता राम को वापिस भी करना चाहते थे। पर वे इसे सबके सामने स्वीकार नहीं कर सके।

उन्हें राम को युद्ध में जीतकर सीता वापिस करना मंजूर था, पर हार कर नहीं। संधि करने में वे अपनी हार समझते थे, अपने को अपमानित महसूस करते थे। यही कारण है कि पटरानी मन्दोदरी के संधि प्रस्ताव से वे भड़क उठे और युद्ध के लिए चल दिए।

दशानन बहुरूपिणी विद्या से निर्मित एन्द्र नामक रथ में बैठकर युद्ध मैदान में पहुँचे। विशालकाय वह रथ दूर से पर्वत का भ्रम उत्पन्न करता था। अतः आश्चर्यचकित राम ने अपने सैनिकों से पूँछा कि स्वर्णमयी शिखरों से अलंकृत दैदीप्यमान यह कौन-सा पर्वत है?

जाम्बुनंद ने कहा—स्वामी यह पर्वत नहीं, अपितु बहुरूपिणी विद्या से बनाया गया रथ है, जो कि अनेकों की मृत्यु का कारण है।

अपनी सेना को भयभीत देखकर लक्ष्मण अपने रथ पर बैठकर दशानन की ओर बढ़े। राजा मय से हनुमान युद्ध करने लगे और शीघ्र ही हनुमान के प्रहारों से राजा मय रथरहित हो गए। यह देखकर दशानन ने बहुरूपिणी विद्या से रथ बनाकर राजा मय के पास भेजा। इस पर सवार होकर राजा मय ने हनुमान के छक्के छुड़ा दिए। हनुमान को हारते देखकर भामण्डल उनकी सहायता को आए। पर राजा मय के सामने वे भी अधिक देर न टिक सके तो सुग्रीव उनकी सहायता को आए। सुग्रीव के हारने पर विभीषण आये। विभीषण पर भी जब राजा मय भारी पड़ने लगे तो स्वयं राम आगे बढ़े। राम के वाणों से राजा मय को हारते देखकर दशानन उनकी सहायता को आगे बढ़ने लगे तो लक्ष्मण ने उन्हें बीच में ही रोकते हुए कहा कि ओ विद्याधर! कहाँ जा रहा है?

मेरा आज तुमसे सामना हुआ है। चोर, पापी! तू अब कहाँ जा रहा है? यदि साहस है तो मुझसे युद्ध कर।

दशानन ने क्रोधित होकर लक्ष्मण पर आग्नेय अस्त्र छोड़ा, लक्ष्मण ने उसे वरुणास्त्र द्वारा बीच में ही रोक दिया। लक्ष्मण ने दशानन पर पापवाण चलाया, जिसे दशानन ने धर्मवाण से रोका।

इसप्रकार लक्ष्मण ने दशानन पर मेघवाण, ईंधनवाण, तिमिरवाण, नागवाण और सर्पवाण चलाए, जिनको दशानन ने पवनवाण, अग्निवाण, सूर्यवाण, वरुणवाण और मयूरवाण से रोक दिया। इसीप्रकार दशानन ने भी लक्ष्मण पर विभिन्न अस्त्र छोड़े, जिन्हें लक्ष्मण ने रोक लिए; पर जब दशानन ने लक्ष्मण पर विघ्नवाण चलाया तो उसका काट सिद्धवाण लक्ष्मण को याद नहीं आया। अतः लक्ष्मण बज्रदण्ड आदि अनेकों शस्त्रों से युद्ध करने लगे। इसप्रकार दस दिन तक दोनों में घमासान युद्ध होता रहा।

दशानन व लक्ष्मण के इस युद्ध को चन्द्रवर्द्धन नामक विद्याधर की आठ पुत्रियाँ विमान में बैठीं आसमान से देख रहीं थीं। लक्ष्मण से विवाह की इच्छुक वे आपस में बातचीत कर रही थीं, जिससे लक्ष्मण का ध्यान ऊपर गया। लक्ष्मण को अपनी ओर उन्मुख देखकर वे बोलीं—हे स्वामी! आपका काम सर्वथा सिद्ध हो। यह सुनकर लक्ष्मण को विघ्नवाण का काट सिद्धवाण याद आ गया, जिसे चलाकर वे बड़ी तेजी से दशानन से युद्ध करने लगे। दशानन बहुरूपिणी विद्या से अपने अनेक सिर बनाता जाता, लक्ष्मण अपने वाणों से उन्हें काटते जाते। इसप्रकार बहुरूपिणी विद्या के बल से दशानन ने लक्ष्मण के साथ महायुद्ध किया, पर लक्ष्मण को उन सबका निराकरण करते देखकर और अन्य अस्त्र-शस्त्रों से लक्ष्मण को

काबू में न पाकर दशानन ने चक्ररत्न का चिंतवन किया। सूर्य के भी तेज को धूमिल करनेवाले उस चक्ररत्न को जब दशानन ने लक्ष्मण पर चलाया तो राम, सुग्रीव, भामण्डल, विभीषण, हनुमान आदि सभी योद्धा क्रमशः बंज्रावर्त धनुष, हल, गदा, तलवार, त्रिशूल, उल्का आदि अपने-अपने अस्त्र लेकर चक्र को रोकने का प्रयास करने लगे, पर कोई उसमें सफल नहीं हुआ। यह चक्र सीधा लक्ष्मण की ओर बढ़ता चला गया और उनकी तीन प्रदक्षिणा देकर उनके हाथ में आकर रुक गया।

लक्ष्मण के हाथ में चक्ररत्न देखकर सुग्रीवादि सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। लक्ष्मण की तरफ से निश्चिंत राम ने राजा मय को शीघ्र ही पकड़ लिया।

दशानन मन में विचार करते हैं कि अनन्तवीर्य केवली ने सत्य ही कहा था। यह लक्ष्मण आठवाँ नारायण है। जिसका छत्र देखकर विद्याधर राजा भयभीत हो जाते थे, तीन खण्ड की पृथ्वी दासी के समान जिसकी आज्ञाकारिणी थी, वही मैं आज एक भूमिगोचरी से पराजित होकर कैसे जी सकता हूँ? यह राज्यलक्ष्मी चंचल है, विनाशीक है। मैंने व्यर्थ ही मोहवश इसकी रक्षा में अपना समय बर्बाद किया।

दशानन की विचारश्रृंखला लक्ष्मण की गर्जना द्वारा भंग हुई। लक्ष्मण कह रहे थे कि अब भी यदि तुम राम की आधीनता स्वीकार कर लो तो ज्यों का त्यों तुम्हारा राज्य तुम्हें मिल जायेगा।

चक्र लक्ष्मण के हाथ में जाने पर दशानन को अपनी मृत्यु में सन्देह नहीं रह गया था, पर उन्हें सम्मानित मौत मंजूर थी, अपमानित जीवन नहीं। अतः उन्होंने राम

की दासता स्वीकार करने की अपेक्षा युद्ध करना ही स्वीकार किया।

दशानन द्वारा राम की दासता स्वीकार न करने पर लक्ष्मण ने दशानन पर चक्र चलाया, जिसे दशानन ने चन्द्रहास खड्ग आदि अस्त्रों द्वारा रोकने का प्रयास किया, पर वह किसी अस्त्र से न रुका और दशानन का मर्मस्थल छेद गया।

जिस व्यक्ति की मृत्यु जिस समय, जिस निमित्त से होनी होती है; वह उस समय उसी निमित्त से ही होती है। मृत्यु अपने विपत्तिरूपी हाथ फैलाकर किसी न किसी बहाने अपने शिकार को पकड़ ही लेती है। शत्रु के नाश के लिए प्राप्त की गई श्रमसाध्य शक्तियाँ भी समय आने पर स्वयं के ही विनाश का कारण बन जाती हैं।

दशानन के साथ भी यही हुआ। दशानन द्वारा लक्ष्मण पर चलाया गया चक्ररत्न ही उसकी मृत्यु का कारण बना।

सोलहवाँ दिन

दशानन का मृत शरीर देखकर विभीषण बेहोश हो गए। होश में आने पर जब वे आत्मघात करने का प्रयास करने लगे तो राम ने उन्हें मुश्किल से सम्हाला।

नीति-न्याय की बात पर भाई का भाई से विरोध अवश्य हो गया था, पर विभीषण के हृदय में रावण के प्रति राग अभी भी विद्यमान था। कुछ देर पहले जो भाई दूसरे भाई पर आक्रमण करने को तैयार था, वही अब उसकी मौत सहन न कर सका। राग की विचित्रता ही ऐसी है कि वह कब कौन-सा रूप धारण करले, कहा नहीं जा सकता।



दशानन के दाह-संस्कार के पूर्व भानुकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद को छोड़ दिया गया। यह सुनकर भामण्डल बहुत परेशान थे। वे सोच रहे थे कि विभीषण भाई की मौत का

सदमा वैसे ही बर्दाश्त नहीं कर पाए हैं और अब यदि भाभियों को बिलखता और भानुकर्णादि की दुर्दशा देखकर उनका मन डोल उठा और वे विद्रोह कर उठे तो वे सम्हाले नहीं सम्हलेंगे। बंधन से छूटे भानुकर्ण, इन्द्रजीत, मेघनाद का भी भरोसा नहीं है। अतः बहुत सोचने के पश्चात् मंत्रियों से विचार-विमर्श कर सिपाहियों को इनकी निगरानी का आदेश दिया गया।

राम की आज्ञानुसार दशानन का उनके परिवारजनों की उपस्थिति में यथोचित सम्मान के साथ दाह-संस्कार किया गया।

दाह-संस्कार के पश्चात् जब सभी शांत हो गए, तब लक्ष्मण ने भानुकर्णादि से कहा कि आप पहले की तरह ही भोगोपभोग करते हुए आनन्द से रहिए। यह सुनकर भानुकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद बोले कि महादुःखों को देनेवाले इन भोगों से हमें कुछ प्रयोजन नहीं है। हमने बंधन अवस्था में प्रतिज्ञा की थी कि यदि हमें बंधनों से छुटकारा मिलेगा तो हम निर्ग्रन्थ साधु होकर पाणिपात्र आहार ही लेंगे। अतः बंधन मुक्त अब हम मुक्तिरमा का वरण करने के लिए कल प्रातः ही मुक्ति पथ के पथिक दिगम्बर मुनिराज के सान्निध्य में दीक्षा ले लेंगे।

राम-लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया, कुछ दिन और राज्योपभोग करने की सलाह दी, पर वे उन्हें उनके निश्चय से डिगा न सके।

इसके पश्चात् सभी अपने-अपने कटक में चले गए।

उसी दिन अन्तिम प्रहर में लंका के कुसुमायुध उद्यान में महासंघ के साथ अतिवीर्य नामक मुनिराज पधारे। यदि दशानन के जीवित रहते महामुनि लंका में आते तो दशानन की इसप्रकार मृत्यु न होती। दशानन और लक्ष्मण में अत्यन्त

प्रीति हो जाती, क्योंकि जिस देश में ऋद्धिधारी मुनिराज व केवली रहते हैं, वहाँ दो सौ योजन तक की पृथ्वी सर्व उपद्रवों से रहित हो जाती है और उनके निकट रहनेवाले राजाओं का वैरभाव भी दूर हो जाता है।

निर्मल शिलातल पर ध्यानमग्न अतिवीर्य मुनिराज को रात्रि में ही केवलज्ञान हो गया।

उसी समय चारों निकाय के देव धातकीखण्ड द्वीप में उत्पन्न हुए किसी तीर्थंकर का जन्मकल्याण का उत्सव कर लौट रहे थे कि रास्ते में अतिवीर्य मुनिराज का केवलज्ञान कल्याणक देखकर वहीं रुक गए। देवों के विमानों में लगे हुए रत्नों की ज्योति से अर्द्धरात्रि में भी प्रकाश हो गया। देवों ने प्रसन्न होकर दुन्दुभि की। जिसे सुनकर शत्रु की आशंका से राम-लक्ष्मण चिन्तित हो गए, किन्तु जब उन्हें अतिवीर्य मुनि के केवलज्ञान की सूचना मिली तो वे प्रसन्नचित्त सभी वानरवंशियों और राक्षसवंशियों के साथ उनके दर्शन करने को गए।

केवली का उपदेश सुनकर विरक्तचित्त भानुकर्ण, इन्द्रजीत, मेघनाद, मन्दोदरी के पिता राजा मय आदि राजाओं ने जैनेश्वरी दिगम्बरी दीक्षा ले ली। भानुकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद ने अपने उग्र तप द्वारा कुछ दिनों में ही मुक्तिरमा का वरण कर लिया। मन्दोदरी के पिता राजा मय चारणमुनि होकर अढ़ाईद्वीप में कैलाश आदि पर्वतों पर स्थित चैत्यालयों की वंदना करते हुए और तप करते हुए कुछ दिनों पश्चात् उत्कृष्ट शुभोपयोग की अवस्था में इस देह का परित्याग कर ईशान स्वर्ग में उत्कृष्ट देव हुए।

पिता, पुत्र और पति – ये तीनों ही स्त्रियों की रक्षा के निमित्त हैं। पति के स्वर्ग सिधार जाने पर और अब पिता

व पुत्र के दीक्षा लेने से अत्यन्त दुःखी मंदोदरी करुण विलाप करती हुई बार-बार मूर्छित हो जाती। होश में आने पर फिर विलाप करने लगती। यह देखकर शशिकांता नामक आर्यिका ने उन्हें समझाया कि संसार में जो जन्मता है, वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। इस संसार में भ्रमण करते हुए न जाने हमारे कितने पुत्र, पिता व पति हुए; पर सभी अन्त में एक न एक दिन बिछुड़ ही गए और उनके वियोग में दुःखी होकर हमने अपना अनन्त संसार ही बढ़ाया है। अब सौभाग्य से तुमने मनुष्य भव व उच्च कुल प्राप्त किया है। अतः ऐसा कार्य करना चाहिए कि पुनः संसार में न रहना पड़े, नाना गतियों में न भटकना पड़े। पिता व पुत्र के वियोग में दुःखी होने के स्थान पर तुम भी उनके मार्ग पर बढ़ जाओ। यह सब सुनकर स्वस्थचित्त विरक्त मन्दोदरी ने चन्द्रनखा के साथ आर्यिका के व्रत धारण किये।

दूसरे दिन राम-लक्ष्मण ने विभीषण, सुग्रीवादि सभी राजाओं के साथ लंका में प्रवेश किया। उन्हें झरोखे से देखते हुए लंका के नर-नारी उनके रूप पर मुग्ध हो गए, उनकी वीरता की प्रंशसा करने लगे।

कुछ दूर जाने पर राम ने एक स्त्री से सीता का पता पूँछा और उस दिशा में आगे बढ़ गए।

सीता को जब राम के आने की सूचना मिली तो सीता हर्ष से रोमांचित हो गई। उनकी प्रसन्नता का पारावार नहीं था। जिस पति से मिलने की आशा तो दूर उनके जीवन पर ही जिसे संदेह हो गया था, उन्हीं के समीप आने पर उनका मन-मयूर नाच उठा।

धीरे-धीरे राम सीता के समीप आए, फिर लक्ष्मण आए। उन्हें देखकर सीता ने कहा कि महाज्ञान के धारक निर्ग्रन्थ

…नियों ने जैसा कहा था, तुमने वैसा ही उच्चपद …
…। अब तुमने चक्र चिन्हित राज्य और नारायण …
…र लिया है। इतने में ही भामण्डल को देखकर …
…प्रेमपूर्वक मिली। फिर हनुमान, सुग्रीव, विराधित …
…अनेकों भेंट देते हुए सीता से मिले।

इसके पश्चात् राम ने हाथ पकड़कर … राजाओं के …
पर बैठाया और लक्ष्मण सहित सभी राजाओं के …
के महल की ओर बढ़े।

महल में पहुँच राम-सीता, लक्ष्मण- …
ने महल के मध्य में स्थित शांतिनाथ भगवान के …
दर्शन किए। जबतक ये सभी दर्शन कर रहे थे …
ने महल में जाकर दशानन के दादा सुमाली और …
तथा पिता रत्नश्रवा आदि परिवार जनों को …
अपने महल में आकर अपनी हजार रानियों …
नामक रानी को राम, लक्ष्मण व सीता आदि को …
के लिए भेजा। जब राम, लक्ष्मण व सीता आदि …
के महल में पहुँचे तो उनका वहाँ बहुत स्वागत हुआ। …
पश्चात् स्नानादि से निवृत्त होकर वे विभीषण के महल में …
स्थित पद्मरागमणि से निर्मित पद्मप्रभ भगवान के मन्दिर में …
दर्शन करने गए। वहाँ से लौटकर बहुत दिनों पश्चात् …
उन्होंने स्वादिष्ट भोजन ग्रहण किया।

बहुत दिनों के विरह के …
सीता के दिन वहाँ सुखपूर्वक …

कुछ दिनों पश्चात् …
राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक …
… पिता ने भरत के …

वे ही हमारे स्वामी हैं। तब सभी ने उन्हें समझाया कि चक्ररत्न के धारी अब आप त्रिखंडी हुए हैं; अतः यह मंगलकलश अव आपके ही योग्य है। भरत महा धीर-वीर हैं। वे यह सुनकर विकार को प्राप्त नहीं होंगे, अपितु अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक आपके अभिषेक का स्वागत करेंगे।

इसप्रकार उन्हें समझाकर सबने राम-लक्ष्मण का अभिषेक किया। सभी लोग इन बलभद्र व नारायण की अत्यन्त प्रशंसा करते। विभीषण लंका में उनकी आज्ञा से राज्य करते। लक्ष्मण ने राज्याभिषेक के पश्चात् वनवास काल में विवाहित अपनी कल्याणमाला, वनमाला, जितपद्मा आदि सभी पत्नियों को लेने विराधित को भेजा। उनके आने पर लक्ष्मण ने उनके साथ सुखपूर्वक अनेक दिन व्यतीत किए।

राम, लक्ष्मण मन में संकल्प करते कि हम कल चले जायेंगे; पर विभीषण आदि का उत्तम प्रेम पाकर वह जाना भूल जाते। इसप्रकार भोगोपभोग करते हुए, आनन्दपूर्वक रहते हुए उन्हें वर्षों हो गए। वियोग के अनन्तर मिली सीता और समस्त सुखसामग्री में राम ऐसे निमग्न हुए कि माँ को भी भूल गए। उन्हें पास बुलाने का वायदा उन्हें याद ही न रहा।

उधर अयोध्या में कौशल्या पुत्रवियोग में अत्यन्त दुःखी थी। उसके एक-एक दिन वर्षों से व्यतीत होते थे। उनके वियोग में वे अक्सर रोती रहतीं थीं। ऐसे ही एक दिन जब वे पुत्रों के गुणों को याद कर विलाप कर रहीं थीं कि वहाँ भ्रमणप्रिय नारद आ गए और कौशल्या से उनके दुःख का कारण पूँछते हुए वोले कि राजा दशरथ के रहते इस अयोध्या मे कौन तुम्हारा अपमान करता है, ज़िससे तुम इतना दुःखी हो। जो तुम्हारी आज्ञा नहीं मानेगा, राजा दशरथ उसको तुरन्त ही दण्ड देंगे।

यह सुनकर कौशल्या ने कहा कि हे देवर्षि! तुम हमारे घर का वृत्तांत नहीं जानते हो, इसलिए ऐसा कह रहे हो।

नारद ने कहा कि आप ठीक ही कर रही हैं। मैं धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर भगवान के जन्माभिषेक में गया था। जिनेन्द्र भगवान के दर्शनों में आसक्त मैं वहाँ २३ वर्ष तक रहा। वहाँ से सीधा यहाँ ही आया हूँ, अन्यत्र कही नहीं गया। अतः अब आप विस्तार से समस्त समाचार मुझे सुनाइये।

तब कौशल्या दशरथ के वैराग्य, भरत का राज्याभिषेक, राम का वनगमन, सीतावियोग, सुग्रीवादि का राम से मिलाप, दशानन से युद्ध, लक्ष्मण को युद्ध में शक्ति का लगना और द्रोणमेघ की कन्या विशल्या का वहाँ जाना आदि सभी वृत्तान्त विस्तार से बताकर बोलीं कि इतना तो हमें पता है। इसके बाद क्या हुआ? हमें कुछ खबर नहीं। पता नहीं सीता किस हालत में है? लक्ष्मण जीवित है या नहीं? राम की क्या हालत है?

यह सुनकर नारद बोले कि माता आप धैर्य धारण करो। मैं शीघ्र ही आपके पुत्रों की कुशलक्षेमवार्ता लेकर आता हूँ। पर मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि दशानन तीन खण्ड का स्वामी अत्यन्त क्रोधी तथा समस्त विद्याधरों का स्वामी है, फिर भी सुग्रीव, हनुमान आदि ने उन्हें कुपित क्यों कर दिया है? कुछ भी हो, मैं जाकर आपके पुत्रों की खबर लाता हूँ। मैं तो केवल इतना ही करने मे समर्थ हूँ। शेष कार्य तो तुम्हारे पुत्र ही कर सकते हैं।

नारद आकाशमार्ग से शीघ्र ही लंका के समीप पहुँच गए। वहाँ जाकर वे सोचते हैं कि अब राम-लक्ष्मण के बारे में किसप्रकार पता करूँ? यदि उनके बारे में पूछूँगा तो दशानन

के लोगों से विरोध होगा। हो सकता है वे मुझे कैद करलें अथवा मारदें। अतः दशानन की ही कुशलक्षेम पूँछता हूँ।

यह सोचकर नारद पद्म सरोवर पर गए। वहाँ पर अंगद अंतःपुर सहित क्रीडा कर रहे थे। उनके सेवकों से नारद ने दशानन की कुशलक्षेम पूँछी, जिसे सुनकर और उसे दशानन का हितेषी समझकर सेवकों ने नारद को पकड़ लिया और उन्हें वे अपने स्वामी अंगद के पास ले गए। अंगद ने कहा कि इसे तुम पद्मनाभि के पास ले जाओ, वे ही इसकी सजा निर्धारित करेंगे।

यह सुनकर नारद वहुत भयभीत हुए वे सोचने लगे कि पता नहीं यह पद्मनाभि कौन है, जिसके पास मुझे ले जाया जा रहा है। वे मेरे साथ कैसा व्यवहार करते हैं? मैंने व्यर्थ ही यह मुसीवत मोल ली है। इस मुसीवत से वचने का उपाय वे सोच ही रहे थे कि सामने विभीषण के महल में राम को देखकर वे वहुत प्रसन्न हुए। राम ने भी उठकर उनका सम्मान किया। नारद ने उन्हें आशीर्वाद देकर कौशल्या व सुमित्रा के समाचार देते हुए कहा कि वे आपके वियोग में वहुत दुःखी हैं, दिन-रात आँसुओं से ही मुख धोती रहती हैं। यदि वे आप लोगों को शीघ्र न देखेंगी तो कभी भी मृत्यु को प्राप्त हो सकती हैं। नारद के द्वारा यह सव सुनकर दोनों भाई माताओं के दुःख से वहुत दुःखी हुए और नारद से वोले कि आपने हमारा वहुत उपकार किया है। सुख में मग्न हम माताओं को भूल ही गए थे, उनका आपने स्मरण करा दिया है। अव हम शीघ्र ही माताओं के पास जाते हैं।

राम ने तुरन्त विभीषण को वुलाया और कहा कि हम वहुत समय तक तुम्हारे महल में सुखपूर्वक रहे। अव हमारी इच्छा अयोध्या जाकर माताओं से मिलने की है।

विभीषण ने कहा कि हे स्वामी! आप जैसी आज्ञा दें, वैसा ही होगा। मैं अभी आपकी कुशलक्षेम के समाचार दूतों द्वारा माताओं के पास भिजवाता हूँ, जिससे उन्हें प्रसन्नता होगी। अभी आप सोलह दिन हमारे साथ ही रहें।

जब दूत अयोध्या पहुँचे, तब कौशल्या व सुमित्रा महल की छत पर खड़ी बातें कर रही थी। दूर से विद्याधरों को आते देखकर आशान्वित कौशल्या ने सुमित्रा से कहा कि मेरा मन कहता है कि ये विद्याधर हमारे पुत्रों की कुशल वार्ता कहेंगे। सुमित्रा ने कहा कि दीदी आपके वचन सत्य हों।

वे विद्याधर पुष्पों की वर्षा करते हुए राजा भरत के पास गए तथा कहा कि लक्ष्मण को चक्ररत्न प्रगट होने से नारायण का पद व राम को बलदेव का पद प्राप्त हुआ है। लक्ष्मण के द्वारा दशानन मारा गया और दोनों भाइयों को भरतक्षेत्र का उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त हो गया है।

इसप्रकार राम-लक्ष्मण के अभ्युदय सूचक समाचारों से प्रसन्न हुए राजा भरत ने उन दूतों का सम्मान किया। फिर उन्हें लेकर माताओं के पास गए। माताओं के मन को प्रसन्न करनेवाले समाचार सुनाकर वे दूत अयोध्या में रत्नों की वर्षा करने लगे। अयोध्यावासियों के घरों को धन-धान्य से परिपूर्ण करते हुए वे लंका वापिस हो गए।

सिलावट नामक विद्याधरों ने अयोध्या को सोलह दिनों में लंका से भी अधिक सुन्दर बना दिया।

अयोध्यावासी बहुत प्रसन्न थे। सबकी दरिद्रता दूर हो चुकी थी। रत्नमई, स्वर्णमई मन्दिरों को देखकर वे आश्चर्यचकित थे। राम, लक्ष्मण व सीता के दर्शन के इच्छुक सभी अयोध्यावासी वेसब्री से उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सत्रहवाँ दिन

आज लंकावासी उदास थे। जिन बलभद्र-नारायण का सान्निध्य उन्हें इतने वर्षों से प्राप्त था, वे अब प्रस्थान करने वाले थे। वे चाहते थे कि रात्रि थम जाए, सूर्योदय हो ही न; पर प्रकृति के चक्र को कौन रोक सका है। समय तो अपनी गति से बढ़ता ही रहता है।

सूर्योदय होते ही राम और सीता लक्ष्मण के साथ पुष्पक विमान में सवार होकर अयोध्या की ओर रवाना हुए। साथ में विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, भामण्डल आदि राजा भी अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर चले।

रास्ते में राम ने सीता को उन सभी स्थानों को बताया जहाँ-जहाँ वे सीता को ढूढ़ते फिरे थे, जिन जगहों पर उन्होंने सीता के साथ निवास किया था।

अचानक नीचे एक सुन्दर नगरी को देखकर सीता ने राम से पूँछा कि यह कौन-सी अद्भुत नगरी है, जिसे मैंने आजतक नहीं देखा। राम ने कहा – यह तो अयोध्या है। सिलावटों ने इसे इसप्रकार मनोहर बना दिया है। अतः तुम पहचान नहीं पाई। इतने में ही दूर से भरत को आता देखकर उन्होंने विमान नीचे उतारा। भाई-भाई प्रेम से मिले। फिर भरत को भी विमान में चढ़ाकर वे नगरी की ओर बढ़े।

अयोध्यावासियों की प्रसन्नता का कोई ओर-छोर नहीं था। पूरी नगरी को दुल्हन की तरह सजाया गया था। वे पलकें बिछाए राम-लक्ष्मण का इन्तजार कर रहे थे। ज्यों

ही भरत के साथ सीता, राम और लक्ष्मण ने नगरी में प्रवेश किया, त्यों ही राम-लक्ष्मण की जय-जयकार से आसमान गूँज उठा। पीछे आते हुए विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, भामण्डल आदि को देखकर उनकी वीरता की चर्चा भी प्रजा आपस में कर रही थी।

इसप्रकार प्रजा का अभिनन्दन स्वीकार करते-करते जब वे राजमहल में पहुँचे तो माताओं ने उनका स्वागत किया। और वे बड़े गद्-गद् भाव से वर्षों से बिछुड़े अपने पुत्रों से मिलीं।

राम-लक्ष्मण के आने पर उदासचित्त भरत मुनिव्रत धारण करने को ज्यों ही उद्यत हुए,त्यों ही कैकेई के अनुरोध पर राम-लक्ष्मण उन्हें रोकने का प्रयत्न करने लगे। पर भरत अपने निश्चय पर अडिग रहे और बोले कि मैं आजतक मोह के बंधनों में जकड़ा हुआ था। राग तो आग है, जो कि हमेशा जलाती ही है। यह जानते हुए, समझते हुए भी मैं इसे अबतक छोड़ने में असमर्थ था, क्योंकि पिता की प्रतिज्ञा से बद्ध था, पर अब मैंने इस रागमार्ग को त्यागने का निश्चय कर लिया है, मैं तो अब वीतरागी मार्ग पर ही चलूँगा।

इसके पश्चात् वे माताओं और पत्नियों से बिदा लेने गए, सभी ने रोकने का बहुत प्रयास किया; पर जब भरत किसी तरह भी न रुके तो उनकी पत्नियों ने कहा कि आप हमारी अन्तिम इच्छा की पूर्ति कर दीजिए। हम सब आपके साथ जलक्रीड़ा करना चाहते हैं और वे भरत को सरोवर पर जलक्रीड़ा के लिए ले गईं। भरत सरोवर तट पर उनके साथ गए। सरोवर पर स्नान करने के पश्चात् भरत ज्यों ही तट पर आकर बैठे तभी मदोन्मत्त त्रैलोक्यमंडन हाथी अपने बंधन

तुड़ाकर अयोध्यावासियों को भयभीत करता हुआ सरोवर की ओर बढ़ा। भरत की ओर बढ़ते उन्मत्त हाथी को रोकने के लिए जबतक राम-लक्ष्मण आए, तबतक हाथी शांत हो चुका था। भरत को देखते ही हाथी को जातिस्मरण हो गया था और उसकी चंचलता, उद्दंडता समाप्त हो गई थी। फिर भी शंकित चित्त राम-लक्ष्मण धीरे-धीरे उसके पास गए और उसे पकड़ कर गजशाला में बांध दिया।

चार दिन बाद हाथी के महावत ने आकर राजा राम और लक्ष्मण से कहा कि आज चौथा दिन है। गजराज न कुछ खाता है, न पीता है, न सोता है, सर्व चेष्टारहित वह निश्चल बैठा है। उसका रोग गजवैद्यों की समझ में भी नहीं आ रहा है। अब आप ही कुछ उपाय कीजिए।

यह सुनकर राम विचार करते हैं कि अद्भुत पराक्रम का धारी , कैलाश को भी कम्पित करनेवाला दशानन का यह हाथी बन्धन तोड़कर बाहर क्यों निकला? फिर भरत के पास जाते ही क्यों शांत हो गया? और अब किस कारण आहार नहीं लेता है?

राम इसप्रकार सोच ही रहे थे कि द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि देशभूषण-कुलभूषण केवली महेन्द्रोदय वन में ससंघ आए हुए हैं। यह सुनकर चारों माताएँ, चारों भाई उनकी पत्नियाँ और समस्त प्रजाजन के साथ-साथ त्रैलोक्यमंडन गजराज भी केवली के दर्शन को गए। सभी ने उनके दर्शन कर उपदेश सुना। अन्त में लक्ष्मण ने हाथी के बारे में पूँछा कि महाराज त्रैलोक्यमंडन किस कारण क्षोभ को प्राप्त हुआ। किस कारण अकस्मात् ही शान्त हो गया।

केवली ने कहा कि यह हाथी पराक्रम की अत्यधिक उत्कृष्टता के कारण बंधन में क्षोभ को प्राप्त हुआ था। उसके

बाद भरत को देखकर पूर्वभव का स्मरण होने से शान्त हो गया।

विरक्त चित्त भरत ने अपने व हाथी के पूर्वभव सुनकर तुरन्त ही मुनिव्रत अंगीकार कर लिए। भरत के साथ-साथ अनेकों राजाओं ने भी दीक्षा ली। भरत को दीक्षा लेते देखकर भरत की माँ कैकेई बेहोश हो गई। होश में आने पर पृथ्वीमती आर्यिका के द्वारा समझाये जाने से प्रबोध को प्राप्त कैकेई ने भी उनके समक्ष ही आर्यिका के व्रत लिए।

त्रैलोक्यमंडन हाथी ने श्रावक के व्रत लिए। तथा १५-१५ दिन के उपवास मासोपवास करता हुआ, अंत में त्रैलोक्यमण्डन हाथी सल्लेखनापूर्वक इस देह का त्याग कर छठे स्वर्ग में देव हुआ।

महामुनि भरत महागुणों का पालन करते हुए बाईस परीषहों को सहते हुए दुर्द्धर तप करने लगे। जिनके प्रभाव से उन्हें अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हुईं, पर उनकी ओर से बे-खबर भरतमुनि ध्यान में ही मग्न रहे। जिससे उन्होंने शीघ्र ही कर्मशत्रु को नष्ट कर निर्वाण पद को प्राप्त किया।

भरत के दीक्षित होने पर राम-लक्ष्मण का मन राजकार्य में नहीं लगता था। जब भी राजसभा होती, व भरत के गुणों की चर्चा करते रहते। इसप्रकार कुछ दिन निकले।

कुछ दिनों पश्चात् भूमिगोचरी व विद्याधर राजा राम के पास आकर सविनय बोले कि हम सब अब आपका राज्याभिषेक करना चाहते हैं, अतः आप स्वीकृति दीजिए । इस पर राम ने अपनी असहमति प्रगट करते हुए उन्हें लक्ष्मण के पास भेज दिया। जब सभी राजा लक्ष्मण के पास गये तो लक्ष्मण ने राम के पास आकर कहा कि —आपका

अनुचर हूँ, उस पद के योग्य तो आप ही हैं। राम बोले— नहीं, नारायण तुम हो, त्रिखण्डी दशानन को तुमने मारा। अतः राज्याभिषेक तुम्हारा ही होना चाहिए। इसप्रकार काफी बहस के उपरांत जब कोई निष्कर्ष न निकला तो सभी राजाओं ने अंत में दोनों का ही राज्याभिषेक करने का विचार बनाया और शुभमुहूर्त में राम-सीता तथा लक्ष्मण-विशल्या का अभिषेक किया।



इसके पश्चात् राम ने विभीषण आदि राजाओं को विभिन्न राज्यों का राज्य दिया तथा शत्रुघ्न से कहा कि तुम्हें जो देश पसन्द हो, वह ले लो। तो शत्रुघ्न ने मथुरा का राज्य मांगा। यह सुनकर राम बोले कि वह अपने अधिकार में नहीं है। वहाँ दशानन का जँवाई मधु नामक शत्रु शासन करता है। उसके पास चमरेन्द्र द्वारा दिया हुआ कभी व्यर्थ न जाने वाला शूल रत्न है, जो हजारों के प्राण लेकर पुनः उसके हाथ में आ जाता है। और उसका पुत्र भी विद्याधरों का अधिपति महा शूरवीर है, जिसके बारे में विचार करते हुए चिन्तातुर हम लोग सारी रात सो नहीं पाते, उसे तुम कैसे जीत सकोगे?

यह सुनकर शत्रुघ्न ने कहा कि इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ? आप तो मुझे मथुरा दे दीजिए, मैं उसे स्वयं बाहुबल से ले लूँगा। बहुत समझाने पर भी जब शत्रुघ्न नहीं माने तो राम ने शत्रुघ्न से वचन लिया कि जब राजा मधु के हाथ में त्रिशूल रत्न नहीं होगा, तभी युद्ध करना। और शत्रुघ्न माता से विदा लेकर, जिनेन्द्र वंदना कर युद्ध के लिए निकल पड़े।

राम और लक्ष्मण उन्हें तीन मील तक छोड़ने गए। वापिस लौटते समय लक्ष्मण ने शत्रुघ्न को सागरावर्त धनुष और अग्निमुखवाण दिए और साथ में कृतांतवक्र सेनापति को भी भेजा।

मथुरा के पास पहुंचने पर शत्रुघ्न को गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हुआ कि राजा मधु छह दिन से अपनी रानियों के साथ उपवन में हैं। उसे शत्रु का कुछ भय नहीं है। वह न तो आपकी प्रतिज्ञा के बारे में जानता है, न ही आपके यहाँ आने के बारे में कुछ जानता है। यह जानकारी मिलने पर त्रिशूल रत्न रहित असावधान मधु को जीतने का उत्तम मौका जानकर शत्रुघ्न ने अर्द्धरात्रि में जाकर मथुरा पर कब्जा कर लिया।

दूसरे दिन सब समाचार ज्ञात होने पर राजा मधु शत्रुघ्न से युद्ध के लिए निकला और उसने अनेक प्रकार से मथुरा में घुसने का प्रयास किया, पर असफल रहा। युद्ध में मधु के बेटे का प्राणान्त हो गया। जिसे देखकर मधु को वैराग्य हो गया और वे हाथी पर चढ़े-चढ़े ही केशलोंच करने लगे। राजा मधु की वैराग्यप्रवृत्ति देखकर शत्रुघ्न ने युद्ध बंद किया और मुनि मधु को नमस्कार किया। मुनि मधु समाधिमरण द्वारा कुछ ही देर में सनतकुमार स्वर्ग में उत्तम देव हुए।

देखो, परिणामों की विचित्रता! क्षणभर पूर्व राज्य के लिए लड़ने-मरने को तैयार राजा मधु पलभर में ही वीतरागी मार्ग पर बढ़ गए।

शत्रुघ्न ने मथुरा में प्रवेश किया तथा राज्य करने लगे।

मधु की मृत्यु के पश्चात् त्रिशूल रत्न के अधिष्ठाता देव उसे लेकर चमरेन्द्र के पास गए तथा अत्यधिक खेद-खिन्न होकर चमरेन्द्र को पाताल से निकालकर महाक्रोधयुक्त हो मथुरा आने को तैयार हुए। तभी गरुणेन्द्र चमरेन्द्र के पास आये और पूँछा किस तरफ जा रहे हो? चमरेन्द्र ने कहा— जिसने मेरा मित्र मधु मारा है, उसे कष्ट देने को जा रहा हूँ। गरुणेन्द्र बोले कि तुमने विशल्या का माहात्म्य नहीं सुना क्या? चमरेन्द्र ने कहा कि वह अदभुत अवस्था तो विशल्या की कुमार-अवस्था में ही थी, अभी नहीं है। वह गरुणेन्द्र से विदा ले मथुरा आया। मथुरा में आने पर वहाँ के वासियों को वैसे प्रसन्नचित्त देखा जैसे कि मधु के राज्य में हो—यह देखकर चमरेन्द्र को उन पर बहुत गुस्सा आया कि नगर का स्वामी तो पुत्र सहित मृत्यु को प्राप्त हुआ और प्रजा दुःख मनाने की अपेक्षा खुशियाँ मना रही है; अतः अब मैं मथुरा का समूल नाश करूँगा। महाक्रोध के वश होकर चमरेन्द्र ने अनेक दुस्सह उपसर्ग किये, लोगों को भिन्न-भिन्न रोग लगाये। बहुत से लोग मर गए, जिसके भय से शत्रुघ्न अयोध्या आ गये।

भाई को विजय पाकर लौटता देखकर राम-लक्ष्मण ने स्वागत किया। कुछ दिन शत्रुघ्न वहीं रहे। पर मथुरा बिना उनका मन अयोध्या में नहीं लगता था। अतः वे बहुत उदास रहते थे।

कुछ समय पश्चात् चौमासे में सप्त चारणऋषि मथुरा के निकट वन में आए। तब उनके प्रभाव से मथुरा की विपत्ति दूर हुई। सब जगह फल-फूल खिलने लगे, रोग दूर हुए।

एक दिन वह आहार के लिए अयोध्या आए तो सेठ अर्हद्दास ने सोचा कि ये मुनि इच्छाविहारी लगते हैं, क्योंकि बरसात में तो मुनि विहार करते नहीं और इन्हें पहले कभी अयोध्या में देखा नहीं । इसलिए उन्होंने उन्हें आहार नहीं दिया; परन्तु उनकी पुत्रवधु ने उन्हें आहार कराया। आहार के पश्चात् सप्तऋषि मन्दिर में गए, वहाँ द्युति भट्टारक से उनकी चर्चा वार्ता हुई, फिर वे मथुरा वापिस चले गए। थोड़ी देर पश्चात् अर्हद्दास सेठ मन्दिर में आए और तब उन्हें पता चला कि वे तो महाऋद्धि के धारी चारणमुनि थे। तब सेठ को बहुत पश्चाताप हुआ। वे मन में सोचने लगे कि चारणऋद्धिधारी तो चौमासे में एक जगह निवास करते हैं और आहार अनेक नगरों में करते हैं। चारणऋद्धि के प्रभाव से उनके अंगों से जीवों को बाधा नहीं होती है। वे चारणऋद्धिधारी मुनि आजकल मथुरा में रह रहे हैं। यह जानकर सेठ अर्हद्दास उनके दर्शन के लिए रवाना हुए। शत्रुघ्न ने भी जब यह सुना कि मुनियों के आने से मथुरा का दुर्भिक्ष व बीमारी चली गई है तो वे अपनी माँ सुप्रभा के साथ मुनियों के दर्शन करने मथुरा गये।

शत्रुघ्न ने महाराज से कहा कि आपके आने से नगरी की महामारी गई, दुर्भिक्ष गया, सुभिक्ष हुआ, प्रजा के दुख दूर हुए, सर्वत्र समृद्धि हुई। अतः हम चाहते हैं कि आप कुछ दिन और यहाँ रहें। मुनिराज बोले – जिन-आज्ञा में जितना रहना कहा है उससे अधिक रहना उचित नहीं। यह चतुर्थ काल है। इसके बाद पंचमकाल में धर्म में न्यूनता होगी।

उस समय पाखण्डी जीवों द्वारा जिनधर्म आच्छादित होगा। पाखण्डी साधु दया धर्म को छोड़कर हिंसा के मार्ग पर प्रवर्तन करेंगे। महाकुधर्म में प्रवीण क्रूर दुष्ट जीवों द्वारा पशु पीड़ित होंगे, किसान दुःखी होंगे, प्रजा निर्धन होगी, हिंसा वढ़ेगी; पुत्र; माता-पिता की आज्ञा से विमुख होंगे और माता-पिता भी स्नेह रहित होंगे। कलिकाल में राजा लुटेरे होंगे, कोई सुखी नजर नहीं आएगा। उस समय कषाय की वहुलता होगी, चारणमुनि, देव, विद्याधरों का आना नहीं होगा, अज्ञानी लोग नग्न मुद्रा के धारक मुनियों को देखकर निंदा करेंगे, विषयी जीवों की भक्ति कर पूजेंगे। दीन-अनाथों की कोई दया नहीं करेगा और मायाचारी दुराचारियों को लोग पैसा देंगे।

अतः अभी तुम धर्मध्यान में अपना समय व्यतीत करो और जैसे भी धर्म की उन्नति हो वैसा कार्य करो।

इसके वाद मुनि तो आकाशमार्ग से विहार कर गये और शत्रुघ्न ने उनके कहे अनुसार नगरी के वाहर भीतर अनेक विशाल जिनमंदिर वनवाये और वहुत समय तक सुखपूर्वक राज्य करते रहे।

अठारहवाँ दिन

अयोध्या में सर्वत्र सुख शांति थी। राम-लक्ष्मण को पाकर प्रजा प्रसन्न थी। शत्रुरहित राम-लक्ष्मण सुखपूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे।

एक दिन रत्नपुर के राजा रत्नरथ की सभा में अपमानित नारद राजा रत्नरथ की पुत्री मनोरमा का चित्र लेकर लक्ष्मण के पास आये। चित्र देखते ही लक्ष्मण उस कन्या पर मोहित हो गए और वे मन में सोचने लगे कि यदि यह स्त्री-रत्न मुझे न मिली तो मेरा राज्य निष्फल है। उस कन्या के बारे में पूँछने पर नारद ने उन्हें बताया कि यह रत्नपुर के राजा रत्नरथ की मनोरमा नामक राजकुमारी है। इसके लिए योग्य वर की चर्चा चलने पर उनकी सभा में जब मैंने आपके नाम का प्रस्ताव रखा तो उनके पुत्रों ने क्रोधित होकर मेरा अपमान किया तथा बोले कि वे हमारे शत्रु हैं। हम उन्हें मारना चाहते हैं और तुम उसे कन्या देने की बात कर रहे हो। इतना सुनते ही स्वाभिमानी लक्ष्मण ने उनका मान भंग करने का निश्चय किया। अतः उन्होंने तुरन्त ही विराधित विद्याधर को बुलाकर कहा कि समस्त विद्याधरों को पत्र लिखकर बुलाओ। हम सभी रत्नपुर के लिए कूच करेंगे।

राम-लक्ष्मण अन्य सभी राजाओं व सेना को साथ लेकर रत्नपुर की ओर बढ़ चले। दोनों ओर की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। अन्त में विजय राम-लक्ष्मण की होती है और राजा रत्नरथ राम के साथ अपनी श्रीदामा नामक पुत्री व लक्ष्मण के साथ मनोरमा नामक पुत्री का विवाह कर सन्धि

कर लेते हैं। यह सब देखकर नारद राजा रत्नरथ की मजाक उड़ाते हैं तो राजा रत्नरथ नारद से कहते हैं कि आपका गुस्सा भी हमारे लिए उन्नति का कारण हुआ, अन्यथा बलभद्र नारायण के यहाँ हमारा संबंध कैसे होता?

इसके पश्चात् लक्ष्मण ने दक्षिण श्रेणी के समस्त विद्याधर जीते। इसप्रकार लक्ष्मण को सम्पूर्ण नारायण का पद प्राप्त हुआ। उनकी सेना में ४२ लाख हाथी, ४२ लाख रथ, ९ करोड़ घोड़े, ४२ करोड़ प्यादे थे। तीन खंड के देव और विद्याधर उनके सेवक थे। सूर्य से भी अधिक तेजस्वी १६ हजार मुकुटबद्ध राजा उनके आधीन थे। उनके घर अद्भुत रत्नों से बने थे। उनके शंख, चक्र, गदा, खड़ग, दण्ड नागशय्या, और कोस्तुभमणी – ये सात रत्न थे। १६ हजार रानियाँ थी, जिनमें ८ पटरानी थी, उनके नाम हैं – (१) विशल्या (२) रूपमती (३) वनमाला (४) कल्याणमाला (५) रतिमाला (६) भगवती (७) जितपद्मा और (८) मनोरमा। जिनमें आठ पटरानियों के आठ कुमार मुख्य थे।

राम के चार रत्न थे – हल, मूसल, रत्नमाला और गदा। ८ हजार रानियाँ थी, जिनमें ४ पटरानी थीं; उनेक नाम हैं – (१) सीता (२) प्रभावती (३) रतिप्रभा और (४) श्रीदामा।

राम की पटरानी सीता ने एक दिन पिछले प्रहर में दो स्वप्न देखे– (१) शरद के चन्द्रमा समान उज्ज्वल दो उत्कृष्ट अष्टापद, उनके मुख में आकर बैठे हैं (२) वह स्वयं पुष्पक विमान से जमीन पर गिर पड़ी। राम ने प्रथम स्वप्न का फल बताते हुए कहा कि तुम्हारे महाप्रतापी दो पुत्र होंगे तथा द्वितीय स्वप्न का फल अच्छा नहीं है। पर तुम चिन्ता न करो, दान के प्रभाव से दुष्ट ग्रह दूर हो जायेंगे।

कुछ दिनों पश्चात् गर्भवती सीता को जिनदर्शन करने की इच्छा हुई! राम ने आज्ञा दी कि मन्दिरों की अत्यधिक शोभा करो। हम सीता सहित धर्मक्षेत्रों में विहार करेंगे। लक्ष्मण व अन्य रानियों के साथ राम वन में स्थित जिनमन्दिर गए। सभी ने भक्तिभाव से जिनेन्द्र पूजन की और कुछ दिन वहीं रहे। तभी प्रजा के लोग राम के दर्शन की अभिलाषा से वहाँ पर ही आये। राम उनसे मिलने गए। तभी सीता की दाहिनी आँख फड़की।

नारी सुलभ भीरुता से युक्त सीता सोचने लगी– अनिष्ट की पूर्व सूचना देनेवाली यह दाहिनी आँख का फड़कना मुझे उस अघटनीय घटना की ओर सचेत कर रहा है, जिसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकती। मुझे हर परिस्थिति को सहजरूप से सहने को तैयार रहना चाहिए। पता नहीं कब, क्या और कौन-सी घटना हमारे साथ घट जाये? दंडक वन में लक्ष्मण की जरा-सी उत्सुकता से हम इसतरह दुर्घटनाओं के चक्र में फंस जायेंगे, इसकी क्या हमने कल्पना की थी? लंकाधिपति दशानन की कैद से छूटना भी तो कुछ स्वप्न सा ही लगता था। अब उससे बड़ी और क्या घटना घट सकती है मेरे जीवन में? जबकि मेरे पति का प्रेम व विश्वास मेरे साथ हैं। अब मुझे कैसी आशंका, कैसा भय? इसप्रकार सीता अपने को आश्वस्त करती है तथा अन्य रानियों के कहने पर दुष्ट ग्रहों की शांति हेतु वे भद्रकलश भंडारी को बुलाकर आज्ञा देतीं हैं कि जबतक मेरी प्रसूति न हो, तबतक किमिच्छक दान निरन्तर दो। इसप्रकार स्वयं शांतचित्त हो धर्मानुरागी हुई।

उधर राम ने प्रजाजन से आने का कारण पूछा, पर सभी डर के मारे मौन रहे। तब राम द्वारा अभय का आश्वासन देने पर उनमें से एक ने कहा कि दुनियाँ में अधिकतर लोग

सुनकर ही बातें कहते हैं देखकर कम। यह लोक स्वभाव से ही कुटिल है और एक उदाहरण मिल जाये तो इनको अकार्य करने में भय नहीं रहता। राम बोले — स्पष्ट कहो तो उसने कहा कि आजकल निर्वलों की यौवनवंत स्त्रियों को वलवंत पापी छिद्र पाकर बलात् हर लेते हैं और कुछ दिन रखने के बाद वापिस भेज देते हैं। ऐसा होने पर भी सब यही कहते हैं कि राम सर्व शास्त्रों में प्रवीण हैं तो भी उन्होंने दूसरों के घर रही सीता को अपने महल में रख लिया है तो दूसरों को क्या दोष दें? जिसप्रकार राजा करता है वैसा ही प्रजा करती है। इसप्रकार दुष्ट पुरुष निरंकुश होकर अबलाओं पर अत्याचार करते हैं। अब आप ही कुछ उपाय कीजिए। इतना कहकर वे प्रजा के प्रतिनिधि तो चले गये, पर राम के शांत जीवन में हल-चल मचा गए।

राम आज बहुत उद्विग्न थे, नींद उनकी आँखों से कोसों दूर भाग गई थी, अनगिनत विचारों में उनका मनपंछी तीव्रगति से विचरण कर रहा था। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ से कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें, क्या न करें? वर्षों वन में भटकने के बाद अभी तो सीता को थोड़ा-सा सुख मिला था और अब ...। जिसे पाने के लिए समुद्र को पारकर युद्ध में शत्रु को जीता और अब उसे ही कैसे तजूँ? पर कुल की अपकीर्ति के कारण उसे घर में भी नहीं रख सकता।

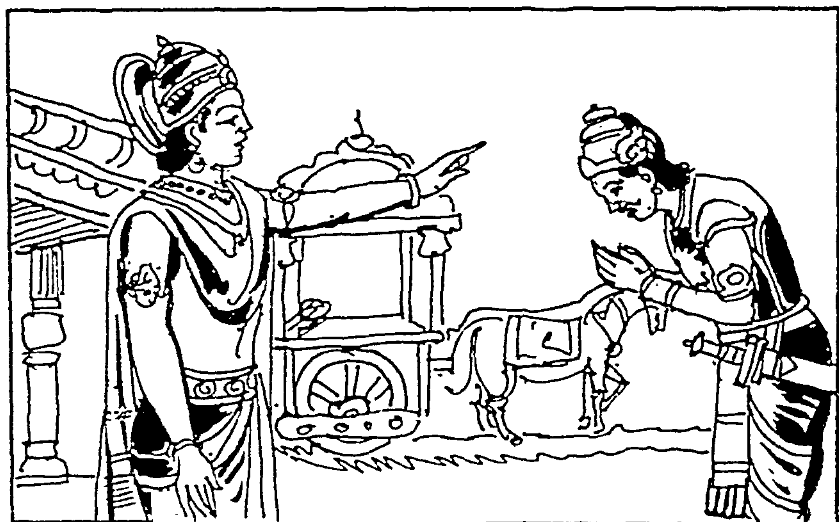
प्रश्न अकेली अपकीर्ति का ही नहीं है, अपितु एक गलत परम्परा चल पड़ने का है। यदि इस विषय में कुछ नहीं किया गया तो दूसरे घर में महिनों रही हुई नारियाँ भी कुलीन नारियों के समान कुलीन घरों में प्रतिष्ठा प्राप्त करती रहेंगी। ऐसी स्थिति में शील की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचेगा।

यद्यपि सीता पूर्ण पवित्र है, शीलवती है; पर इसका अनुकरण मात्र शीलवती नारियाँ ही थोड़े करेगी; शीलभ्रष्ट नारियाँ और व्याभिचारी पुरुष भी इसका दुरुपयोग करेंगे ही। अतः कुछ किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

इसप्रकार राम कुछ देर पहले प्रजा के कहे हुए शब्दों व घटनाओं के बारे में सोचते हुए विचारों के झूले में झूल ही रहे थे कि लक्ष्मण ने आकर उनका ध्यान भंग कर दिया और उनकी चिन्ता का कारण पूछने लगे।

राम ने सारा वृत्तान्त बताया, जिसे सुनकर लक्ष्मण क्रोधित होकर बोले कि जो ऐसे मिथ्यावचन कहेगा, उसकी मैं जिह्वा काट दूँगा। राम ने लक्ष्मण को शांत किया, फिर बोले कि यद्यपि सीता शीलवती है फिर भी मेरी कीर्तिरूप वन को जलानेवाली है और मैं अपनी कीर्ति मलिन नहीं करूँगा। अतः उसका त्याग ही एक मात्र उपाय है। लक्ष्मण ने कहा कि हे देव! लोक तो मुनियों का भी अपवाद करता है, जिनधर्म का भी अपवाद करता है; तो क्या आप लोकापवाद से धर्म छोड़ देंगे? नहीं, तो फिर सीता को त्यागना भी उचित नहीं है।

राम बोले— तुम्हारा कहना सत्य है, किन्तु जो न्यायमार्गी मनुष्य हैं, वे लोकविरुद्ध कार्य नहीं करते हैं, तब फिर लोकापवाद की बात तो दूर ही रही, मुझमें तो यह महादोष है कि मैं परपुरुष द्वारा हरी सीता को फिर से घर में लाया हूँ। यह सब सुनने के बाद भी लक्ष्मण ने बहुत समझाया, पर राम अपने निश्चय पर अटल रहे। उन्होंने कृतान्तवक्र सेनापति को बुलाकर कहा कि सीता को पहले सम्मेदशिखर आदि के दर्शन कराके निमानुष वन में छोड़कर आओ।



कृतान्तवक्र ने सिर नवाकर कहा कि हे देव! आपकी आज्ञा का पालन ही मेरा धर्म है। और सीता के पास जाकर कृतान्तवक्र बोला कि हे माता! उठो, रथ पर चढ़ो। आपके चैत्यालयों के दर्शन की इच्छा है सो चलें। यह सुनकर सीता प्रसन्नता से रथ पर चढ़ी। सीता को मन्दिरों के दर्शन कराकर निर्जनवन में रथ रोककर कृतान्तवक्र रोने लगा। सीता के द्वारा कारण पूँछने पर वह बोला कि अपकीर्ति के भय से राजा राम ने आपका त्याग किया है

यह सुनकर सीता बेहोश हो गई। होश में आने पर उन्होंने कहा कि तुम स्वामी से कहना कि परनिंदा के भय से आपने मुझे त्यागा तो कोई बात नहीं, किन्तु परनिंदा के भय से आप धर्म का त्याग कभी नहीं करना। मेरे त्याग से तो आपको एक भव में ही थोड़ा-बहुत दुःख होगा, पर धर्म के त्याग से अनन्त भवों में अनन्त दुःख उठाना होगा।

इसप्रकार राम द्वारा परित्यक्ता होने पर भी सीता राम का हित ही चाहती है, सो उचित ही है; क्योंकि जिसप्रकार

गन्ना निष्पीड़ित होने पर भी मुख में मिठास ही उत्पन्न करता है; उसीप्रकार कुलीन स्त्रियाँ भी अनुकूल वचनों द्वारा पति को शान्ति देनेवाली ही होती हैं, प्रताड़ित होने पर भी पति की हितैषी ही होती हैं।

कृतान्तवक्र अपने को धिक्कारता हुआ निर्दोष सीता को अकेली वन में छोड़कर अयोध्या लौट आया तथा सीता का समाचार और सन्देश राम को सुनाया, जिसे सुनकर राम शोकाकुल हुए। वे निर्दोष सीता को वन में भेजने पर पश्चाताप करने लगे। उन्होंने भद्रकलश भंडारी को बुलाकर कहा कि तुम जैसे सीता की उपस्थिति में उसकी इच्छानुसार किमिच्छिक दान करते थे, वैसे ही अभी भी करते रहो। सीता के वियोग से राम अन्दर से काफी अशान्त व व्याकुल रहते थे, पर ऊपर से शांत दिखने का प्रयास करते थे, मुस्कराते रहते थे।

उधर सीता होश में आने पर विलाप करती व फिर बेहोश हो जाती, होश आने पर फिर विलाप करती। इसप्रकार कितना समय बीत गया, उन्हें पता ही नहीं चला।

सीता के भाग्य से पुण्डरीकपुर का राजा बज्रजंघ हाथी पकड़ने उसी वन में आया व विलाप की आवाज सुनकर उस तरफ गया और सीता को देखकर उसने सीता से पूँछा कि हे देवी! तुम इस निर्जन वन में किसप्रकार आई हो और क्यों रोती हो?

तब उनके सान्त्वना के वचन सुनकर सीता बोली कि मैं राजा जनक की पुत्री व राजा दशरथ के पुत्र राम की पत्नी हूँ। दशानन के यहाँ रहने के कारण लोगों [illegible] पवाद किया, अतः अपकीर्ति के भय से श्री रामचंदजी ने [illegible] के बहाने यहाँ निर्जन वन में छुड़वा दिया [illegible]

तब राजा वज्रजंघ ने अपने मित्र जनक की पुत्री सीता को धैर्य बंधाया और उसे अपनी बहिन बनाकर अपने साथ राजमहल में ले गए। वहाँ पर सीता ने अपना सारा समय धर्मध्यान व दान-पुण्य में लगाया।

जब लव-कुश गर्भ में थे, तब सीता को अपनी आज्ञा का उल्लंघन असह्य था। वे दर्पण की अपेक्षा तलवार में अपना मुख देखना पंसद करती थीं, उन्हें संगीत अच्छा नहीं लगता था, अपितु धनुष चलाने की आवाज अच्छी लगती थी। इसप्रकार धीरे-धीरे समय बीतता गया और नौ मास पश्चात् सीता ने एक साथ दो पुत्रों को जन्म दिया। राजा बज्रजंघ ने पुत्रों के जन्म पर बहुत उत्सव किया, दान दिया और पुत्रों के नाम अनंगलवण और मदनांकुश रखे, जो जगत में लव-कुश नाम से प्रसिद्ध हुए। बड़े होने पर सिद्धार्थ नामक गुरु ने उन्हें शस्त्रविद्या में निपुण किया।

युवावस्था में इनके प्रबल तेज के सामने अन्य राजाओं का तेज फीका पड़ गया। वे राजा तेजरहित हो इनकी सेवा करने लगे। रूप और गुणों में दोनों भाई एक-दूसरे से बढ़कर ।

दोनों को यौवन सम्पन्न देखकर राजा बज्रजंघ ने अपनी शशिचूला रानी से उत्पन्न बत्तीस कन्याओं का विवाह लव से करने का विचार किया और कुश के लिए पृथ्वीपुर के राजा पृथु की पुत्री कनकमाला के लिए दूत भेजा। पर अनजान कुलवाले इन कुमारों से अपनी कन्या का विवाह उन्हें स्वीकार नहीं हुआ। तब राजा बज्रजंघ ने युद्ध की तैयारी की। लव-कुश ने युद्ध का कारण जाना तो स्वयं युद्ध के लिए निकल पड़े।

उन दोनों भाइयों के तेज के सामने राजा पृथु की सेना में क्षणमात्र में भगदड़ मच गई। उनके बाणों को सहने मे

असमर्थ पृथु भी भागने लगा। फिर पृथु ने उनसे क्षमा मांगी तथा वह बोला कि शूरवीरों का कुल उनके वाणों से ही जाना जाता है। अतः आप मेरी पुत्री कनकमाला को स्वीकार कीजिए।

इसके पश्चात् लव-कुश ने कई राजाओं को जीता, उन्हें वश में किया और राजा बज्रजंघ के साथ पुण्डरीकपुर वापिस आये।

एक दिन जब लव-कुश वन में क्रीड़ा कर रहे थे तो उन्होंने नारद को देखा। देवों द्वारा सन्मान प्राप्त नारद को प्रणाम करने पर नारद ने उन्हें आर्शीवाद दिया कि तुम्हारे राम-लक्ष्मण जैसी विभूति हो।

यह सुनकर उन दोनों ने पूछा कि राम-लक्ष्मण कौन हैं? किस कुल में उत्पन्न हुए हैं? उनके क्या गुण हैं? तब नारद बोले— बलभद्र-नारायण की यह कहानी तुमने अभीतक कैसे नहीं सुनी? राम को तो सम्पूर्ण लोक जानता है। राम-लक्ष्मण के गुण तो अपार हैं, फिर भी मैं उनकी कहानी संक्षेप में कहता हूँ ।

इच्छ्वाकुवंश में राजा दशरथ के चार पुत्र हुए—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। बड़े पुत्र राम का विवाह जनक की पुत्री सीता से हुआ। वे लक्ष्मण सहित पिता की आज्ञा से वन में गये, वहाँ दशानन छल से सीता को हर ले गया। फिर राम-लक्ष्मण ने सुग्रीव आदि राजाओं की सहायता से दशानन को युद्ध में जीता और सीता को लेकर अयोध्या वापिस आये। कुछ दिन सुख से रहने के पश्चात् प्रजा ने सीता का अपवाद करना आरम्भ किया और राम ने सीता को वनवास दे दिया।

तब कुश बोले कि राम ने अच्छा नहीं किया। राजा को कहना तो हर किसी का सुनना चाहिए, लेकिन सुनते ही

तब राजा वज्रजंघ ने अपने मित्र जनक की पुत्री सीता को धैर्य बंधाया और उसे अपनी बहिन बनाकर अपने साथ राजमहल में ले गए। वहाँ पर सीता ने अपना सारा समय धर्मध्यान व दान-पुण्य में लगाया।

जब लव-कुश गर्भ में थे, तब सीता को अपनी आज्ञा का उल्लंघन असह्य था। वे दर्पण की अपेक्षा तलवार में अपना मुख देखना पसंद करती थीं, उन्हें संगीत अच्छा नहीं लगता था, अपितु धनुष चलाने की आवाज अच्छी लगती थी। इसप्रकार धीरे-धीरे समय बीतता गया और नौ मास पश्चात् सीता ने एक साथ दो पुत्रों को जन्म दिया। राजा वज्रजंघ ने पुत्रों के जन्म पर बहुत उत्सव किया, दान दिया और पुत्रों के नाम अनंगलवण और मदनांकुश रखे, जो जगत में लव-कुश नाम से प्रसिद्ध हुए। बड़े होने पर सिद्धार्थ नामक गुरु ने उन्हें शस्त्रविद्या में निपुण किया।

युवावस्था में इनके प्रबल तेज के सामने अन्य राजाओं का तेज फीका पड़ गया। वे राजा तेजरहित हो इनकी सेवा करने लगे। रूप और गुणों में दोनों भाई एक-दूसरे से बढ़कर थे।

दोनों को यौवन सम्पन्न देखकर राजा वज्रजंघ ने अपनी शशिचूला रानी से उत्पन्न बत्तीस कन्याओं का विवाह लव से करने का विचार किया और कुश के लिए पृथ्वीपुर के राजा पृथु की पुत्री कनकमाला के लिए दूत भेजा। पर अनजान कुलवाले इन कुमारों से अपनी कन्या का विवाह उन्हें स्वीकार नहीं हुआ। तब राजा वज्रजंघ ने युद्ध की तैयारी की। लव-कुश ने युद्ध का कारण जाना तो स्वयं युद्ध के लिए निकल पड़े।

उन दोनों भाइयों के तेज के सामने राजा पृथु की सेना में क्षणमात्र में भगदड़ मच गई। उनके बाणों को सहने में

असमर्थ पृथु भी भागने लगा। फिर पृथु ने उनसे क्षमा मांगी तथा वह बोला कि शूरवीरों का कुल उनके वाणों से ही जाना जाता है। अतः आप मेरी पुत्री कनकमाला को स्वीकार कीजिए।

इसके पश्चात् लव-कुश ने कई राजाओं को जीता, उन्हें वश में किया और राजा बज्रजंघ के साथ पुण्डरीकपुर वापिस आये।

एक दिन जब लव-कुश वन में क्रीड़ा कर रहे थे तो उन्होंने नारद को देखा। देवों द्वारा सन्मान प्राप्त नारद को प्रणाम करने पर नारद ने उन्हें आर्शीवाद दिया कि तुम्हारे राम-लक्ष्मण जैसी विभूति हो।

यह सुनकर उन दोनों ने पूछा कि राम-लक्ष्मण कौन हैं? किस कुल में उत्पन्न हुए हैं? उनके क्या गुण हैं? तब नारद बोले— बलभद्र-नारायण की यह कहानी तुमने अभीतक कैसे नहीं सुनी? राम को तो सम्पूर्ण लोक जानता है। राम-लक्ष्मण के गुण तो अपार हैं, फिर भी मैं उनकी कहानी संक्षेप में कहता हूँ ।

इच्छ्वाकुवंश में राजा दशरथ के चार पुत्र हुए—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। बड़े पुत्र राम का विवाह जनक की पुत्री सीता से हुआ। वे लक्ष्मण सहित पिता की आज्ञा से वन में गये, वहाँ दशानन छल से सीता को हर ले गया। फिर राम-लक्ष्मण ने सुग्रीव आदि राजाओं की सहायता से दशानन को युद्ध में जीता और सीता को लेकर अयोध्या वापिस आये। कुछ दिन सुख से रहने के पश्चात् प्रजा ने सीता का अपवाद करना आरम्भ किया और राम ने सीता को वनवास दे दिया।

तब कुश बोले कि राम ने अच्छा नहीं किया। राजा को कहना तो हर किसी का सुनना चाहिए, लेकिन सुनते ही

सच-झूंठ की जाँच किये बिना सजा देना अनुचित है। यह नीतिज्ञों और कुलवंतों की रीति नहीं है। अपवाद दूर करने के अनेक उपाय हैं। उन उपायों से परीक्षा लेने के पश्चात् ही दण्ड देना योग्य था। केवल कथनमात्र से सीता दण्डनीय नहीं थी। हम सीता को न्याय दिलायेंगे।

युद्ध को उत्सुक लव-कुश ने पूछा कि यहाँ से अयोध्या कितनी दूर है। नारद बोले — एक सौ साठ योजन। तब दोनों कुमार बोले कि हम राम-लक्ष्मण से युद्ध करेंगे और सीता को न्याय दिलायेंगे। इस पृथ्वी पर ऐसा कौन है, जो हमसे अधिक प्रबल है।

उन दोनों ने राजा वज्रजंघ के पास जाकर कहा कि कलिंग, सिन्धु आदि सभी देशों को पत्र भेजो। हम शीघ्र ही अयोध्या की तरफ कूच करेंगे।

सीता ने जब यह सुना तो वे बहुत दुखी हुई तथा नारद से बोलीं कि यह तुमने क्या किया? पिता-पुत्र को वैरी बना दिया। नारद ने कहा मैं तो कुछ जानता नहीं था; बस, मैंने तो आर्शीवाद दिया। उन्होंने रामकथा पूँछी, मैंने बता दी। पर तुम चिन्ता न करो, जो होगा सो शुभ के लिए ही होगा।

दोनों भाइयों ने जब माँ को रोते देखा तो रोने का कारण पूँछा। सीता बोली कि तुम्हारा अपने पिता के साथ युद्ध करने की बात सुनकर ही रो रही हूँ, तब दोनों ने अपने पिता के बारे मे पूँछा। सीता ने स्वयंवर से लेकर वनवास, हरण व लव-कुश उत्पत्ति का सकल वृत्तान्त कह दिया और बोली कि तुम्हारा उनसे युद्ध सुनकर मैं चिन्तित हूँ, क्योंकि अब पता नहीं नाथ की अशुभ वार्ता सुनूँ या तुम्हारी या देवर की; अतः मुझे रोना आ रहा है।

दोनों ने कहा कि हे माता! आप तो "नारी सह सब लेती हैं, पर कहती कुछ नहीं हैं" का प्रतीक हैं। नारी का स्वभाव ही है कि वे प्रिय के दोषों को गौण कर उनका हित ही चाहती हैं; पर महा धनुषधारी विशालकीर्ति के धारक हमारे पिता ने आपको वन में छोड़ा– यह अच्छा नहीं किया। अतः हम उनका मान भंग अवश्य करेंगे, पर आपके कहे अनुसार हम उन पर घाव देनेवाले वाण नहीं छोड़ेंगे। अतः आप दुःख नहीं करें, निश्चिंत रहें।

सीता ने कहा कि वे तुम्हारे गुरुजन हैं, उनसे विरोध योग्य नहीं। तुम शांतचित्त होकर पिता को प्रणाम करो, यह नीतिमार्ग है।

लव-कुश ने कहा– हमारे पिता शत्रुभाव को प्राप्त हुए हैं,तो फिर हम किसप्रकार जाकर उन्हें प्रणाम करें और दीनता के वचन कैसे कहें कि हम तुम्हारे पुत्र हैं? यदि हम कहें भी कि हम आपके पुत्र हैं और उन्होंने हमें स्वीकार नहीं किया तो? अतः संग्राम में मरण अच्छा, पर कायर वचन हम कैसे कहें– यह सुनकर सीता चुप हो गई और दोनों पुत्र जिनेन्द्र वंदना कर और माता को धैर्य बंधा कर युद्ध के लिए निकल पड़े। •

उन्नीसवाँ दिन

जव लव और कुश अयोध्या के निकट पहुँचे तो राम-लक्ष्मण ने परचक्र को आया जानकर सुग्रीव आदि सभी राजाओं के पास दूत भेजे। सभी राजा सेना सहित शीघ्र ही आ गए।

नारद ने भामंडल के पास जाकर सीता मिलन के समस्त समाचार कहे, जिसे सुनकर भामंडल माता-पिता सहित पुण्डरीकपुर गये। कुशलक्षेम के उपरांत भामंडल ने सीता से कहा कि वलभद्र-नारायण के सामने कोई टिक नहीं सकता; अतः युद्धविराम में सहयोग के लिए तुम हमारे साथ चलो। सीता वहुओं के साथ भामंडल के विमान में वैठकर चल पड़ी।

सभी विद्याधरों और हनुमान ने जव लव-कुश को राम का पुत्र जाना तो वे युद्ध से विरक्त हो गये, पर लव-कुश से अपने संवंधों से अन्जान राम-लक्ष्मण वरावर युद्ध करते रहे। लव-कुश तो राम-लक्ष्मण को पिता व चाचा जानकर मर्मस्थल को वचाकर आक्रमण करते थे तथा राम-लक्ष्मण उन्हें शत्रु समझकर उन पर घातक वार करते थे।

इसप्रकार वहुत देर तक राम और लव, तथा लक्ष्मण और कुश में युद्ध होता रहा। अपने हर शस्त्र को कुश के ऊपर निष्फल देखकर क्रोधित होकर लक्ष्मण ने चक्र चला दिया, पर चक्ररत्न भी कुश के सामने प्रभावरहित हो गया। चक्ररत्न के निष्फल होने पर सभी सैनिक आश्चर्यचकित रह गये और सोचने लगे कि क्या ये दूसरे वलभद्र नारायण हैं?

पर जिनमुनि के कथन अन्यथा कैसे हो सकते हैं? फिर लक्ष्मण को भी सोच में देखकर नारद ने उनके पास जाकर कहा कि जिनवचन अन्यथा नहीं होते। ये तुम्हारे भतीजे हैं, सीता पुत्र हैं, यह तुम्हारे ही अंग हैं। इसलिए इन पर चक्रादिक शस्त्र नहीं चलते हैं। उन्हें सीता के पुत्र जानकर राम और लक्ष्मण उनसे गले मिले।

सीता पिता-पुत्र का मिलाप देखकर निश्चिंत हो प्रसन्नवदन पुण्डरीकपुर वापिस चली गई। भामंडल भानजों से आकर मिले। इसके पश्चात् राम पुत्रों सहित मन्दिर गये, फिर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया।

कुछ दिन पश्चात् हनुमान सुग्रीवादि ने सीता को वापिस बुलाने की प्रार्थना की। राम ने कहा कि लोकापवाद के कारण सीता को तजा था, अब बिना परीक्षा के ऐसे ही उसे कैसे बुलाऊँ? अतः अब सब देशों के सामंतों को बुलाओ तथा सभी के सामने सीता अपनी पवित्रता को प्रमाणित करे तो मैं उसे अपने साथ रख सकता हूँ।

यह सुनकर हनुमान आदि पुण्डरीकपुर जाकर सीता को ले आये।

अयोध्या के निकट महेन्द्रोदय उद्यान में सीता ने रात्रि व्यतीत की। दूसरे दिन जब सीता ने राज्यसभा में प्रवेश किया तो वहाँ उपस्थित सभी राजाओं ने सीता का यथायोग्य सम्मान किया।

सीता ज्यों ही राम के समीप जाने लगी तो उन्होंने राम को निष्चेष्ट देखा। राम को उदासीन देखकर वे मन में सोचती हैं कि अभी मेरे विरह के दिन समाप्त नहीं हुए हैं। मेरे स्वामी मुझसे अभी भी नाराज हैं; अतः इससमय उनके

पास जाना उचित नहीं है – ऐसा सोचकर वे दूर ही सामने खड़ी हो गईं।

सीता को सामने खड़ी देखकर राम गंभीरता से बोले– हे सीते! यद्यपि मैं तुम्हारी निर्दोषता को जानता हूँ, तथापि स्वभाव से कुटिलचित्त प्रजा को विश्वास दिलाकर तुम उनकी शंका दूर करो।

स्वामी के ऐसे विश्वसनीय वचन सुनकर प्रसन्नचित्त सीता ने कहा कि मैं हरप्रकार से परीक्षा देने को तैयार हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो मैं भंयकर विष पी जाऊँ अथवा अग्नि की ज्वाला में प्रवेश कर जाऊँ अथवा आपकी जो भी इच्छा हो, वह मैं करने को तैयार हूँ।

सोच-विचार कर राम ने सीता को अग्निपरीक्षा की आज्ञा दी। सीता ने उसे सहर्ष स्वीकार किया, पर हनुमान आदि बहुत चिंतित हुए और मन में सोचने लगे कि अग्नि का क्या भरोसा, वह तो जलाती ही हैं। अतः सभी ने मिलकर राम को इस कार्य से रोका। पर राम ने किसी की प्रार्थना पर ध्यान दिये बिना, नौकरों को अग्निवेदी बनाने की आज्ञा दी। इधर जब अयोध्या में अग्निवेदी बन रही थी, तभी अयोध्या के निकट महेन्द्रोदय उद्यान में सर्वभूषण मुनि को केवलज्ञान हुआ। अतः उनके दर्शन के लिए सभी देवतागण आ रहे थे। उन्होने सीता की परीक्षा के लिए तैयार अग्निकुंड देखा तो इन्द्र ने मेघकेतु नामक देव को महासती सीता के उपसर्ग को दूर करने की आज्ञा दी और स्वयं केवली के दर्शन को चले गये। इन्द्र की आज्ञा का पालन करने के लिए मेघकेतु देव अग्निकुंड के ऊपर आसमान में गुप्तरूप से बैठ गया।

अग्निवेदी तैयार थी, अग्नि की लपटों से सारा वातावरण तप्त हो रहा था। उपस्थित समस्त राजा प्रजा स्तब्ध थे।

सीता शनैःशनैः अग्निवेदी की ओर बढ़ रही थी। वे निश्चिंत थीं, कहीं कोई भय या व्याकुलता का अंश भी उनके चेहरे पर नजर नहीं आ रहा था; पर राम बहुत बेचैन थे। वे सोच रहे थे कि मैंने पतिव्रता शीलवती सीता को व्यर्थ ही अग्निप्रवेश की आज्ञा दी। अब मैं उसके बढ़ते कदम कैसे रोकूँ? यदि रोकता हूँ तो लज्जाजनक है और नहीं रोकता हूँ तो सीता का मरण अवश्यंभावी है, क्योंकि अग्नि का स्वभाव तो जलाना ही है। कोई भी स्त्री-पुरुष अग्नि का स्पर्श करेगा तो जलेगा ही ....।

इसप्रकार असहाय से हुए राम किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रह गये।

अग्निवेदी के पास पहुँचकर सीता ने तीर्थंकर को स्मरण कर कहा कि मन-वचन-काय से मैंने राम के अलावा अन्य किसी की भी अभिलाषा की हो तो अग्नि में मेरी देह दाह को प्राप्त हो। यदि मैं पतिव्रता अणुव्रतधारी श्राविका हूँ तो हे अग्नि! मुझे भस्म न करना। ऐसा कहकर णमोकार मंत्र का जाप करती हुई सीता ने अग्नि में प्रवेश किया, तभी मेघकेतु देव ने अग्निवेदी को जलकुंड में परिवर्तित कर दिया तथा इतना पानी किया कि सभी उपस्थित जन क्रमशः उसमें डूबने लगे। पानी को तीव्रगति से बढ़ता देखकर सभी भूमिगोचरी डर गये और पानी से रक्षा के लिए सीता से प्रार्थना करने लगे। सीता के कहने पर देव ने पानी रोका एवं उस सरोवर के मध्य में एक सिंहासन बनाया। जिस पर सीता बैठी, फिर लव-कुश सीता के पास तैर कर गये।

राम भी सीता के पास पहुँचे और उनसे अपने साथ महल में चलने का आग्रह किया। गुरु गंभीर सीता ने कहा कि हे नाथ! मैंने संसार के स्वरूप को अच्छी तरह समझ

लिया है, अब मेरी इच्छा मुक्तिपंथ पर बढ़ने की है; अतः मैं जैनेश्वरी दीक्षा धारण करूँगी।

यह सुनकर राम बेहोश हो गये और सीता ने पृथ्वीमती आर्यिका के पास जाकर दीक्षा ले ली।

इसप्रकार हम देखते हैं कि महासती शीलवती सीता को तीन बार वनवास भोगना पड़ा था।

पहली बार तो तब, जब वे अपने पति राम की अनुगामिनी बनकर राम-लक्ष्मण के साथ बन में गई थीं। तब उन्हें रावण के द्वारा हरी जाकर महाविपत्तियों का सामना करना पड़ा था।

दूसरी बार लोकापवाद के भय से पति द्वारा निर्जन वन में छुड़वा दिया गया था। तब भी गर्भवती सीता को अनेक कष्ट उठाने पड़े थे।

अब तीसरी बार स्वयं वैराग्य धारण कर सभी लौकिक सुविधाओं को ठुकरा कर, सभी परिजनों को छोड़कर वन में जा रही हैं।

वैराग्य बिना जो भी वन में जायगा, दुःख ही पायेगा। रागी चाहे भवन में रहे चाहे वन में जावे; दुःख ही पाते हैं। वैराग्य बिना सुख प्राप्त नहीं होता। अब महासती सीताजी वैरागी बन वन में जा रही हैं; अतः संकटों का कोई सवाल ही नहीं रहता।

पहली बार सास-ससुर के कारण वनवास मिला था, दूसरी बार प्राणप्रिय पतिदेव ने ही बिना बताये भेज दिया। जब सास-ससुर ने भेजा, तब पति और देवर का सहारा था; पर क्या हुआ सहारे से? आखिर रावण हर कर ले ही गया।

दूसरी बार जब पति ने भेजा, तब कोई सहारा भी न था; पर कोई हर कर नहीं ले गया; धर्मभाई बन कर सहारा देने वाला मिल गया।

अब तीसरी बार न कोई हरने वाला ही है और कोई न धर्म भाई ही आयेगा; अब तो धर्म ही सहारा है। वस्तुतः सच्चा सहारा तो धर्म ही है।

होश में आने पर सीता को पास में न देखकर राम शून्यचित्त हो गए और वे सोचने लगे कि प्रियजन का मरण अच्छा, पर वियोग नहीं। देवों ने सीता की सहायता की, वह तो अच्छा किया, पर अब यदि मेरी रानी को नहीं देंगे तो मेरा उनसे युद्ध होगा। लक्ष्मण के समझाने पर भी वे नहीं माने और क्रोधित होकर कुलभूषण केवली की गन्धकुटी को चले। दूर से ही गंधकुटी को देखकर राम का क्रोध शान्त हो गया। वे हाथी से उतरे, भगवान को नमस्कार कर उनकी तीन प्रदक्षिणा दी और उनके उपदेश का श्रवण किया। सीता भी आर्यिका बनी उनके उपदेश को सुन रही थी।



केवली के वैराग्यमय उपदेश को सुनकर राम ने केवली से पूँछा कि मैं किस उपाय से भवभ्रमण से छूटूँ? क्योंकि मैं रानियों सहित समस्त पृथ्वी का राज्य छोड़ सकता हूँ, पर भाई का स्नेह तोड़ने में समर्थ नहीं हूँ। उनके स्नेहरूपी समुद्र की तरंगों में डूबे मुझको आप निकलने का उपाय बताइये। इसके उत्तर में केवली भगवान की दिव्यध्वनि में आया— तूँ शोक मत कर, तूँ बलदेव है; अभी कई दिनों तक वसुदेव के साथ सुख से राज्य करेगा, फिर जिनेश्वर व्रत धारण कर इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेगा। केवली के मुख से राम का भविष्य जानकर सभी बहुत प्रसन्न हुए।

इसके पश्चात् विभीषण ने पूछा कि दशानन किस कारण से सीता को हर ले गया था? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का वेत्ता, अनेक शास्त्रों का पाठी, अनेक प्रधान गुणों से युक्त दशानन परस्त्री की अभिलाषा क्यों कर बैठा? लक्ष्मण ने इस धीर-वीर को संग्राम में क्यों मारा?

उत्तरस्वरूप केवली की वाणी में आया कि दशानन का जीव सीता के जीव पर अनेक भव से आसक्त था, पर उसे प्राप्त नहीं कर सका। अतः इस भव में भी दशानन के जीव ने सीता के जीव को प्राप्त करने की कोशिश की। राम और लक्ष्मण दोनों अनेक भव के भाई-भाई हैं तथा रावण के जीव का लक्ष्मण के जीव से अनेक भव से वैर है। अतः पूर्व के वैर के कारण लक्ष्मण ने दशानन को मारा। सीता ने पूर्वभव में मुनि का अपवाद किया था, अतः उनका अपवाद हुआ।

केवली के वैराग्यमय उपदेश को सुनकर कृतांतवक्र सेनापति ने राम से कहा कि मैं इस संसारचक्र से पार होना चाहता हूँ। अतः मुझे मुनिव्रत धारण की इच्छा है। राम ने बहुत समझाया कि तुम ने कभी दुःख नहीं सहे, अब वन

की विषम-भूमि में कैसे रहोगे? वहाँ के दुःख कैसे सहोगे? तुम शत्रु सेना के ऊँचे शब्द नहीं सह सकते, तुमसे नीच लोगों द्वारा किया गया अपमान कैसे सहन होगा? राम के बहुत समझाने पर भी कृतांतवक्र जब अपने निश्चय पर अटल रहे, तब राम ने उनसे कहा कि यदि कदाचित् तुम्हें इस जन्म में मोक्ष न हो और तुम देव हो तो संकट में आकर मुझे सम्बोधना। यदि तुम मेरा कुछ भी उपकार मानते हो तो देवगति में मुझे मत भूलना।

कृतांतवक्र बोला– हे स्वामी! जैसी आपकी आज्ञा। इतना कहकर वे अंतर-बाह्य परिग्रह का त्यागकर दिगम्बर मुनि हो गये। तदनन्तर राम समस्त साधुओं को नमस्कार कर सीता के पास आए। वैराग्यमयी सीता को देखकर वे आश्चर्यचकित रह गये। वे मन में सोचते हैं कि कायर स्वभाववाली मेघ गर्जना से भी डरनेवाली सीता अब महाभयंकर वन में कैसे रहेगी? कहाँ यह कोमल शरीर और कहाँ दुर्धर जिनराज का तप? मेरी भूल थी जो मैंने इस महासती को अपकीर्ति के भय से घर से निकाला। पर अब मैं कर ही क्या सकता हूँ? अब यह जिस मार्ग पर बढ़ चुकी है, उससे इसे लौटाना मुश्किल है। अभी-अभी मैंने दिव्यध्वनि में सुना भी था कि "जो होना है सो निश्चित है" अतः जब सीता के भाग्य में वनवास ही है तो वह महलों के सुख कैसे भोग सकती है? इसप्रकार केवली के उपदेश को याद कर मन में धैर्य धारण कर उन्होंने सीता को नमस्कार किया; लक्ष्मण और लव-कुश ने भी उनका यथोचित सम्मान किया और वे सभी अयोध्या लौट आये।

सीता ने बहुत कठिन तपस्या की। अनेक उपवासों से उनका शरीर क्षीण हो गया। शरीर-संस्कार रहित, अत्यन्त

शांतचित्त सीता उग्रतप करने लगी। अपने अध्ययन-मनन के बल पर वह सभी आर्यिकाओं में प्रमुख हुई। उन्होंने ६२ वर्ष तक तप किया, फिर आयु के ३३ दिन शेष रहने पर सल्लेखना धारण कर देह का त्याग किया, स्त्रीलिंग को छेदकर वे अच्युत नामक सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई।

वहिन सीता को आर्यिका देखकर भामंडल का मन भी विरक्त हो उठा; पर अपने अन्दर की कमजोरी से वे स्वयं दीक्षा न ले सके। इसप्रकार वर्षों बीत गए।

फिर वहिन के समाधिमरण की सूचना सुनकर वे सोचते हैं कि मैं जिनदर्शन, पूजा आदि नित्य करता हूँ, मुनियों को आहार भी देता हूँ; पर दीक्षा कैसे लूँ? यदि मैने दीक्षा ली तो मुझमें आसक्त मेरी पत्नियाँ दुःखी होंगी और उनके वियोग में मैं भी जीवित न रह पाऊँगा। फिर अभी मेरी उम्र ही क्या है, वुढ़ापे में दीक्षा ले लूँगा। इसप्रकार अपने को समझाते हुए वह अपनी पत्नियों के साथ भोगों में ही रमे रहे।

एक दिन जव वह महल के ऊपर सो रहे थे, तभी महल पर विजली गिरी और वे तुरन्त मर गये। उत्तम परिणामों के कारण वे उत्तम भोगभूमि में गए।

अपनी हजारों स्त्रियों से रमण करते हुए हनुमान ने जव भामण्डल की दुखद मृत्यु के समाचार सुने तो वे उद्विग्न हो उठे। अपने मन को शान्ति प्रदान करने के लिए रानियों सहित वे सुमेरुपर्वत पर स्थित जिनमंदिरों के दर्शनों को गये। सुमेरुपर्वत पर हनुमान की रानियों ने रत्नों के चूर्ण से माड़ना माड़ा, फिर सभी ने एक साथ में जिनेन्द्र-पूजन की।

रात्रि में हनुमान आसमान की ओर देख रहे थे कि उन्हें एक तारा टूटता हुआ दिखाई दिया। जिसे देखकर वे विचारने

लगे कि मैं इस विनाशीक राज्यसम्पदा स्त्री-पुत्रादि में रमा हुआ हूँ, पर यह सब क्षणिक हैं, कभी भी नष्ट हो सकते हैं; अतः यह उत्तम जैन कुल पाकर मुझे ऐसा कुछ करना चाहिए कि जिससे अविनश्वर पद की प्राप्ति हो।

प्रातःकाल हनुमान के वैराग्य के समाचार रणवास में पहुँचे तो रानियाँ विलाप करने लगी। हनुमान ने उन्हें समझाकर शांत किया, समस्त पुत्रों को यथाक्रम से राज्यधर्म में लगाकर हनुमान ने धर्मरत्न नामक मुनिराज से जिनदीक्षा ले ली। हनुमान के साथ सात सौ अन्य बड़े राजा भी मुनि हुए एवं रानियों ने बंधुमती आर्यिका के पास जाकर आर्यिका के व्रत लिए।

कुछ समय पश्चात् हनुमान ने तुंगगिरि पर ध्यान लगाया और अष्टकर्मों को भस्म कर वे सिद्ध हो गये। •

बीसवाँ दिन

राम-लक्ष्मण के दिन सुखपूर्वक व्यतीत हो रहे थे। सभी ओर सुख-शांति थी।

एक दिन कांचनस्थल नामक नगर के कांचनरथ नामक राजा ने अपनी दो पुत्रियों के स्वयंवर का आमंत्रण राम-लक्ष्मण के पास भेजा; जिसमें सम्मिलित होने के लिए राम-लक्ष्मण ने अपने सभी पुत्रों को भेज दिया।

स्वयंवर में उन दोनों राजकुमारियों में से बड़ी ने लव को तथा छोटी ने कुश को वरण किया।

यह देखकर लक्ष्मण की आठ पटरानियों के आठ पुत्रों को छोड़कर शेष दौ सौ पचास पुत्रों को उन कन्याओं पर बहुत गुस्सा आया। वे सोचने लगे कि हम नारायण के पुत्र [illegible] हम में क्या कमी थी, जो उन्होंने हमें छोड़कर सीता [illegible] पुत्रों का वरण किया। चलो, आक्रमण करते हैं। अपने [illegible] को युद्ध के लिए उत्सुक देखकर आठों बड़े भाइयों ने उन्हें समझाकर शान्त किया। स्त्रियों के लिए भाइयों में झगड़ा देखकर उन आठों कुमारों को वैराग्य हो गया और राम-लक्ष्मण की आज्ञा लेकर उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

वे अंतर-बाह्य परिग्रह का त्याग कर विधिपूर्वक ईर्यासमिति का पालन करते हुए विहार करने लगे और कुछ दिन पश्चात् आत्मलीनता की दशा में शुभाशुभ कर्मों का नाश कर अनंतसुखरूप सिद्धपद को प्राप्त हुए।

राम और लक्ष्मण ने जब हनुमान व अष्टकुमारों के वैराग्य के बारे में सुना तो राम हँसकर बोले— इन लोगों ने मनुष्यभव के क्या सुख भोगे? इस छोटी अवस्था में उपलब्ध भोग तज कर योग धारण करने का क्या औचित्य है? इसप्रकार विचार करते हुए राम संसार के सुख भोगते हुए लक्ष्मण के साथ न्याय सहित राज्य करते रहे।

अनुराग ने पूँछा— गुरुजी, हमने तो सुना है कि राम-लक्ष्मण के शव को लेकर छह माह तक घूमते रहे, लक्ष्मण को क्या हो गया था? उनका मरण कैसे हो गया था?

गुरुजी ने कहा— एक दिन स्वर्ग में इन्द्र अपनी सभा में तत्त्वचर्चा कर रहे थे, तब तत्त्वचर्चा करते हुए वे बोले कि वह दिन कब आयगा, जब मैं स्वर्ग की स्थिति पूर्ण कर मनुष्यभव प्राप्त कर मुनिव्रत धारण करूँगा?

यह सुनकर एक देव बोला— यहाँ स्वर्ग में तो अपनी यही बुद्धि होती है, पर मुनष्यदेह प्राप्त कर हम यह सब भूल जाते हैं। यदि मेरे वचन पर विश्वास न हो तो पूर्व के पंचम स्वर्ग के ब्रह्मेन्द्र नामक इन्द्र जो कि अभी रामचन्द्र हैं, उनको ही देख लो। वे यहाँ तो यही कहते थे, पर अब वैराग्य का विचार तक नहीं करते।

सौधर्म इन्द्र ने कहा— सब बंधनों में स्नेह का बंधन बड़ा मजबूत है। यदि अंग-अंग बंधा हो तो व्यक्ति छूट सकता है, पर स्नेहबंधन से बंधा हुआ जीव एक अंगुल भी नहीं जा सकता।

लक्ष्मण को राम से अति अनुराग है, राम को देखे विना लक्ष्मण को तृप्ति नहीं, वे अपने प्राणों से भी अधिक राम

को चाहते हैं; अतः ऐसे भाई को तजकर राम कैसे वैराग्य को प्राप्त हों?

यह वार्ता सुनकर सभा में उपस्थित रत्नचूल और मृगचूल नामक देवों ने सोचा कि हम चलकर उन दोनों की परीक्षा लें। देखें कि जो भाई राम से एक दिन भी जुदा नहीं रह सकता, वह राम का मरण सुनकर क्या करता है, शोक में विह्वल नारायण की चेष्टा क्या होती है? ऐसा सोचकर दोनों अयोध्या आये और विक्रिया कर समस्त अंतःपुर की स्त्रियों का रुदन शब्द कराया और विक्रिया द्वारा बताया कि समस्त द्वारपाल, मंत्री, पुरोहित नीचा मुख किये हुए लक्ष्मण के पास आये और उन्होंने राम के मरण के समाचार सुनाये, जिन्हें सुनकर लक्ष्मण ने "हा" कहा और प्राण त्याग दिये। यह देखकर दोनों देव घबड़ा गए। लक्ष्मण को जिलाने का काफी प्रयास किया, पर बाद में यह सोचकर कि इनकी मृत्यु इसी निमित्त से होनी होगी, अपने-आप को संतोष दिलाकर चले गए।

जब यह खबर रनवास में पहुँची तो रानियों ने सोचा कि उनके पति ने किसी बात पर नाराज होकर यह सब अपनी दिव्य माया से किया है। अतः वे सभी उन्हें अनेक प्रकार से मनाने का प्रयास करने लगीं। बहुत देर के पश्चात् भी जब लक्ष्मण वैसे ही रहे तो उन्हें संशय होने लगा।

प्रतिहारी से सब समाचार सुनकर राम भी सभी मंत्रियों के साथ वहाँ आये। यद्यपि वे लक्ष्मण में मृतक के सभी चिन्ह देख रहे थे, फिर भी स्नेहवश उसे जीवित ही समझ रहे थे। पीला मुख, शिथिल शरीर एवं समस्त चेष्टाओं से रहित लक्ष्मण को देखकर वे कहते हैं कि तुम्हें कहीं चोट भी नहीं है, फिर इसप्रकार अचेत से क्यों पड़े हो, उठते क्यों नहीं?

उठो आँखें खोलो। देखो, तुम्हारी यह दशा देख कर सभी लोग कितने विह्वल हो रहे हैं। ऐसे तो तुम कभी नहीं रूठे, आज क्यों हम सबको व्याकुल करने को कटिबद्ध हो रहे हो। अरे, भाई! तुम जो कहोगे, हम सब वही करने को तैयार हैं; अब देर न करो, जगत को व्यर्थ का तमाशा मत दिखाओ; उठो, जल्दी उठो आदि नानाप्रकार से उलाहना देते हुए उन्होंने शीघ्र ही कुशल वैद्यों को बुलवाया।

जब उन्होंने समुचित परीक्षा कर उन्हें मृतक घोषित कर दिया तो राम बेहोश हो गए। अंतपुर में शोक की लहर फैल गई।

जब लव-कुश ने विद्याधरों से भी न जीते जानेवाले वासुदेव को भी पलभर में काल का ग्रास बनते देखा तो वे तुरन्त ही इस विनश्वर राजसंपदा का त्याग कर महेन्द्रोदय उद्यान में जाकर अमृतेश्वर मुनिराज से दीक्षित हो गये।

राम को तो किसी बात की चिन्ता ही नहीं थी, वे लक्ष्मण के शरीर के साथ ही रहते। उसे राम एक क्षण को भी नहीं छोड़ते और उस शरीर से नानाप्रकार की बातें करते, उलाहना देते कि तूने आज तक मेरी आज्ञा भंग नहीं की, फिर आज क्यों मेरी बात नहीं सुनता, मुझसे बोलता क्यों नहीं? जल्दी उठो, मेरे पुत्र वन को गए, दूर नहीं हैं, चलो हम उन्हें लौटा लायें। अरे, उठते क्यों नहीं? चलो उठो, अब जिनदर्शन करने जाना है, अब मुनियों के आहार का समय है– इसप्रकार प्रतिदिन की दिनचर्या की बातें करते रहते। रात में अपनी बाहों में लेकर ही सोते और उठने पर पुरानी बातों को दुहराते हुए नानाप्रकार से विलाप करते।

उक्त समस्त समाचार सुनकर विभीषण, विराधित, सुग्रीव आदि सभी अपने समस्त परिवार सहित शीघ्र अयोध्या आए

और राम को नमस्कार कर राम से धीरे से विनयपूर्वक बोले कि आप जिनवाणी के ज्ञाता हैं, संसार का स्वरूप जानते हैं; इसलिए आपको यह शोक छोड़ना चाहिए। विभीषण ने कहा कि यह तो अनादिकाल से चला आ रहा है कि जो जन्मता है वह मरता है, यह शरीर विनाशी है; अतः शोक करना व्यर्थ है। इसलिए हमें आत्मकल्याण का उपाय करना चहिए।

इसप्रकार अनेक तर्कों से उन्हें समझाते रहे, पर राम पर उसका कोई असर न हुआ। वे लक्ष्मण के मृतक शरीर को छोड़ने को तैयार नहीं हुए, न ही उनकी दग्धक्रिया करने दी। जो दग्धक्रिया की बात करता, उस पर क्रोधित हो उठते, उसको शत्रु समझते। लक्ष्मण के शव को अपने कंधे पर उठाकर चलते, किसी पर विश्वास नहीं करते। अपने हाथों से उसे नहाते, तैयार करते, उसे दूध पिलाने की, खाना खिलाने की भी कोशिश करते।

जब यह वृत्तान्त सारे राज्यों में फैला कि लक्ष्मण मर गए, लव-कुश मुनि हो गए और राम की दशा पागलों-सी हो गई है तो समस्त वैरी फिर सिर उठाने लगे। खरदूषण के बड़े पुत्र शंबूक के भाई सुन्द के पुत्र चारुरत्न ने इन्द्रजीत के पुत्र व्रर्णमाली के पास आकर कहा कि हमारे पिता और दादा दोनों को — लक्ष्मण ने मारा है, हमारी पाताल लंका छीनी; अतः रघुवंशी हमारे शत्रु है, अभी लक्ष्मण को मरे ग्यारह पक्ष हो गये हैं, बारहवाँ लगा है, राम पागल-सा हो रहा है, भाई के मरे शरीर को कंधे पर लिए घूमता रहता है। अभी वह शस्त्र उठाने में समर्थ नहीं है; अतः अभी अयोध्या पर आक्रमण करने का सुनहरा मौका है। इसप्रकार इन्द्रजीत के बेटे व सुन्द के पुत्र ने मिलकर रणभेरी बजा

दी और अयोध्या की ओर कूच कर दिया। यह सुनकर सुग्रीव आदि सभी अधीनस्थ राजा राम के पास गए तो राम लक्ष्मण को कंधे पर लिये हुए ही लड़ने को निकल पड़े।

उस समय कृतांतवक्र व जटायु के जीव (जो स्वर्ग में देव हुए थे) के आसन कम्पायमान हुए, अवधिज्ञान जोड़ने पर जटायु के जीव को शत्रु द्वारा राम पर आई हुई विपत्ति का ज्ञान हुआ; अतः वह बहुत गुस्से में था। यह देखकर कृतांतवक्र के जीव ने जटायु के जीव से पूँछा कि आज तुम क्रोधित क्यों हो? तो उसने कहा कि जब मैं जटायु था तो राम ने मुझे बेटे की तरह पाला और जिनधर्म का उपदेश दिया, मरण समय णमोकार मंत्र सुनाया; जिस कारण मैं देव हुआ। अभी वे तो भाई के मरण के शोक में संतप्त है और शत्रु सेना उनपर चढ़ाई कर रही है; तब कृतांतवक्र के जीव ने अवधिज्ञान जोड़कर कहा कि हे मित्र, पिछले भव में वे मेरे स्वामी थे। मैं उनका सेनापति था। जब मैंने मुनिव्रत लिया तो उन्होंने मुझसे कहा था कि आपत्ति में मेरी सहायता करना. अतः चलो मैं भी चलता हूँ। चौथे स्वर्ग से वे दोनों देव अयोध्या आए।

कृतांतवक्र के जीव ने जटायु के जीव से [illegible] शत्रुसेना की ओर जावो और उनकी बुद्धि हरो [illegible] के समीप जाता हूँ। तब जटायु के जीव ने शत्रुसेना [illegible] किया तथा माया से ऐसा दिखाया कि अयोध्या [illegible] पीछे दुर्गम पहाड़ हैं, अयोध्या सुभटों से [illegible] आकाश से लगे हैं, अयोध्या के अन्दर [illegible] भरे पड़े हैं। वे शत्रु से जीते नहीं जा [illegible] यह सब देख अपनी जान बचाने के लिए [illegible] भगदड़ मच गई, पर उन्हें भागने का [illegible]

देता था, तब देव ने अपनी विक्रिया द्वारा दक्षिण दिशा में भागने का मार्ग बनाया।

कुछ दूर जाकर इन्द्रजीत के पुत्र ने सोचा कि अब हम विभीषण को क्या उत्तर देंगे और लोक में क्या मुँह दिखायेंगे? यह सोचकर लज्जावान होते हुए सुन्द के पुत्र और इन्द्रजीत के पुत्र ने रतिवेग नामक मुनि के निकट जाकर दीक्षा ले ली। तब जटायु के जीव (देव) ने उन मुनियों के दर्शन कर अपना समस्त वृत्तान्त कहा तथा माफी माँगकर अयोध्या लौट आया।

अयोध्या आकर उसने राम को लक्ष्मण के वियोग में बालकों-सी चेष्टा करते देखा।

उन्हें समझाने के लिए कृतांतवक्र का जीव सूखे वृक्ष को पानी से सींचने लगा। जटायु का जीव भी मरे हुए बैलों पर हल रखकर शिला के ऊपर बीज बोने का प्रयास करने लगा। कुछ समय बाद कृतांतवक्र का जीव जल से भरे मटके को बिलोने लगा और जटायु का जीव बालू को पानी में पेलने लगा।

इसप्रकार अनेक प्रकार के निरर्थक कार्य उन दोनों देवों ने राम के सामने किए। यह देखकर राम उन दोनों से क्रमशः बोले— तुम तो बहुत मूर्ख हो, सूखे वृक्ष में पानी सींचने से क्या होगा? और क्या मरे हुए बैलों से भी हल चलाया जा सकता है? इसीप्रकार शिला के ऊपर बीज बोने से क्या होता है और बालू को पेलने से तेल नहीं निकलता? अतः ये सब कार्य व्यर्थ हैं, निष्फल हैं।

तब वे दोनों बोले कि तुम भी भाई के मरे हुए शरीर को लेकर घूमते हो, उससे क्या फायदा? यह सुनकर लक्ष्मण के शरीर को गाढ़ आलिंगन करते हुए राम क्रोधित होकर

बोले कि तुम मेरे भाई के लिए अनर्गल शब्द क्यों कहते हो? इसप्रकार कृतांतवक्र के जीव (देव) में और राम में विवाद चल ही रहा था कि जटायु का जीव एक मुर्दा को सिर पर लेकर आया; तब राम बोले—मुर्दा को सिर पर रखकर क्यों घूमते हो? तो जटायु का जीव बोला कि तुम तो प्रवीण हो, तुम क्यों प्राणरहित लक्ष्मण के शरीर को लिए फिर रहे हो? अपना तो पहाड़ जैसा दोष दिखता नहीं और दूसरों का अणुमात्र दोष भी नजर आता है। हम दोनों एक जैसे हैं; अतः मुझे तुमसे अधिक प्रेम उपजा है। वृथा काम करनेवाले हम लोगों में तुम मुख्य हो। हम उन्मत्त हैं और तुम उन्मत्तों के सरदार हो। इसलिए हम तुम्हारे पास आए हैं।

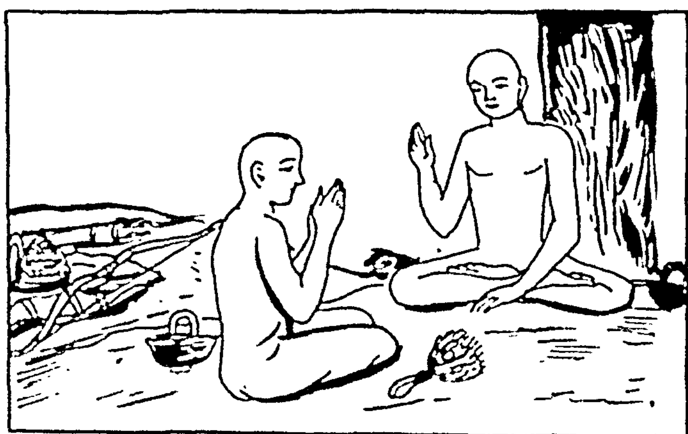
इसप्रकार उन दोनों देव मित्रों के वचन सुनकर राम का मोह भंग हुआ। उन्हें तत्त्वज्ञान मिला, वे मन में सोचते हैं कि मनुष्य का जीवन तो क्षणमात्र में नष्ट हो जाता है। चर्तुगति संसार में भ्रमण करते मैंने अत्यंत कठिनाई से मनुष्य भव पाया है और इसे मोह में व्यर्थ ही खोया। इस संसार में भाई, पुत्र, स्त्री आदि ये तो क्षणमात्र में विघटित हो जानेवाले हैं।

राम को प्रतिबुद्ध देखकर दोनों देव माया दूर कर अपने असलीरूप में आ गए और लोगों को आश्चर्य प्रदान करनेवाली स्वर्ग की विभूति दिखाने लगे। फिर राम से बोले – आपने इतने दिन राज्य किया और सुख पाया तो राम बोले – राज्य में काहे का सुख। यहाँ तो अनंतव्याधि है, जो इसे तज कर मुनि हुए, वे ही सुखी हैं। पर ये तो बताओ महासौम्यवदन तुम कौन हो? और तुमने किस कारण मुझ पर इतना उपकार किया है? तब दोनों ने कहा कि मैं जटायु का जीव हूँ, जो तुम्हारे द्वारा दिये गए णमोकार मंत्र से चौथे स्वर्ग में देव हुआ और यह आपके सेनापति कृतांतवक्र का जीव है।

राम ने कहा – तुम दोनों मेरे परम मित्र हो, तुमने मुझे संबोधा – यही तुम्हारे योग्य था।

फिर उन्होंने सरयू नदी के किनारे लक्ष्मण की दाहक्रिया की व शत्रुघ्न को राज्यतिलक करने की इच्छा से उनसे बोले कि मैं तो मुनिव्रत धार सिद्ध पद प्राप्त करना चाहता हूँ, तुम इसे सम्हालो। तब शत्रुघ्न बोले – मैं भी भोगों का लोभी नहीं हूँ, मैं तो तुम्हारे साथ ही मुनिव्रत धारण कर सिद्धपद प्राप्त करना चाहता हूँ। तब राम ने अनंगलवण के पुत्र अनन्तलवण को राज्य दिया और दीक्षा लेने हेतु चल दिये। राम के साथ ही विभीषण, सुग्रीव आदि ने भी अपना-अपना राज्य अपने-अपने बेटों के देकर दीक्षा ले ली।

जब रामचन्द्रजी ने चारणऋद्धि के धारी सुव्रत, महाव्रत मुनिराज के पास जाकर जिनदीक्षा ली; तब देवों ने पंचाश्चर्य किए। कृतांतवक्र व जटायु के जीव ने भी परम-उत्सव किए।



राम के अधीनस्थ अन्य विद्याधर, भूमिगोचरी सभी राजा मन में विचारते हैं कि जब पृथ्वीपति राम पृथ्वी को त्यागकर मुनि हुए तो हमारा तो क्या परिग्रह है, जिसके लोभ से हम घर में रहें – इसप्रकार राम के साथ-साथ सोलह हजार से कुछ अधिक राजा मुनि हुए व सत्ताईस हजार रानियाँ आर्यिकायें हुईं।

इक्कीसवाँ दिन

कुछ दिन पश्चात् राम गुरु की आज्ञा से एकलविहारी हुए और सघनवन में ध्यान करते हुए उन्हें अवधिज्ञान हुआ, जिससे उन्हें परमाणुपर्यंत दिखाई देने लगा। लक्ष्मण के भी अनेक भव दिखे, पर मोह टूट जाने से अब उन्हें राग न उपजा। वे सोचते हैं कि जिसके सौ वर्ष कुमार अवस्था में तीन सौ वर्ष मण्डलेश्वर अवस्था में और चालीस वर्ष दिग्विजय में व्यतीत हुए; जिसने ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष तक साम्राज्य पद का सेवन किया और जिसने पच्चीस कम बारह हजार वर्ष भोगावस्था में व्यतीत किए, वह लक्ष्मण अंत में भोगों से तृप्त न होकर नीचे गया।

एक दिन वे महामुनि राम पंचोपवास की प्रतिज्ञा के पश्चात् ईर्यासमिति का पालन करते हुए नन्दस्थली नामक नगरी में पारणा के लिए गये। नगर के नर-नारी मन में सोचते हैं कि वह बड़ा भाग्यवान होगा, जिसके घर में ये महामुनि आहार करेंगे और सभी उन्हें अपने घर में आहार कराने को उत्सुक हो उठे।

नगर में मुनिराज को देखकर राजा को आहारदान का विकल्प आया; परन्तु राजा आहारदान की विधि जानता नहीं था। अतः उसने अपने मंत्रियों को मुनिराज को लाने के लिए भेजा। मंत्रीगण भी आहारविधि नहीं जानते थे। इसलिए प्रजा को आहार देने से मना किया व राम महामुनि को अपने साथ चलने को कहा। राम अन्तराय जानकर वन में लौट गए और कायोत्सर्ग धारण किया।

मुनिराज के बिना आहार किये लौटने से सभी दुःखी हुए, फिर राम ने पंचोपवास किये और उसके बाद उन्होंने मन में नियम लिया कि वन में कोई श्रावक शुद्ध आहार दे तो लेना, नगर में जाना ही नहीं।

उसी दिन प्रतिनंद नामक राजा को दुष्ट घोड़ा लेकर भाग गया, तव वह वन में सरोवर में फंस गये। राजा को नजरों से ओझल देखकर रानी भी दूसरे घोड़े पर चढ़कर राजा के पीछे गई और थोड़ी देर में रानी राजा के पास पहुँच गई। वे दोनों आपस में बातें कर ही रहे थे कि राम मुनिराज कान्तार-चर्या के लिए आ पहुँचे। राजा-रानी ने नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया, राम मुनिराज का निरन्तराय आहार हुआ। तव वहाँ पंचाश्चर्य हुए तथा मुनिराज श्री राम अक्षीण महाऋद्धि के धारक थे, सो उस दिन रसोई का अन्न अटूट हो गया।

इसके वाद राम सघन वन में ध्यान करने लगे, जिससे उनमें अनेक ऋद्धियाँ उपजीं; पर ध्यानमग्न उन्हें ऋद्धियों का कुछ पता ही नहीं चला। उनके तप के प्रभाव से वन के जंगली जानवरों के परिणाम शांत हो गये। जीवों का जातिगत विरोध मिट गया। वे मुनिराज राम का शांत स्वरूप देखकर शांत हो गए। इसप्रकार तप करते हुए, विहार करते हुए वे कोटिशिला पर पहुँच गए और वहाँ ध्यान लगाकर वैठ गये।

सीता के जीव प्रतीन्द्र ने अवधिज्ञान जोड़कर जब यह जाना कि मेरे पूर्वभव के पति राम कर्मों को नष्ट करने के उद्यमी हुए हैं तो पूर्व के रागवश वह यह विचार करता है कि मैं मेरी देवमाया द्वारा कुछ ऐसा करूँ कि इनका मन

मोह में आवे और ये शुक्लध्यान से च्युत होकर शुभोपयोग में आ जावें, जिससे ये भी मेरे साथ स्वर्ग में देव हों। दोनों बाईस सागरपर्यंत, साथ-साथ रहें और दोनों मिलकर लक्ष्मण को देखें।

यह विचार कर सीता का जीव प्रतीन्द्र अन्य देवों के साथ, जहाँ राम ध्यानारूढ़ थे, वहाँ आया और राम को ध्यान से डिगाने के लिए देवमाया रची। वन में बसंतऋतु प्रगट की, नानाप्रकार के फूल फूले, सुगंधित वायु चलने लगी। इच्छानुसार रूप बदलने वाला वह प्रतीन्द्र स्वयं सीता का रूप धारण कर राम के पास आया। राम से अनेक प्रकार के राग के वचन कहे कि मैंने बिना विचारे तुम्हारी आज्ञा के बिना दीक्षा ली। फिर तपस्विनी बनकर इधर-उधर विहार करने लगी। तब विद्याधरों की उत्तम कन्यायें मुझे हरकर ले गईं। मुझसे वे नाना उदाहरण देते हुए बोलीं कि "ऐसी अवस्था में दीक्षा धारण करना व्यर्थ है। यह दीक्षा अत्यन्त वृद्ध स्त्रियों के लिए शोभा देती है। हम सब तुम्हें आगे कर चलती हैं और तुम्हारे आश्रय से बलदेव को वरेंगे।"



इसप्रकार सीता के जीव प्रतीन्द्र ने कई प्रकार से माया की, पर राम को ध्यान से डिगाने में समर्थ नहीं हुआ। और श्रीरामचन्द्रजी को शुक्लध्यान की अवस्था में माघ शुक्ला द्वादशी की रात्रि के पिछले प्रहर में केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

मुनिराज राम को केवलज्ञान होने पर देवों के आसन कम्पायमान हुए। अवधिज्ञान से राम को केवलज्ञान हुआ जानकर देवों ने आकर गंधकुटी की रचना की और फिर केवलज्ञानी राम की दिव्यध्वनि खिरी।

सीता के जीव प्रतीन्द्र ने केवली की पूजा कर तीन प्रदक्षिणाये दीं और बार-बार क्षमायाचना की, फिर दिव्यध्वनि सुनी। जब श्रीराम केवली ने विहार किया, तब देव भी विहार कर गये।

इसके पश्चात् लक्ष्मण को संबोधने की इच्छा से सीता का जीव तीसरे नरक मे गया। वहाँ उसने देखा कि लक्ष्मण द्वारा मारा गया खरदूषण का पुत्र सम्बूक असुरकुमार देव के रूप में एक-दूसरे नारकियो को लड़ाने के लिए प्रेरित कर रहा था। लक्ष्मण एवं दशानन आदि के जीव एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। नारकियो के दुःखों को देखकर सीता के जीव को दया आई और उसने असुरकुमार जाति के देवों को डाँटा। सीता के जीव के तेज व डाँट से नारकी डरकर भागने लगे। तब सीता के जीव ने उन्हें सान्त्वना दी, समझाया और कहा कि तुम सब डरो मत। अभी मैं तुम्हें अपने साथ ले चलता हूँ। यह कहकर ज्यो ही प्रतीन्द्र ने उन्हें उठाने का प्रयास किया, उनके परमाणु उसीप्रकार बिखर गए, जिसप्रकार पारा को हाथ मे लेते ही बिखर जाता है। तब नारकियों ने कहा

कि हमने जो पूर्व में कर्म किये हैं, उनका फल हमें भोगना ही होगा। अतः अब तुम हमें इस दुःख से छूटने का उपाय बताओ।

प्रतीन्द्र ने कहा – "दुःख से छूटने का एकमात्र उपाय अपने आत्मा को जानना-पहिचानना ही है, उसी में जमना-रमना ही है। जब यह जीव स्व-पर भेद-विज्ञान द्वारा अपने आत्मा में लीन हो जाता है, तब वह संसार दुःखों का हेतुभूत मिथ्यात्व का नाश कर सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। ज्यों-ज्यों जीव की स्वानुभव की दशा में वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों उसका संसार कम होता जाता है और यदि जीव एक अन्तर्मुहूर्त आत्मलीनता की दशा में रह जावे तो सदा-सदा के लिए सम्पूर्ण दुःखों से छूट जाता है।

अतः तुम इस देह-देवल में विराजमान देह से भिन्न निज भगवान आत्मा को जानो, उसे ही अपना मानो और उसी में जम जावो, रम जावो, समा जावो; सुखी होने का एकमात्र यही उपाय है।

इस नरक पर्याय में भी आत्मा को जानने-पहिचानने का कार्य हो सकता है। यद्यपि आत्मा में जमना-रमना इस प्रतिकूल वातावरण में संभव नहीं है; तथापि जानने-पहिचानने में कोई बाधा नहीं है।

लक्ष्मण और दशानन के जीव ने पूँछा कि तुम कौन हो? तब वह प्रतीन्द्र बोला – मैं सीता का जीव तप के प्रभाव से सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुआ हूँ, तुम विषय-वासना में फँसकर यहाँ आ गये।

दशानन के जीव ने पूँछा – अभी राम कहाँ हैं?

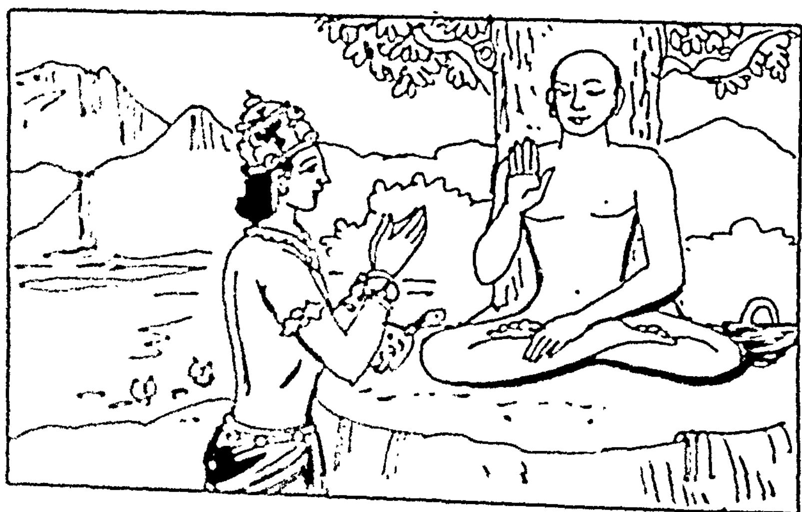
प्रतीन्द्र बोला – राम ने दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है और अभी भरतक्षेत्र में उनका धर्मोपदेश हो रहा है। अब मैं भी उनका उपदेश सुनने जा रहा हूँ।

यह कहकर प्रतीन्द्र वहाँ चल दिया और श्रीराम केवली की दिव्यध्वनि सुनने पहुँच गया।

राम का तत्त्वोपदेश सुनने के पश्चात् प्रतीन्द्र ने पूँछा– हे नाथ! अभी दशरथ आदि कहाँ हैं? लव-कुश कहाँ जावेंगे? भामण्डल की कौन-सी गति हुई है?

तब श्रीराम भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेई और सुप्रभा तथा जनक और कनक सभी तप के प्रभाव से तेरहवें देवलोक गए हैं, वे सभी समान ऋद्धि के धारक देव हैं। लव-कुश इसी जन्म से मोक्ष प्राप्त करेंगे और तेरा भाई भामण्डल अपनी रानी सुन्दरमालिनी सहित देवकुरु भोगभूमि में गया है।

तब प्रतीन्द्र ने पूँछा कि मेरे, दशानन के और लक्ष्मण के कितने भव बाकी हैं?



केवली की दिव्यध्वनि में आया कि दशानन व लक्ष्मण पहले तो भाई-भाई होंगे, फिर अनेक भवों पश्चात् वे सातवें स्वर्ग में जायेंगे। फिर जब तू सोलहवें स्वर्ग से निकलकर भरतक्षेत्र में रत्नस्थलपुर नामक नगर में चक्ररथ नामक चक्रवर्ती होगा, तब वे सातवें स्वर्ग से निकलकर तेरे पुत्र होंगे।

वहाँ दशानन के जीव का नाम इन्द्ररथ और लक्ष्मण के जीव का नाम मेघरथ होगा।

इन्द्ररथ अनेकों श्रेष्ठ भव धारण कर तीर्थंकर होगा और तू चक्रवर्ती पद छोड़कर मुनिपद धारण कर पंचोत्तरों में अहमिन्द्र होगा और वहाँ से निकलकर दशानन का जीव जो तीर्थंकर होगा, उसका तू प्रथम गणधर होकर मुक्ति प्राप्त करेगा। लक्ष्मण का जीव विदेहक्षेत्र के शतपत्र नगर में चक्रवर्ती पद त्याग कर मुनिपद धारण कर तीर्थंकर होगा।

कहानी को समाप्त करते हुए गुरुजी ने कहा—

जिसप्रकार समुद्र असीम है, उसकी सीमा बाँधी नहीं जा सकती; उसीप्रकार केवली के गुण भी असीम होते हैं, उन्हें शब्दों की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता है। अपने अल्पज्ञान द्वारा उनके पूर्णज्ञान को शब्दों की सीमा में बाँधना संभव नहीं।

केवली राम की कुल आयु सत्तरह हजार वर्ष की थी। इस देह में रहने की उनकी सीमा अब मात्र ७ वर्ष रह गई थी और इन सात वर्षों में उनका निरन्तर उपदेश होता रहा। फिर वे आठों कर्मों का नाश कर, देह का त्याग कर अव्याबाध सुखमय सिद्धदशा को प्राप्त कर लोकाग्र में विराजमान हो गए।

इतना कहकर ज्यों ही गुरुदेव की गंभीर वाणी ने विराम लिया त्यों ही एक श्रोता बोल उठा — 'फिर'

"फिर क्या, अब वे राम सिद्ध अवस्था में अनन्तकाल तक अनन्तसुख का उपभोग करते रहेंगे; और अब यह राम कहानी यहीं समाप्त होती है।

यदि तुम चाहो तो राम के पावन जीवन से शिक्षा ग्रहण कर स्वयं भी राम के समान ही भगवान बन सकते हो, अनन्त सुखी हो सकते हो।" ●